

नमो नमो निम्मलदंसणस्स
पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

संवृत्तिक-आगम-सूत्राणि-2

भाग

7



आगम - ४४ + ४५

“नन्दी” + “अनुयोगद्वार” वृत्तिः

मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणा से
श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ, पालडी, अमदावाद

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

सच्चारित्र चूडामणि स्वर्गस्थ पूज्यपाद
गच्छाधिपति आचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागर
सूरीश्वरजी महाराज साहेब



श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ
वीतराग सोसायटी, प्रभूदास ठक्कर कोलेज रोड, पालडी, अमदावाद

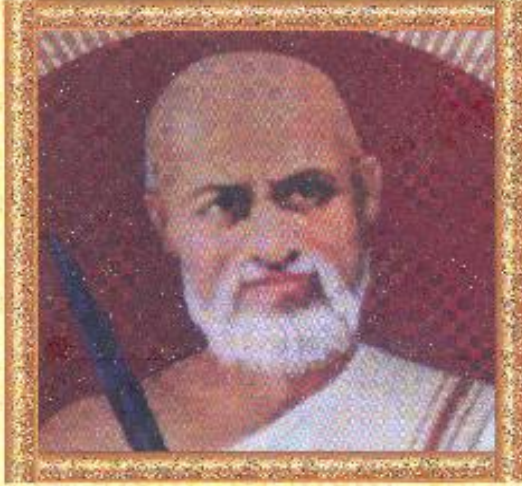
करीब पचास साल पहले परम पूज्य स्वर्गस्थ गच्छाधिपति
आचार्य देव श्रीमद् देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब द्वारा
संस्थापित इस संघमें श्री शीतलनाथ भगवंत का जिनालय भी है,
जिन के प्रतिष्ठाचार्य भी पूज्य देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी म० ही है ।

इस संघमें पूज्य साधू-भगवंत एवं साध्वी-महाराज के लिए
उपाश्रय भी है, जहां हर-साल चातुर्मास करवा के श्रावक-श्राविकाओं
को धर्म-आराधन से लाभान्वित करवाया जाता है । इस संघमें
आयंबिलभवन, उबाला हुआ पानी, ज्ञान-भण्डार एवं पाठशाला की
भी बहोत अच्छी सुविधा प्रदान हो रही है । ऐसे सम्यग्-मार्गी संघ
की सद्भावना और प्रभावक आचार्य पूज्य श्री हर्षसागरसूरिजी म०
की प्रेरणा से इस शास्त्र के लिए अनुदान प्राप्त हुआ है ।

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

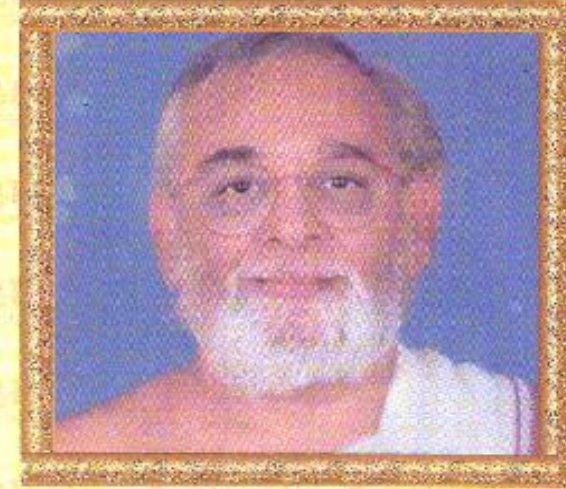
संवृत्तिक-आगम-सूत्राणि-2

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता



आगम दिवाकर मुनिश्री दीपकनसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेयरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका

मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275



आजम

वाचना शताब्दी वर्ष

❁ नन्दीसूत्र

एवं

❁ अनुयोगद्वार

←[हारिभद्रिया-वृत्ति]→

[४४] श्री नन्दीसूत्रम्

नमो नमो निम्मलदं सणस्स
पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरुभ्यो नमः

“नन्दीसूत्र” मूलं एवं वृत्तिः
[हरिभद्रसूरिजी रचिता वृत्तिः]

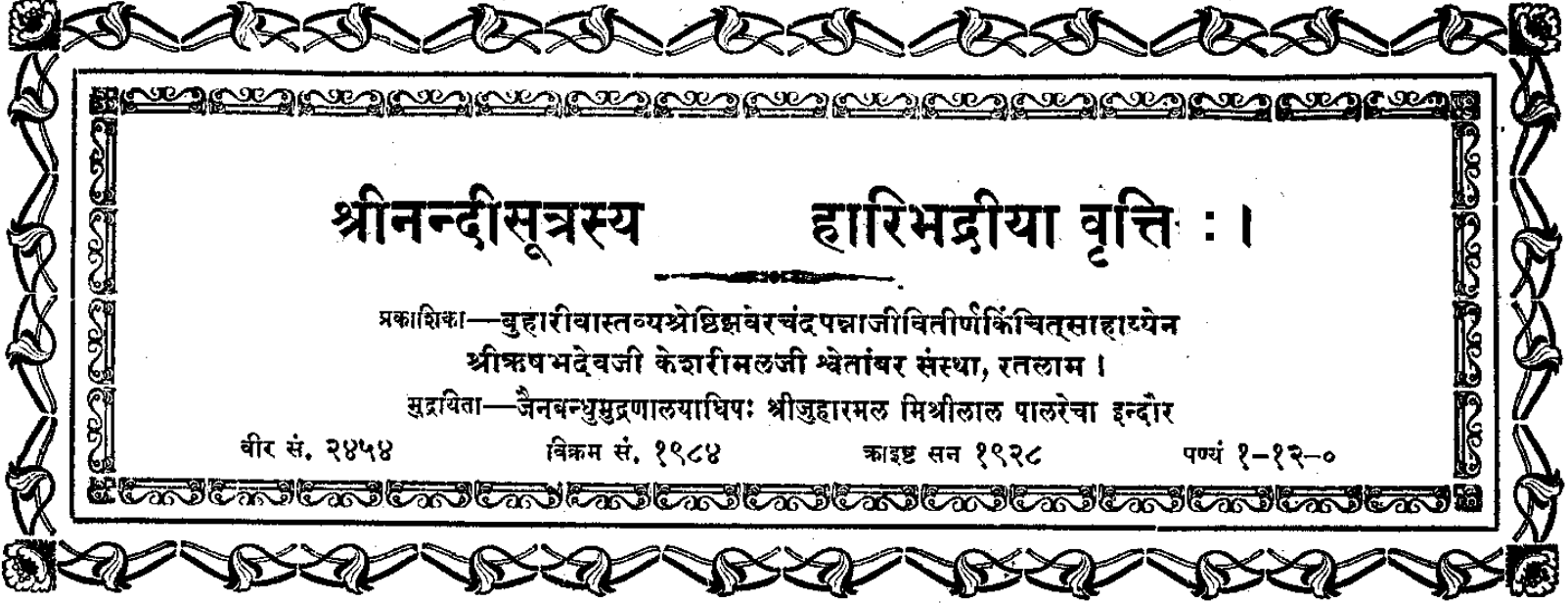
[आद्य संपादकः - पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म. सा.]
(किञ्चित् वैशिष्ट्यं समर्पितेन सह)

पुनः संकलनकर्ता → **मुनि दीपरत्नसागर** (M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ आषाढ शुक्ल ५

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि-२-श्रेणी भाग-7

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं-] / गाथा ॥-॥
प्रत सूत्रांक [-] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [-]	 श्रीनन्दीसूत्रस्य हारिभद्राया वृत्तिः । प्रकाशिका—बुहारीवास्तव्यश्रेष्ठिभवनचंदपन्नाजीवितीर्णकिंचित्साहाय्येन श्रीशक्रभदेवजी केशरीमलजी श्वेतांबर संस्था, रतलाम । सूत्रयिता—जैनबन्धुमुद्रणालयाधिपः श्रीजुहारमल मिश्रीलाल पालरेचा इन्दौर वीर सं. २४५४ विक्रम सं. १९८४ काइष्ट सन १९२८ पण्यं १-१२-० पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
	*** ‘नन्दीसूत्र’-हारिभद्राया वृत्ते: मूल टाईटल पेज

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होंने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फिर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरूप एक मामूली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है ।

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ कर्मों का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले । पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया । लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरूप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया । जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए।

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर सकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्दिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही “जैन-आगम-शास्त्रो” को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये । दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया । फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और “आगम मंजूषा” नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए । वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ ।

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नहीं थे, उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अव चूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया । उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की । कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी । ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की ।

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मत्तशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया । राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई । बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे । जैनशासन के लिए जब जरूरत पड़ी तब अदालती कारवाईओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था ।

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरूप ७०० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये ।

...ये थे हमारे गुरुदेव “सागरजी”...

.....मुनि दीपरत्नसागर...

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये । फिर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढ़ती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए । इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे । प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया । खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था । आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे ।

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहलु दिखाए । एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'। कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष]दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी । आखरी सालोंमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण " इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे । ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना ।

*** मुनि दीपरत्नसागर...

अनुदान दाता संस्था:- "श्री परम-आनंद श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ"

वीतराग सोसायटी, प्रभूदास ठककर कोलेज रोड, पालडी, अमदावाद

करीब ५० साल पहले परम पूज्य स्व. गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब द्वारा संस्थापित इस संघमें श्री शीतलनाथ भगवंत का जिनालय भी है, जिन के प्रतिष्ठाचार्य भी पूज्य देवेन्द्रसागरसूरीजी म०सा० ही है । इस संघमें पूज्य साधू भगवंत एवं साध्वीजीओ का उपाश्रय भी है जहा हर-साल चातुर्मास करवाके श्रावक-श्राविकाओ को धर्म-आराधन से लाभान्वित करवाया जाता है । इस संघमें आयंबिलभवन, उबाला हुआ पानी, ज्ञान-भण्डार एवं पाठशाला की भी बहोत अच्छी सुविधा प्रदान हो रही है । ऐसे सम्यग्-मार्गी संघ की सद्भावना और प्रभावक आचार्य पूज्य श्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणा से इस शास्त्र के लिए अनुदान प्राप्त हुआ है ।

*** मुनि दीपरत्नसागर...

‘सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी’

इस “संवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि” श्रेणि भाग १ से ८ के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व. गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रूपमें ‘सागर समुदाय’ के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये “संवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि-2 के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई, उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे। समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा समुदाय के साधु-साध्वीजी की आवश्यकताओंकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहते हैं, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थों के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहते हैं, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रुचि रखते हैं। समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतों के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यों के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है। दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयों में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का खयाल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमें अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई।

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे हैं।

*** मुनि दीपरत्नसागर

[कात्रेज]पूना, शंखेश्वर, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमें आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमें दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.....मुनि दीपरत्नसागर

[नन्दीसूत्र- मूलं एवं वृत्तिः] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले “नन्दीसूत्र” के नामसे सन १९२८ (विक्रम संवत् १९८४) में ऋषभदेव केशरीमलजी संस्था द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरीजी) महाराज साहेब । मूल संपादकश्रीने तो यहां दो प्रत को मिलाकर एकसाथ मुद्रण करवाया था, (१) चूर्णि और (२) वृत्ति । मगर हमने हमारे प्रकाशनमें चूर्णि को चूर्णि के विभागमें रख दिया और वृत्ति को यहां “आगम-सुत्ताणि-सटीक”प्रताकार net publications भाग-2 में स्थान दे दिया ।

ये ‘हरिभद्रीया-वृत्ति’ तो कदमें छोटी है, मगर ‘नन्दीसूत्र’ पर मलयगिरिजी रचित वृत्ति बहोत बड़ी है, जो हमारे “आगम-सुत्ताणि-सटीक” प्रताकार net publications भाग-1 में हम मुद्रित करवा चुके हैं ।

✦ हमारा ये प्रयास क्यों? ✦ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोंमें १२५०० से ज्यादा पृष्ठोंमें प्रकाशित करवाए हैं, किन्तु लोगों की पूज्यश्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरूप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमें बीचमें पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमें आगम का नाम, फिर सूत्र आदि के नंबर लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा सूत्र आदि चल रहे हैं उसका सरलतासे ज्ञान हो सके । बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ ‘दीप अनुक्रम’ भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर सके ।

हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढ़ते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए हैं, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए हैं और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची या ‘गाथा’ शब्द लिखा है। हर पृष्ठ के नीचे विशिष्ट फूटनोट दी है ।

✦ शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरीजी म० की प्रेरणासे और श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ, पालडी, अमदावाद की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये “संवृत्तिक-आगम-सूत्राणि_2” भाग-७ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते हैं ।

.... मुनि दीपरत्नसागर.

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरीजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं-] / गाथा ॥-॥		
प्रत सूत्रांक [-] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [-]	मुद्रितपूर्वग्रन्थाः । ऐन्द्रस्तुतयः ०-८-० प्रकरणसमुच्चयः १-४-० अनुयोगद्वाराणां चूर्णिः वृत्तिश्च २-०-० ज्योतिष्करण्डकवृत्तिः ३-८-० पंचाशकाद्यष्टशास्त्रीमूलं ४-०-० प्रत्याख्यानादि १-४-० मुद्र्यमाणाः आवश्यकचूर्णिः वन्दारुवृत्तिः	मुद्रयिष्यमाणाः— दशवैकालिकचूर्णिः उत्तराध्ययनचूर्णिः आचारांगचूर्णिः सूत्रकृतांगचूर्णिः प्राप्तिस्थानं— श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी, पेढी रतलाम. —=— श्रीहरिभद्रसूरिसमयप्रकाशः श्रीमता हरिभद्रहरिणा पूर्वगतव्याख्याने पूर्वगतानां प्रायो व्यवच्छिन्नत्वमभिहितं, परिकर्मादीनां च समूल उच्छेदः	प्रतिपादितः, तथा च श्रीमतो हरिभद्रद्वारेः पूर्वगतकतिचित्सूत्रार्थधारकता या श्रीमद्भिरभयदेवहरिभिः पंचाशकवृत्तौ गदिता साऽवितथैव, एवं च तेषां पूर्वगतकालासन्नकालभावितया श्रीवीरहायनः पंचपंचाशदधिकवर्षसहस्रलक्षण एव सत्तासमयो योग्यः, एकादशशताब्द्यां भाविनो जिनभद्रा ध्यानशतकादिविधायिभ्योऽन्ये एवेति श्री-धर्मसारैः स्वयमेव तत्रैव पट्टावल्यां ख्यातं तत्र दृष्टचरं कैश्चित्तदाश्रयं, नन्दी-चूर्णिकालस्तु लेखकादिलिखित इति न विश्वासाहः, नस ग्रन्थमध्ये ग्रन्थ कृत्तिखितः इति न बाधः इति ज्ञापयत्यानन्दसाराः
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः *** पूज्यपाद् आनंदसागरसूरीश्वरेण दर्शितः हरिभद्रसूरेः काल-समय		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा -
प्रत सूत्रांक [-] गाथा - दीप अनुक्रम [-]	नन्दी- हरिभद्राय वृत्तिः ॥ १ ॥ प्रस्तावना ॥ १ ॥ ॥ नमः सर्वज्ञाय ॥ श्रीमद्हरिभद्रसूरिसूत्रिता नन्दीवृत्तिः जयति भुवनैकभानुः सर्वत्राविहृतकेवलालोकः । नित्योदितः स्थिरस्तापवर्जितो वर्द्धमानजिनः ॥ १ ॥ इह सर्वेणैव संसारिणा सत्त्वेन नारकतिर्यङ्गरामरगतिनिबन्धनानेकशारीरमानसातितीव्रतरदुःखौघसङ्घातपीडितेन जातिजरा- मरणशोकरोगाद्युपद्रवव्रातरहितनिरतिशयालोकसुखस्वभावापवर्गगतिसम्भवे सति पीडानिवेदात् तत्परित्यागाय निरतिशयालोक- सुखामिलाषाच्च तदवाप्तये आत्मपरतुल्यचित्तेन सर्वथा स्वपरोपकाराय प्रवर्तितव्यमिति, तत्रान्यपरिरक्षणादिना परोपकारपूर्वक- एवात्मोपकार इति विशेषतस्तत्र, स पुनः परोपकारो द्विधा-द्रव्यतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतो भोजनादिविचित्रविभवप्रदानजनितः, अयं चानैकान्तिकोऽनात्यन्तिकश्च, भावतस्तु सद्धर्मप्रदानजनितः, अयं चैकान्तिकस्तथा आत्यन्तिकश्च, सद्धर्मश्च श्रुतधर्मचारित्र- धर्मभेदाद् द्विभेदः, तत्र श्रुतधर्मो जिनवचनस्वाध्यायः, चारित्रधर्मस्तु तदुक्तः श्रमणधर्म इति, उक्तञ्च-“सुयधम्मो सज्जाओ चरि- त्तधम्मो समणधम्मो।” तत्र श्रुतधर्मसम्पत्समन्विता एव प्रायश्चारित्रधर्मग्रहणपरिपालनसमर्था भवन्तीति तत्प्रदानमेवादौ न्याय्य- मिति, तत्रापि श्रुतप्रदाने सत्यपि नाविज्ञातार्थादेव तस्मादभिलषितार्थावाप्तिः प्राणिनामित्यतः प्रारभ्यते अर्हद्वचनानुयोगः, अयं च
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
	*** वर्द्धमानजिनेश्वरस्य स्तुतिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा ॥-॥		
प्रत सूत्रांक [] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम []	नन्दी- हारिभद्रिय वृत्तौ ॥ २ ॥	परमपदप्राप्तिहेतुत्वाच्छ्रेयोभूतो वर्त्तते, श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति, यथोक्तम्-“श्रेयांसि बहुविघ्नानि, भवन्ति महतामपि । अश्रेयांसि प्रवृत्तानां, कापि यान्ति विनायका ॥१॥” इति, अतोऽस्य प्रारम्भ एव विघ्नविनायकोपशान्तये मङ्गलाधिकारे नन्दिर्वक्तव्यः । अथ नन्दिरितिकः शब्दार्थः?, उच्यते, ‘दु णदि समुद्धा’ वित्यस्य धातोः ‘इदितो जुम् धातो’ रिति (७-१-५८) जुमि विहितेऽनुबन्धलोपे च कृते उणादिकः इन् प्रत्ययो विधीयते, ‘इन् सर्वधातुभ्य’ इति वचनाद्, अनुबन्धलोपे च कृते सति नन्दि, सो रुक्वं विसर्जनीयश्चेति नन्दिः, नन्दनं नन्दिः नन्दन्त्यनेनेति वा नन्दन्त्यस्मिन्निति वा नन्दयतीति वा तदभेदोपचारान्नन्दिः हर्षः प्रमोद इत्यनर्थान्तरं, ‘ताभ्यामन्यत्रोणादय’ इति वचनाद् ताभ्यामिति सम्प्रदानापादानाभ्यां अन्यत्र उणादयः प्रत्यया भवन्ति, अन्ये तु नन्दीत्यभिदधति, तत्रापि नन्दिस्थिते ‘इक् कृष्यादिभ्य’ इति (उणा.) इक् प्रत्ययः, स च ‘कृत्यलुटो बहुल’ (३-३-११३) मिति वचनाद्भावे करणे वा अवगन्तव्य इति, ततः ‘कृदिकारादक्तिनः, (वाक्तिकं) ‘सर्वतोऽक्तिन्नर्थोदित्येक’ इति स्त्रीप्रत्ययः, अस्य भावार्थः कृदिकारान्तो यः शब्दः क्तिन्वर्जितस्तस्मात् स्त्रीप्रत्ययो भवति, अपरे तु सर्वतः अक्तिन्नर्थोदिकारान्तात् स्त्रीप्रत्ययो भवतीति मन्यन्ते, अनुबन्धलोपे च कृते ‘यस्ये’ (६-४-१४८) तीकारलोपे च नन्दीति रूपं भवति, नन्दनं नन्दी नन्दन्त्यनयेति वा भव्याः प्राणिन इति नन्दी, इत्यलमप्रस्तुतातिप्रसङ्गेनेति। अयं च नन्दिश्चतुर्विधः, तद्यथा- नामनन्दिः स्थापनानन्दिः द्रव्यनन्दिः भावनन्दिश्चेति, तत्र नामस्थापने प्रकटार्थे, द्रव्यनन्दिर्द्विधा-आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतो नन्दिपदार्थज्ञः तत्र च अनुपयुक्तः ‘अनुपयोगो द्रव्य’ मिति वचनात्, नोआगमतस्तु ज्ञशरीरद्रव्यनन्दिः भव्यशरीरद्रव्यनन्दिः ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यातिरिक्तश्च द्रव्यनन्दिः, तत्र ज्ञशरीरद्रव्यनन्दिः नन्दिपदार्थज्ञस्य	नन्याः शब्दार्थः निक्षेपाश्च ॥ २ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः *** नन्दीसूत्रस्य अर्थ एवं निक्षेपाः		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा ॥१॥
प्रत सूत्रांक [-] गाथा ॥१॥ दीप अनुक्रम [१]	नन्दी- हरिमद्रिय वृत्तो ॥ ३ ॥ नन्द्या निक्षेपाः ॥ ३ ॥ शरीरं जीवविप्रमुक्तं अनुभूतर्नादिभावत्वात्, पश्चात्कृतभावस्य द्रव्यत्वात्, यथोक्तम्—“भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके । तद्द्रव्यं तस्वज्ञैः सचेतनाचेतनं कथितम् ॥ १ ॥’ भव्यशरीरद्रव्यनन्दिश्च नन्दिपदार्थपरिज्ञानभावयोग्यं बालादिशरीरं, पुरस्कृतभावत्वादस्य, व्यतिरिक्तः पुनः क्रियाविष्टो द्वादशविधस्तूर्याङ्गसङ्घातोऽयम्-तद्यथा-‘भमा १ मउंद २ महल ३ कडंब ४ झल्लरि ५ हुडुक्क ६ कंसाला ७ । काहल ८ तलिमा ९ वंसो १० संखो ११ षणवो १२ य बारसमो ॥ १ ॥’ भावनन्दिरपि द्विविधैव-आगमतो नो आगमतश्च, तत्रागतो भावनन्दिः नन्दिपदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तः, ‘उपयोगो भाव’इतिकृत्वा, नो आगमतस्तु भावनन्दिः पञ्चप्रकारज्ञानसमुदायः, नो शब्दो देशवचनः, अथवा पञ्चप्रकारज्ञानस्वरूपप्रतिपादकोऽध्ययनविशेषः, नो शब्दो देशवचन एव ॥ अयं चाध्ययनविशेषः श्रुतांशेन सर्वश्रुताभ्यन्तरभूतो वर्तते, अत एव सर्वश्रुतारम्भेणैव विघ्नविनायकोपशान्तये मङ्गलार्थमभिधीयत इति, अस्य च मंगलस्थानावसरप्राप्तस्य सत आचार्याः विनेयानां सूत्रार्थगौरवोत्पादनार्थमविच्छेदेन सन्तानागतसूत्रार्थपददर्शनार्थं चादावेवावलिकामभिधाय व्याख्यानाय यतन्ते, सर्वे श्रुतार्थाश्च यतस्तीर्थकरप्रभवा अतः प्रज्ञापकश्रावकपाठकाः अभिलषितार्थसिद्धये प्रवर्त्तमानाः प्रधानोपायत्वाद्भगवद एव नमस्कारपूर्वकं प्रवर्त्तन्त इत्यत आह ग्रंथकारः- जयति ० गाथा ॥ (*१-२ पत्रे) ॥ इन्द्रियविषयकषायघातिकर्मभवोपग्राहिकर्मशत्रुगणजयाज्जयतीत्युच्यते, किंविशिष्टो जयति?- जगज्जीवयोनिविज्ञायकः, इह जगच्छब्देन सकलधर्माधर्माकाशपुद्गलास्तिकायपरिग्रहः, जीवशब्देन तु सकलजीवास्तिकायपरिग्रहः, उक्तं च-“जगन्ति जंगमान्याहुः, जगद् ज्ञेयं चराचरम्” योनयः-सचित्ताद्याः, उक्तञ्च-‘सचित्तशीतसंपृच्चेतरमिश्रास्तद्योनयः’(तत्त्व० २-३३)
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
*** अत्र मूल नन्दीसूत्रस्य आरंभः जिन-स्तुति द्वारा क्रियते	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा ॥१॥
प्रत सूत्रांक [-] गाथा ॥१॥ दीप अनुक्रम [१]	नन्दी- हरिभद्राचार्य वृत्तौ ॥ ४ ॥ जीवोत्पत्तिस्थानानीत्यर्थः, ‘यु मिश्रणे’ युवन्ति-तैजसकार्मेणशरीरवन्तः सन्तः ओदारिकादिशरीरेण मिश्रीभवन्त्यस्यामिति योनिः, उक्तञ्च-‘जोएण कम्मएणं आहारेइ अणंतरं जीवो । तेण परं मीसेणं जाव सरीरस्स निष्फत्ती ॥ १ ॥’ ततश्च जगच्च जीवाश्च योन- यश्च जगज्जीवयोनयः विविधम्-अनेकधोत्पादाद्यनन्तधर्मात्मकं जानातीति विज्ञायकः जगज्जीवयोनीनां विज्ञायक २ इति समासः, अनेन केवलज्ञानप्रतिपादनात् स्वार्थसम्पदमाह । तथा जगद् गृणातीति जगद्गुरुः, यथोपलब्धजगद्वक्तेति भावना, अनेनापि स्वा- र्थसम्पदमेवाह । तथा जगदानन्दः इह जगच्छब्देन संज्ञिजङ्गमपरिग्रहः, तेषां सद्धर्मदेशनाद्वारेणानन्दहेतुत्वादहिकामुष्मिक्प्रमो- दकारणत्वात् जगदानन्द इत्यनेन परार्थसम्पदमाह, तथा ‘जगन्नाथ’ इह जगच्छब्देन सकलचराचरपरिग्रहः तस्य यथावस्थित- स्वरूपप्ररूपणद्वारेण वितथप्ररूपणापायेभ्यः पालनात् नाथवन्नाथ इति, अनेनापि परार्थसम्पदमिति । तथा जगद्वन्धुः इह जगच्छ- ब्देन सकलग्राणिपरिग्रहस्तदव्यापादनोपदेशप्रणयनेन सुखस्थापकत्वाद् बन्धुवत् बन्धुः, तथा चोक्तम्-‘सर्वे पाणा सर्वे भूया सर्वे जीवा सर्वे सत्ता ण हंतव्वा ण अज्जावेयव्वा ण परितावेयव्वा ण उवदवेयव्वा, एस धम्मे धुवे णितीए सासते समेच्च लोअं खेद- ण्णेहिं पवेदिते’ इत्यादि, अनेनापि परार्थसम्पदमिति । तथा ‘जयति जगत्पितामह’ इति, इह जगच्छब्देन सकलसत्त्वपरिग्रह एव, तेषां च कुगतिगमनभयापायरक्षणात् पिता धर्मो वर्तते, अतो जगत्पितामहः, तथोक्तम्-‘दुर्गतिप्रसृतान् जीवान्, यस्माद्भा- रयते ततः । धत्ते चैतान् शुभे स्थाने, तस्माद्धर्म इति स्मृतः ॥ १ ॥’ तस्यापि चार्थप्रणेतृत्वेन भगवान् पिता वर्तते, अतो जम्त- पितामह इति, स्तवाधिकाराच्च पुनः क्रियाभिधानमदुष्टं, उक्तञ्च-‘सज्ज्ञायज्ञाणतवओसहेसु उवएसथुइपयाणेसु । सन्तगुणाकित्त- णेसु य न होति पुणरुत्तदोसा ओ ॥ १ ॥’ अनेनापि परार्थसम्पदमाह । भगवानिति भगः-समग्रैश्वर्यादिलक्षणः, तथा चोक्तम्- जिन- स्तुतिः ॥ ४ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [१] / गाथा ॥२॥	
प्रत सूत्रांक [-] गाथा ॥२॥ दीप अनुक्रम [२]	नन्दी- हरिभद्राय वृत्तौ ॥ ५ ॥ ‘ऐश्वर्यस्य समग्रस्य, रूपस्य यशसः श्रियः । धर्मस्याथ प्रयत्नस्य, षण्णां भग इतीगना ॥१॥’ भगोऽस्यास्तीति भगवानिति, अनेन चोभयसम्पदमाह, स्वपरोपकारित्वादैश्वर्यादेरित्यलं प्रसङ्गेनेति गाथार्थः ॥ १ ॥ ‘व्याख्यानयन्ति केचित् स्तुतिमेनामन्यथापि विद्वांसः । तत्राप्यपौनरुक्त्यं सूक्ष्मधिया चिन्तनीयमिति ॥१॥ एवं तावदनादिमन्तो मतास्तीर्थकरा इति ज्ञापनार्थं सामान्येन नमस्कारमभिधाय साम्प्रतमासन्नोपकारित्वात् सकलदुःखपरमौषधभूतप्रवचनप्रणेतृत्वाद्भक्तमानतीर्थाधिपतेः नमस्कारं प्रतिपादयन्माह- जयति सु० गाथा ॥ (* २-१५) ॥ जयतीति पूर्ववत्, श्रुतानां-आचारादिभेदभिन्नानां प्रभवः प्रभवन्त्यस्मादिति प्रभवः, तदर्थोभिधायकत्वात्, कारणमित्यर्थः, ऋषभादयोऽप्येवंभूता एव अत आह-तीर्थकराणामपश्चिमो जयति, तत्र तीर्थकरणशीला-स्तीर्थकरास्तेषां तीर्थकराणां भ्रते अधिकृतावसर्पिण्यां पश्चिम एवानिष्टशब्दपरिहारार्थमपश्चिम इत्युच्यते, पश्चानुपूर्व्या वा पश्चिम इति, जयति गुरुलोकानां गृणाति शास्त्रार्थमिति गुरुः, लोकानां इति-सत्त्वानां, जयति महात्मा अनन्तज्ञानवीर्ययुक्तत्वान्महाना-त्मा यस्य स महात्मा, महावीर इति ‘सूर वीर विक्रान्ता’ विति कषायादिशत्रुजयान्महाविक्रान्तो महावीरः, ‘ईर गतिप्रेरणयो’ रित्यस्य वा विपूर्वस्य विशेषेण ईरयति कर्म गमयति याति वेह शिवमिति वीरः, महौश्वासौ वीरश्च महावीर इति गाथार्थः ॥ पुनरस्यैवातिशयप्रदर्शनद्वारेण स्तुतिमभिधित्सुराह— भद्रं गाथा(*३-२३) ‘भद्रं’ कल्याणं भवतु, कस्य ?-सर्वजगदुद्योतकस्येत्यनेन ज्ञानातिशयमाह, इह च “चतुर्थी चाशिष्यायु-ष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितै” रिति(२-३-७३)वचनात् षष्ठ्यपि भवत्येव, यथा आयुष्यं देवदत्तायायुष्यं देवदत्तस्येति, एवं भद्रादिष्वपि श्री वीरजिन स्तुतिः ॥ ५ ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अत्र वीर जिनेश्वरस्य स्तुतिः क्रियते	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)
	 मूलं [] / गाथा ३

प्रत
सूत्रांक
[-]

गाथा

||३||

दीप
अनुक्रम
[३]

नन्दी-
हरिमद्रीय
वृत्ती

॥ ६ ॥

वक्तव्यमिति, भद्रं जिनस्य ‘जिं जये’ अस्य औणादिकनक्षत्रत्ययान्तस्य जिन इति भवति, रागादिज्ञयाञ्जिन इति, अनेनापाया-
तिशयमाह, अपायो-विश्लेषः रागादिभिः सार्द्धमात्यन्तिकवियोग इत्यर्थः, आह—अपायातिशये सति ज्ञानातिशयभावाद् व्यतिक्रमः
किमर्थे ? , फलप्रधानाः समारम्भा इति ज्ञापनार्थं, भद्रं सुरासुररुचिरकृतस्वेत्यनेन पूजातिशयमाह, नहि विभवानुरूपां पूजामकु-
त्वैव सुरासुरा नमस्कारक्रियायां प्रवर्त्तन्ते इति, उक्तं च—“अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यो ध्वनिश्चाभरमासनं च । भाण्डले हुन्दु-
भिरातपत्रं, सुतप्रतिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥१॥” इति, पूजातिशयान्न्यथाऽनुपपत्त्यैव वागतिशयो गम्यते, भद्रं धुतरजस इत्यनेन
सकलसंसारिक्केशविनिर्मुक्तां सिद्धावस्थामेवाह, यतो बध्यमानं कर्म रजो भण्यते, तदभावस्त्वयोगिसिद्धानामेव, न पुनरन्येषां, यत
आह—“जीवे णं एस जीवे एयइ वेदति चलइ फंदइ ताव णं अट्टविहबंधए वा सच्चविहबंधए वा छच्चिहबंधए वा एगविहबंधए वा”
इत्यादि, तत्थ “सच्चविहबंधगा होंति पाणिणो आउवज्जगाणं तु । तह सुहुमसम्पराया छच्चिहबंधा विणिहिड्ढा ॥१॥ मोहाउगवज्जगाणं
पगडीणं ते उ बंधगा भणिया । उवसन्नखीणमोहा केवलियो एगविहबंधा ॥२॥ ते उण दुसमयाठितस्स बंधगा ण उण संपरायस्स ।
सेलेसि पडिबन्धा अबंधगा होंति विमेया ॥३॥” आह—भगवतः संसारातीतत्वात् परमकल्याणरूपत्वात् किमेवमुच्यते-भद्रं भवतु,
न च स्तोत्रा भणितं सर्वमेव भवतीति, अत्रोच्यते, सत्यमेतत्, तथापि कुशलमनोवाकाग्रप्रवृत्तिकारणत्वात् दोष इत्यलं प्रसङ्गेनेति
गाथार्थः ॥२॥ एवं तावत्तीर्थकरनमस्काराः प्रतिपादिताः, साम्प्रतं तीर्थकरणान्तरः सङ्घ इतिकृत्वा तीर्थान्तरग्रामव्यूदासेन नगररू-
पकेण तत्संस्तवं कुर्वन्माह—
गुण० गाथा (* ४-४२) ‘गुणभवनगहन’ इह गुणाः-पिण्डविशुद्ध्यादयः उत्तरगुणा अभिगृह्यन्ते, यद्योक्तम्—“पिंडस्स

सर्व-
जिनस्तुतिः

॥ ६ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा ॥४,५॥	
प्रत सूत्रांक [] गाथा ॥४-५॥ दीप अनुक्रम [४-५]	नन्दी- हरिभट्टीय वृत्तौ ॥ ७ ॥ जा विसोही समितीओ भावणा तवो दुविहो । पडिमा अभिग्गहाविय उत्तरगुणमो वियाणाहि ॥१॥” एत एव भवनानि एभिर्गह- न-प्रचुरत्वादुत्तरगुणानामेभिः संकुलं, सङ्घनगरमभिगृह्यते, तस्यामन्त्रणं हे गुणभवनगहन !, तथा श्रुतरत्नभृत् श्रुतान्येव आचारादीनि निरुपमसुखहेतुत्वाद्गन्तानि तैर्भूत-प्रितमित्यर्थः तस्यामन्त्रणं, तथा दर्शनविशुद्धरथ्याक, इह दर्शनं-प्रथमसंवेगनिर्वेदानुकम्पा- स्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं सम्यग्दर्शनं गृह्यते, तच्चौपशमिकादिभेदात् पञ्चविधं, तथा चोक्तम्-“तं च पञ्चधा सम्मं-उवसमं सासा- यणं खयोवसमियं वेदयं खइयं” ति, दर्शनमेवासारमिथ्यात्वादिकचवररहिता शुद्धा रथ्या यस्य तत्तथाविधं. तस्यामन्त्रणं, ‘संघ- नगर’ सङ्घः-चातुर्वर्णः श्रमणादिसंघातः स नगरमिव संघनगरं तस्यामन्त्रणं, यथा पुरुषोऽयं व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्रः, उक्तञ्च-“उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे” (२-१-५६) भद्रं कल्याणं तच्च भवतु, अखण्डचारित्र्यप्राकार! चारित्र्यं-भूलगुणा अखण्डम्-अविराहितं चारित्र्यमेव प्राकारो यस्य तत्तथाविधं तस्यामन्त्रणमिति गाथार्थः ॥४॥ संसारोच्छेदित्वात् संघस्यैव चक्ररूपकेण स्तवं कुर्वन्नाह— संयम० गाथा (* ५-४३) संयमतपस्तुम्भारकाय नमः संयमश्च तपांसि च संयमतपांसि, तुम्भं च अरकाश्च तुम्भारकाः, तत्र यथासंख्यं संयमतपांस्येव तुम्भारका यस्य तत् तथाविधं तस्मै नमः, तत्र संयमः ‘पञ्चाश्रवाद्विरमणं पञ्चेन्द्रियनिग्रहः कषाय- जयः । दण्डत्रयविरतिश्चेति संयमः सप्तदशभेदः ॥१॥ तपो द्वादशप्रकारं बाह्यमभ्यन्तरं च, तत्र बाह्यं षड्विधं, यथोक्तम्-“अनश- नमूनोदरता वृत्तेः संक्षेपणं रसत्यागः । कायक्लेशः संलीनतेति बाह्यं तपः प्रोक्तम् ॥१॥ अभ्यन्तरमपि षड्विधम्, उक्तञ्च-“प्रायश्चित्तं विनयो वैयावृत्यं स्वाध्यायो ध्यानं व्युत्सर्गश्चे” ति, सम्मत्तपारियल्लस्सत्ति पारियल्लं-बाह्यपुष्टकस्य बाह्या अभिरुच्यते, ततश्च सम्य- संघस्य नगरतया स्तुतिः ॥ ७ ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अथ विविध-उपमायाः ‘संघ’-स्तुतयः आरभ्यते	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१] / गाथा ॥५-८॥
प्रत सूत्रांक [१] गाथा ॥५-८॥ दीप अनुक्रम [५-८]	नन्दी- हरिभद्रादीय- वृत्तौ ॥ ८ ॥ त्तवबाह्यभ्रमिणे नमः, व्याख्यातं गाथार्थं, चरकादिभिरतुल्यत्वान्नास्य प्रतिचक्रं विद्यते इत्यप्रतिचक्रं तस्य जयो भवतु इति, सुप्रणि- धानमेतद्, सदा सर्वकालं, संघश्चक्रमिव संघचक्रं तस्येति गाथार्थः ॥५॥ इदानीं संघस्यैव मार्गगामित्वतो रथरूपकेण स्तवं कुर्वन्नाह- भद्रं० गाथा (* ६-४३) भद्रं कल्याणं भवतु, कस्य ?-संघरथस्य, भगवत इति योगः, किंविशिष्टस्य ?-शीलोच्छ्रितप- ताकस्य, प्राकृतशैल्याऽन्यथोपन्यासः, शीलग्रहणात् अष्टादशशीलाङ्गसहस्रपरिग्रहः, तथा तपोनियमतुरगयुक्तस्य तपः- संयमाश्चयुक्तस्येत्यर्थः स्वाध्यायो-वाचनादिः, यथोक्तम्-“वाचना प्रच्छन्ना परावर्त्तना अनुप्रेक्षा धर्मकथा चे”ति, तत्र स्वाध्याय एव शोभनो नन्दिघोषतुर्यरथो ‘सुनेभिघोषस्स’ति नेमिनिर्घोषो वा यस्य स तथाविधो यस्य, इह च शीलाङ्गनिरूपणे सत्यपि तपोनियमनिरूपणं प्रधानपरलोकाङ्गत्वख्यापनार्थम्, अस्ति चायं न्यायो यदुत सामान्योक्तावपि प्राधान्यख्यापनार्थं विशेषा- भिधानमिति, यथा ब्राह्मणा आयाता वशिष्टोऽप्यायात इति, एवमन्यत्रापि योजनीयमित्यलं प्रसंगेनेति गाथार्थः ॥ संघस्यैव लोकासंश्लिष्टत्वतः पञ्चरूपकेण स्तवं प्रतिपादयन्नाह- कम्मरय० गाथा ॥ (* ७-४४॥) सावय० गाथा ॥ * (८-४४ ॥) संघपद्मस्य भद्रं-मङ्गलं भवत्वितिक्रिया, किम्भूतस्य ?- कर्मरजोजलौघाविनिर्गतस्य इह ज्ञानावरणादिलक्षणं कर्म तदेव अनेकधा जीवगुण्डनाद्रजो भण्यते तदेव भवकारणत्वाज्जलौघः तस्मा- द्विनिर्गत इव विनिर्गतः, तथा चाविरतसम्यग्दृष्टेरप्यपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तः परः संसार उक्त इत्यतो विनिर्गतस्तस्य, श्रुतरत्नमेव दीर्घ- नालं यस्य सः, तद्वलादेव निर्गत इति भावनीयं, पंच महाव्रतानि-प्राणातिपातादिविनिवृत्तिलक्षणानि तान्येव स्थिरा-दृढा कर्णिका संघस्य चक्रतया पञ्चतया च स्तवः ॥ ८ ॥ पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा ८-१०
प्रत सूत्रांक [-] गाथा ८-१० दीप अनुक्रम [८-१०]	नन्दी- हरिभद्रीय वृत्ती ९ संघस्य पञ्चचन्द्र- तया स्तवः ९ मध्यमण्डिका यस्य, गुणा-उत्तरगुणाः त एव तत्परिकरत्वात् केसराणि यस्य विद्यन्ते इति गुणकेसरवत् तस्य गुणकेसरवतः, आवकजनमधुकरीपरिवृतस्येति प्रकटार्थ, नवरमभ्युपेत्य सम्यक्त्वं प्रतिपन्नाण्व्रतोऽपि प्रतिदिवसं यतिभ्यः सकाशात् साधूनामभारिणां च समाचारीं शृणोतीति श्रावकः, उक्तं च—“योऽहम्भ्युपेतसम्यक्त्वो, यतिभ्यः प्रत्यहं कथाम् । शृणोति धर्मसम्बद्धामसौ श्रावक उच्यते ॥ १ ॥ ” जिनसूर्यतेजोबुद्धस्य-केवलज्ञानभास्करविशिष्टसंवेदनप्रभवधर्मदेशनावुद्धस्येति भावार्थः, श्रमणगणसहस्रपन्नस्येति प्रकटार्थमेव, नवरं श्राम्यतीति श्रमणः ‘कृत्यलुढो बहुल’ मिति वचनात् कर्त्तरि ल्युट्, श्राम्यतीति तपस्थिति, एतदुक्तं भवति-प्रवज्यादिवसादारभ्य सकलसावधयोगविरतो गुरुपदेशादनशनादि यथाशक्त्याऽऽप्राणोपरमात्तपश्चरतीति श्रमणः, उक्तं च—“यः समः सर्वभूतेषु, स्थावरेषु व्रसेषु च । तपश्चरति शुद्धात्मा, श्रमणोऽसौ प्रकीर्तितः ॥१॥ इति गाथाद्वयार्थः ॥ इदानीं सङ्घस्यैव सौम्यतया चन्द्ररूपकेण स्तवमाह— तवसंयमंगाहा ॥(*९-४५)॥ तपःसंयममृगलाञ्छन! तपःसंयममृगचिन्ह!-अक्रियाराहुमुखदुष्प्रधृष्य! इह अक्रियाशब्देन नास्तिका गृह्यन्ते, अनभ्युपगमाद्, अविद्यमानपरलोकक्रियाः अक्रियाः त एव राहुमुखं तेन दुष्प्रधृष्यः-अनभिभवनीयस्तस्यामन्त्रणं, नित्यमिति सदा जय सङ्घचन्द्र!, निर्मलसम्यक्त्वविशुद्धज्योत्स्नाक इह मिथ्यात्वभावतमोरहितं निर्मलं सम्यक्त्वमुच्यते तदेव विशुद्धा-निर्मला ज्योत्स्ना-चन्द्रिका यस्य स तथाविधः तस्यामन्त्रणमिति गाथार्थः ॥ अधुना सङ्घस्यैव प्रकाशकतया स्वैरूपकेण स्तवमाह— परतिष्ठियंगाहा ॥(*१०-४५)॥ परतीर्थिकग्रहप्रभानाशकस्य इह परतीर्थिकाः-कपिलकणभक्षाक्षपादादिमतावल-
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१] / गाथा ॥१०-१२॥
प्रत सूत्रांक [१] गाथा ॥१०- १२॥ दीप अनुक्रम [१०-१२]	नन्दी- हरिभद्रसूत्र- वृत्तिः ॥ १० ॥ म्विनः त एव ग्रहास्तेषां प्रभा-एकदुर्णयज्ञानलक्षणा तां नाशयति अनन्तनयसंकुलप्रवचनसमुत्थज्ञानालोकेन अपनयतीति समास- स्तस्य, तपस्तेजोदीप्तलेह्यस्य तपस्तेज एव दीप्ता-उज्ज्वला लेह्या दीधितयो यस्य, ज्ञानोद्योतस्येति गतार्थं, जगति लोके भद्रं-मङ्गलं भवतु, कस्य?-दमसङ्क्षयस्य दमः-उपशमो भण्यते तत्प्रधानः सङ्क्षयः दमसङ्क्षयस्तस्येति गार्थः॥साम्प्रतं सङ्क्षयैव महत्तया समुद्ररूपकेण स्तवमाह— भद्रं०गाथा ॥(११-४५)॥ सङ्क्षयसमुद्रस्य भद्रं भवत्विति क्रिया, किम्भूतस्य?-धृतिवेलापरिगतस्य धृतिः-आत्मपरि- णामः सैव वेला-वेदिका जलान्तररमणलक्षणा मर्यादा वा तथा परिगतस्तस्य, स्वाध्याययोगमकरस्य कर्मविदारणमहाशक्ति- युक्तत्वात् स्वाध्याय एव मकरो यस्मिस्तस्य, अक्षोभ्यस्य परीषदोपसर्गसम्भवे निष्प्रकम्पस्य भगवतः समग्रैश्वर्यादियुक्तस्य, रुन्दस्येति विस्तीर्णस्येति गार्थः॥ इदानीं सङ्क्षयैव स्थिरतयाऽचलेन्द्ररूपकेण स्तुतिं कुर्वन्नाह— सम्महंसण०गाथा॥(१२-४५)॥सम्यग् अविपरीतं दर्शनं सम्यग्दर्शनं तदेव प्रथमं मोक्षाङ्गत्वात् सारत्वाद्भ्रं सम्यग्दर्श- नवज्रं तदेव दृढं रूढं गाढं अवगाढं पीठं यस्य सङ्क्षमहामन्दरगिरेः स सम्यग्दर्शनवज्रदृढरूढगाढावगाढपीठस्तस्य, ‘बंद्दे’ चि द्वितीयाथे षष्ठी प्राकृतशैल्या आर्पत्वाच्च, तं वन्दे इत्यर्थः, तत् सम्यग्दर्शनवज्रपीठं, दृढमिति निष्प्रकम्पं शङ्कादिशल्यरहितत्वात्, रूढमिति वृद्धिमुपगतं, प्रतिसमयं विशुध्यमानत्वात्, प्रशस्ताध्यवसायस्थानेषु वर्तनात्, गाढमिति निविडं तीव्रतत्त्वरूपत्वात्, सुष्ठुभद्रा- नरूपत्वादित्यर्थः, अवगाढमिति निमग्नं, जीवादिपदार्थेषु सम्यगवबोधरूपतया प्रविष्टमित्यर्थः, धर्मवरेत्यादि धारयतीति धर्मः संघस्य सूर्यसमुद्र- तया स्तवः ॥ १० ॥ पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा ॥१२-१४॥		
प्रत सूत्रांक [-] गाथा ॥१२- १४॥ दीप अनुक्रम [१२-१४]	नन्दी- हारिभद्रोय वृत्तौ ॥ ११ ॥	धर्म एव वररत्नमण्डिता प्रधानरत्नमण्डिता चामीकरमेखला यस्य स धर्मवररत्नमण्डितचामीकरमेखलाकः, क्रियायोजना पूर्ववदे- व अवसेया, इह धर्मो द्विविधः, मूलगुणोत्तरगुणरूपः, तत्रोत्तरगुणधर्मो रत्नानि मूलगुणधर्मस्तु चामीकरमेखलेति, तथा च न राजते मूलगुणधर्मचामीकरमेखलोत्तरगुणधर्मरत्नभूषणविकलेति गाथार्थः ॥ नियमसूत्रिय० गाथा ॥ (*१३-४५) ॥ इहोत्सृतशब्दस्य व्यवहितः प्रयोगो द्रष्टव्यः, ततश्चैवं भवति-नियम एव कनकशिलातलानि- नियमकनकशिलातलानि तेषुच्छिन्नानि उज्ज्वलानि ज्वलन्ति चिन्तान्येव प्राकृतशैल्या कूटानि यस्मिन् स तथाविधः, इह च नियमः इन्द्रियनोइन्द्रियनियमः परिगृह्यते, उत्सृतानि अशुभाध्यवसायपरित्यागात्, उज्ज्वलानि प्रतिसमयं कर्ममलविगमात्, ज्वलन्ति सदा सूत्रार्थानुस्मरणरूपत्वात्, चिन्त्यते यैस्तानि चिन्तानि, उक्तं च-“चित्तरत्नमसंक्लिष्टमान्तरं धनमुच्यते। यस्य तन्मुषितं दौषैस्तस्य शिष्टा विपत्तयः ॥ १ ॥” इति, वनं वृक्षसमुदायः, नन्दनं च तद्वनं च नन्दनवनं, तत्र नन्दन्ति यत्र सुरसिद्धदैत्य- विद्याधरादयस्तन्नदं वनमित्यशोकसहकारादिजालं, मनो हरतीति मनोहरं, लतावितानविधिवपुष्पफलप्रवालाद्युपेतत्वात्, नन्दनवनं च तन्मनोहरं चेति ‘विशेषणं विशेष्येण बहुल’मिति समासः, तस्य, सुरभिश्चासौ शीलगन्धश्च सुरभिशीलगन्धः तेनाध्मातः व्याप्तो यः स तथाविधस्तस्य, क्रिया पूर्ववत्, इह च संघमंदरगिरेः सन्तोष एव नन्दनवनं, तथाहि-नन्दन्ति तत्र साधव इति, तदेव विविधामर्षौषध्या- दिलब्ध्युपेतत्वान्मनोहरं तस्य सुरभिशीलगन्ध एवेति, अथवा मनोहरत्वं सुरभिशीलगन्धविशेषणमिति गाथार्थः ॥ जीवदय० गाथा ॥ (*१४-४५) ॥ जीवदयेव सुन्दराणि स्वपरनिश्चिहेतुत्वात् कन्दराणि वस्तुतस्तपस्विनिलयत्वात्,	दूर्यस्या- चलेन्द्रतया स्तवः ॥ ११ ॥
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः			

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)
	 मूलं [] / गाथा ॥१६-२१॥
प्रत सूत्रांक [-] गाथा ॥१६- २१॥ दीप अनुक्रम [१६-२१]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ १३ ॥ सूर्यस्या- चलन्द्रतया स्तवः त एव स्फुरद्विद्युज्ज्वलन्ति शिखराणि यस्येति समासः, इह च विनयस्यान्तरतपोभेदत्वात्तपांस्येव स्फुरन्ति प्रावचनिकाश्च विशिष्टाचार्यादयः शिखराणि, ‘विविधगुणे’त्यादि, विविधा गुणा येषां ते विविधगुणाः, विशेषणान्यथाऽनुपपत्त्या साधवो गृह्यन्ते, त एव विशिष्टकुलोत्पन्नत्वात् सत्त्वसुखहेतुधर्मफलप्रदानाच्च कल्पवृक्षकाः विविधगुणकल्पवृक्षकाः, फलभरश्च कुसुमानि च २ विविधगुणकल्पवृक्षकाणां फलभरकुसुमानि २ तैराकुलानि वनानि यस्येति समासः, इह च फलभरो धर्मफलभरो गृह्यते, कुसुमानि ऋद्धयो, वनानि गच्छा इति गाथार्थः ॥ गाण०गाहा ॥(*१७-४६)॥ ज्ञानं च तद्वरं च २ परमनिर्वृत्तिहेतुत्वात् तदेवरत्नं दीप्यमानत्वात् कान्ता विमला वैडूर्यचूडा यस्य स तथाविधः, दीप्यते यथावस्थितजीवादिएदार्थस्वरूपोपलम्भात् , कान्ता भव्यजनमनोहरित्वाद् , विमला तदावरणाभावाद्, चन्द्रेति विनयप्रणतसंधमहामन्दरगिरेर्यन्माहात्म्यमिति, कर्मणि वा षष्ठीति गाथार्थः ॥ एवं संधनमस्कारा अपि प्रतिपादिताः, साम्प्रतमावलिका प्रतिपाद्यते, सा च त्रिविधा- तीर्थकरावलिका गणधरावलिका स्थविरावलिका च, तत्र तीर्थकरावलिकां प्रतिपादयन्नाह— वंदे० गाहा, विमल० गाहा ॥(*१८।१९-४७)॥ गाथाद्वयमपि निगदसिद्धं । गणधरावलिका तु या यस्य तीर्थकृतः सा प्रथमानुयोगानुसारेण द्रष्टव्येति, महावीरवर्द्धमानस्य पुनरियम्-‘पढमेतथ ईदृभूर्इ बीओ पुण होइ अग्गिभूइत्ति । तइए य वाउभूर्इ तओ वियत्ते सुहम्मि य ॥ १ ॥ मंडिय मोरियपुत्ते अंकपिए चेव अयलभाया य । मेयज्जे य पभासे गण- ॥ १३ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
	*** अथ गणधर-आवलिका दर्शयते

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः)
	 मूलं [] / गाथा २२-२४
प्रत सूत्रांक [-] गाथा २२- २४ दीप अनुक्रम [२२-२४]	नन्दी- हारिभद्राय वृत्तौ ॥ १४ ॥ हरा हुंति वीरस्स ॥ २ ॥' साम्प्रतं वर्त्तमानतीर्थाधिपतेः स्थविरावलिकां प्रतिपादयन्नतिशयभक्त्या सामान्यतस्तच्छासनस्तवं प्रतिपादयन्नाह— निष्ठबुद्धिपहं रूपकं ॥(*२२-४८)॥ निर्वृत्तिपथशासनकमित्यत्र यद्यपि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि निर्वाणमार्गस्तथाप्यनेन दर्शनचरणपरिग्रहः, यत आह-जयति सदा सर्वभावदेशनकं, सर्वभावरूपकमित्यर्थः, अनेन तु ज्ञानपरिग्रहः, अथवा निर्वृत्तिपथशासनकमित्यनेन सम्पूर्णनिर्वाणमार्गकथनमेवेति गृह्यते, जयति सदा सर्वभावदेशनकमित्यनेन तु विधिप्रतिषेधद्वारेण न निर्वृत्तिमार्गव्यतिरेकेण किञ्चिदस्तीति ख्याप्यते, यत एवंभूतमत एव कुसुममयमदनाशनकं कुसिद्धान्तावलेपनाशनकमित्यर्थः, जिनेन्द्रवरवीरशासनकं चरमतीर्थकरप्रवचनमिति हृदयं, अयं रूपकार्थः ॥ अधुना यैरविच्छेदेन स्थविरैः क्रमेणैदंगुनीनानामानीतं तदावलिकां प्रतिपादयन्नाह— सुधम्मं० गाथा ॥(*२३-४८)॥ इह स्थविरावलिका सुधर्मस्वामिनः प्रवृत्ता, उक्तं च-“तित्थं च सुधम्माओ णिरवच्चा गणहरा सेस” त्ति, अतस्तमेव पुरस्कृत्येयं प्रतिपाद्यते सुधर्म भगवद्गणधरं अग्निवैश्यायनमित्यग्निवैश्यायनसगोत्रं, तथा तच्छिष्यं जम्बुनामानं च काश्यपं काश्यपगोत्रं, तस्मात् प्रभवं तच्छिष्यं प्रभवनामानं कात्यायनमिति कात्यायनसगोत्रं, वन्दे इति क्रिया प्रत्येकमभिसम्बध्यते, तथा तच्छिष्यं ‘वच्छ’ मिति वत्ससगोत्रं सत्यम्भवं तथेति गाथार्थः ॥ जसम्भ० गाथा ॥(*२४-४९)॥ शय्यंभवशिष्यं यशोभद्रं ‘तुक्कि’ मिति तुक्किगणं व्याघ्रापत्यसगोत्रं वन्दे, अस्य च तीर्थ- करावलिका शासन- स्तवः ॥ १४ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
	*** अथ सुधर्मस्वामी आदि स्थविरावली प्रस्तूयते

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१] / गाथा ॥२४-२७॥
प्रत सूत्रांक [१] गाथा ॥२४- २७॥ दीप अनुक्रम [२४-२७]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ १५ ॥ द्वौ प्रधानशिष्यौ बभूवतुः, तद्यथा--सम्भूतविजयो भाट्टरसगोत्रः, भट्टबाहुश्च प्राचीनसगोत्र इति, तथा चाह-सम्भूतं चैव मादरं भट्टबाहुं प्राचीनमिति, तत्र सम्भूतस्य विनेयः स्थूलभट्टो गौतमसगोत्र आसीद्, आह च-स्थूलभट्टं च गौतममिति गाथार्थः ॥ एलावच० गाथा ॥(*२४-४९)॥ स्थूलभट्टस्यापि द्वावेव प्रधानशिष्यौ, तद्यथा-एलापत्यसगोत्रो महागिरिः वशिष्टसगोत्रः सुहस्ती च, यत आह-एलापत्यसगोत्रं वन्दे महागिरिं, सुहस्तिनं च, तत्र सुहस्तिनः सुस्थितमुप्रतिबुद्धादिक्रमेणावलिका यथा दसास्तु तथैव द्रष्टव्या, न तथेहाधिकारः, महागिर्यावलिकयेहाधिकारः, तत्र महागिरिर्बहुलबलिस्सहौ कौशिकसगोत्रौ जमलभातरौ द्वौ प्रधानशिष्यौ बभूवतुः, तयोरपि बलिस्सहः प्रावचनीय आसीदत आह-ततः कौशिकगोत्रं बहुलस्य सदृशवयसं, यमलत्वात्, चन्द इति गाथार्थः । हारिय० गाथा ॥(*२६-४९)॥ बलिस्सहशिष्यं हारीतसगोत्रं स्वार्तिं च वन्दे, तथा स्वातिशिष्यं हारीतं च हारीतसगोत्रमेव श्यामार्यं, शिष्यं च वन्दे कौशिकसगोत्रं साण्डिल्यं, किम्भूतं?-आर्यजीतधरं आराद्यातं सर्वहेयधर्मेभ्य इत्याप्यं, जीतमिति सूत्रं, जीतं मर्यादा व्यवस्था स्थितिः कल्प इति पर्यायाः, मर्यादादिकारणं च सूत्रमिति भावनीयं, धारयतीति धरः, आर्यजीतस्य धरः २ तं, अन्ये तु व्याचक्षते-किल साण्डिल्यस्य शिष्यः आर्यसगोत्रो जीतधरनामा स्मरिरासीदिति गाथार्थः ॥ तिसमुद्ग० गाथा ॥ (*२७-४९) ॥ साण्डिल्यशिष्यं वन्दे, आर्यसमुद्रमिति क्रिया, किम्भूतं?-त्रिसमुद्रख्यातकीर्तिं पूर्वदक्षिणापरास्त्रयः समुद्राः उत्तरतस्तु हिमवान् वैतादयो वेति, अत्रान्तरे प्रथितकीर्तिमित्यर्थः, द्वीपसमुद्रेषु गृहीतप्रमाणं अति- गणधरा- वलिका स्थीविरा- वलिका ॥ १५ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१] / गाथा ॥२७-३०॥
प्रत सूत्रांक [१] गाथा ॥२७- ३०॥ दीप अनुक्रम [२७-३२]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ १६ ॥ शयेन द्वीपसागरप्रज्ञप्तिविज्ञायकमिति भावः, अशुभितसमुद्रवद् गम्भीरो २ अतस्तमिति गाथार्थः ॥ भणग० गाथा ॥(*२८-५०)॥ आर्यसमुद्रशिष्यं वन्दे आर्यमङ्गुमिति योगः, किम्भूतं?-भणकं कालिकादिद्वयार्थं भण- तीति भणः स एव प्राकृतशैल्या भणकस्तं, कारकं कालिकादिसूत्रोक्तमेवोपधिप्रत्युपेक्षणादिक्रियाकलापं करोतीति कारकस्तं, ध्यातारं धर्मध्यानं ध्यायतीति ध्याता तं, इहौघतः कारकमित्युक्ते प्रधानपरलोकांगताख्यापनार्थं ध्यानस्य ध्यातारमिति विशेषाभिधानं, यत इत्थंभूतः अत आह-प्रभावकं ज्ञानदर्शनगुणानां यथावस्थितपदार्थावबोधादीनाम्, एकग्रहणाच्चजातीयग्रहणाच्चरणपरिग्रहः, श्रुतसागरपारमं धीरमिति गाथार्थः । ● णाणम्मि० गाथा (* २९-५०) आर्यमङ्गुशिष्यं आर्यनन्दिलक्षणं शिरसा वन्दे, प्रसन्नमनसं, किम्भूतं ?-ज्ञाने दर्शने च तपसि विनये च, अनेन चरणमाह, नित्यकालं उद्युक्तम्-अप्रमादिनमिति गाथार्थः ॥ वङ्कड गाथा (* ३०-५०) वर्द्धतां-वृद्धिमुपयातु, कोऽसौ ?-वाचकवंशः, तत्र विनेयेभ्यः पूर्वगतं सूत्रमन्यच्च वाचय- न्तीति वाचकाः तेषां वंशः भाविपुरुषपर्वप्रवाहः, किम्भूतः ?-यशोवंशः, अनेन विपक्षव्यवच्छेदमाह, तथा ह्यलमयशःप्रधानस्य संसारहेतोः परममुनिविधृतलिङ्गविडम्बकस्य वृद्धयेति, केषां सम्बन्धिसम्भूतः?-आर्यनन्दिलक्षणशिष्याणां आर्यनागहस्तिनां, किम्भूतानां ?-व्याकरणभंगिककर्मप्रकृतिप्रधानानां तत्र व्याकरणं-अन्नव्याकरणं शब्दप्राभृतं वा करणं-पिण्डविशुद्ध्यादि, उक्तं च-‘पिण्डविसोही समिती भावण पडिमा य इंदियणिरौहो । पडिलेहण गुत्तीओ अभिग्गहा चेव करणं तु ॥१॥’ भंगिकाः-चतुर्भ- गणधरा- वलिका स्थीचिरा- वलिका ॥ १६ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः ● अत्र द्वे प्रक्षेपे गाथे वर्तते. ते गाथे मत्संपादित “आगमसुत्ताणि” मूलं एवं सटीकं द्वयोः अपि पुस्तके मुद्रिते ।

आगम (४४) प्रत सूत्रांक [-] गाथा ३०- ३३ दीप अनुक्रम [३३-३५]	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा ३०-३३ 	स्थविराव- लिका नन्दी- हरिभद्राय वृत्ती ॥ १७ ॥ गिकाद्यास्तच्छ्रुतं वा कर्मप्रकृतिः प्रतीता एतेषु प्ररूपणामधिकृत्य प्रधानानामिति गार्थार्थः ॥ जच्चबंधधधाउसमप्पहाण० गाथा (* ३१-५१) जात्यश्वासावंजनधातुश्वेति समासः तत्समा प्रभादेहच्छाया येषां ते तथाविधास्तेषां, मा भूदत्यन्तकृष्णसम्प्रत्ययस्तत आह---मुद्रिकाकुवल्लयनिभानां पक्करसद्वाक्षानीलोत्पलनिभानामित्यर्थः, रत्नविशेषः कुवलयमित्यन्ये, तथाऽप्यविरोधः, वर्द्धतां वाचकवंशः, केषां ?-आर्यानांगहस्तिशिष्याणां रेवतिनक्षत्रनाम्नां रेवतिवाचकानामिति गार्थार्थः ॥ अचलपुरा० गाथा (* ३२-५१) अचलपुरात् निष्क्रान्तान् कालिकश्रुतानुयोगेन नियुक्ताः कालिकश्रुतानुयोगिकास्तान् यदा कालिकश्रुतानुयोग एषां विद्यत इति समासस्तान् कालिकश्रुतानुयोगिनः, धीरान् स्थिरान्, ब्रह्मद्वीपिकान् सिंधवान् ब्रह्मद्वीपिकशाखोपलक्षितान् सिंधाचार्यान् रेवतिवाचकशिष्यान्, वाचकपदं तत्कालापेक्षया उत्तमं प्रधानं प्राप्तानिति गार्थार्थः ॥ जेसि० गाथा (* ३३-५१) येषामयमनुयोगः प्रचरति अद्याप्यर्द्धभरते वैताढ्यादारतः, बहुनगरेषु निर्गतं प्रसिद्धं यशो येषां ते बहुनगरनिर्गतयशसः तान् वन्दे, सिंधवाचकशिष्यान् स्कन्दिलाचार्यान्, कहं पुण तेसिं अनुओगो ?, उच्यते, बारस-संवच्छरिए महन्ते दुब्भिक्खे काले भत्तट्टा फिटियाणं गहणगुणणणुप्पेहाभावतो सुत्तं विप्पणट्ठं, पुणो सुभिक्खे काले जाते महुराए महन्ते समुदए खंदिलारियप्पमुहसंधेण जो जं संभरइत्ति एवं संधडितं कालियं सुयं, जम्हा एयं महुराते कयं तम्हा माहुरा वायणा भन्नति, सा य खंदिलारियसम्मत्तचित्काउं तस्संतियो अनुओगो भण्णति, अने भणंति-जहा सुयं णो णट्ठं, तम्मि दुब्भि- ॥ १७ ॥
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा ॥३३-३६॥	
प्रत सूत्रांक [-] गाथा ॥३३- ३६॥ दीप अनुक्रम [३६-३८]	नन्दी- हरिमृद्गीय वृत्ति ॥ १८ ॥ कखकाले, जे अन्ने पहाणा अणुओगधरा ते विणट्ठा, एगे खंदिलायरिए संधरे, तेण महुराए पुणो अणुओगो पक्किओत्ति महुरा वायणा मम्मइ, तस्संतिओ अणुओगो भण्णइत्ति गाथार्थः ॥ तच्चत्तो० गाहा (* ३४-५१) ततः स्कन्दिलाचार्यशिष्यं हिमवन्तं वन्दे शिरसेति क्रिया, किम्भूतं? हिमवन्महाविक्रमे हिमवत इहिव महाविक्रमो-विहारव्याप्त्यादिलक्षणो यस्य स तथाविधस्तं 'धीपरकममणंत' न्ति अनन्तवृत्तिपराक्रमं, प्राकृतशैल्या तु अन्यथोपन्यासः, अनन्तः वृत्तिप्रधानः पराक्रमः कर्मक्रियता वा (शत्रुजये) यस्य स तथाविधस्तं 'सज्झायमणंतधरं' ति अनन्तस्वप्नाध्यायधरं, धरतीति धरः अनन्तगमपर्यायत्वादनन्तं-सूत्रं तद्विषयः स्वाध्यायस्तस्य धर इति समासः तमिति गाथार्थः ॥ कालिय० गाहा (* ३५-५२) मिउ० गाहा (३६-५२) कालिकश्रुतानुयोगस्य धारकान्, धारकांश्च पूर्वाणां-उत्पादादीनां, हिमवत्क्षमाश्रमणान् वन्दे, तथैतच्छिष्यानेव वन्दे नागार्जुनाचार्यानि गाथार्थः ॥ किम्भूतान् ?-सुखुमार्दवसम्पन्नान् उपलक्षणत्वान्मृदुत्वस्य, कान् ?-क्षमामार्दवार्जवसन्तोषसम्पन्नानित्यर्थः, आनुपूर्व्या वयःपर्यायकालगोचरया वाचकत्वं प्राप्तान्, ऐदंयुगीनानामपि सांमाचारीप्रदर्शनपरमेतत्, न चायुक्तं द्वितीयपदमाश्रित्यैदंयुगीनानामपि युज्यते कालोचिन्तानुपूर्वी विहाय कचिदप्याचार्यत्वाद्यारोपणं, महापुरुषाणां गौतमादीनामाशातनाप्रसंगात्, कृतं प्रसंगेन, संसार एव दण्डो भव्यगवदाज्ञावितथकारिणां इति, ओघश्रुतसमाचरकान् ओघश्रुतस्-उत्सर्गश्रुतं तत् समाचरन्ति ये ते तथाविधास्तान् नागार्जुनप्रवाचकान् वन्दे इति गाथार्थः ॥ स्थविरा- वलिका ॥ १८ ॥	
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१] / गाथा ॥४१-४४॥	
प्रत सूत्रांक [१] गाथा ॥४१- ४४॥ दीप अनुक्रम [४४-४६]	नन्दी- हारिमद्राय वृत्तौ ॥ २० ॥ गणिनमिति क्रिया, किम्भूतं ?—अर्थमहार्थस्त्वानिं खानिरिव खानिः अर्थमहार्थानां खानिः २ तं, तत्र भाषाऽभिधेयाः अर्थाः विभाषावार्तिकमोचरा महार्था इति, सुश्रमणव्याख्यानकथने निवृत्तिर्यस्य स तथाविधस्तं, तत्र व्याख्यानं प्रतीतं कथनं-संशये सति विनेयप्रश्नोत्तरकालभावि व्याकरणं, अथवा व्याख्यानम्-अनुयोगः कथनबोधतो धर्मस्य, धर्मकथेत्यर्थः, प्रकृत्या स्वभावेन मधुरवाचं मधुरगिरमिति गार्थार्थः ॥ सुकुमालकोमल० गाथा ॥(*४२-५४)॥ निगदसिद्धा, एवं आवालिकाक्रमेण महापुरुषाणां स्तवमभिधाय साम्प्रतं सामान्येनैव श्रुतधरनमस्कारं प्रतिपिपादयिषुराह— जे अस्मे भगवन्ते० ॥(*४३-५४)॥ ये चान्येऽदीता भाविनश्च भगवन्तः, श्रुतरत्नोपपेतत्वात् समग्रैश्वर्यादिमन्त इत्यर्थः, कालिकश्रुतानुयोगिनो धीराः सत्त्ववन्तस्तान् प्रणम्य शिरसा उत्तमाङ्गेन ज्ञानस्य-आभिनिबोधिकादेः प्ररूपणं वक्ष्ये, क एवमाह-दूष्यगणिशिष्यो देववाचक इति गार्थार्थः ॥ इदं च पञ्चप्रकारं ज्ञानम्, एतत्प्रतिपादकं चाध्ययनं योग्येभ्य एव विनेयेभ्यो दीयते, नायोग्येभ्य इत्यतो योग्यायोग्यविभागोपदर्शनार्थमेव तावदिदमाह— सेलघण० गाथा ॥(*४४-५४)॥ आह-शुभाध्ययनप्रदानाधिकारे समभावव्यवस्थितानां सर्वसत्त्वहितायोद्यतानां महापुरुषाणां अलं योग्यायोग्यविभागनिरीक्षणेन, न हि परहितार्थमिह महादानोद्यता महीयांसोऽर्थिगुणमपेक्ष्य प्रदानक्रियायां प्रवर्तन्ते दयालव इति, अत्रोच्यते, ननु यत एव शुभाध्ययनप्रदानाधिकारे समभावव्यवस्थिताः सर्वसत्त्वहितायोद्यता महापुरुषाश्च गुरवः अत एव अनुयोग- धर नमस्कारः योग्यायो- ग्यविचारः	॥ २० ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१] / गाथा ॥४४॥	
प्रत सूत्रांक [-] गाथा ॥४४॥ दीप अनुक्रम [४६]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ २१ ॥ योग्यायोग्यविभागोपदर्शनं न्याय्यं, मा भूदयोग्यप्रदाने तत्सम्यग्नियोगाक्षमार्थिजनानर्थ इति, न खलु तत्त्वतोऽनुचितप्रदानेनाया- सहेतुनाऽविवेकिनमर्थिजनमनुयोजयन्तोऽप्यनवगतपरार्थसम्पादनोपाया भवन्ति दयालव इत्यवधूय मिथ्याभिमानमालोच्यतामे- तदिति । आह-क इवायोग्यप्रदाने दोष इति, उच्यते, स ह्यचिन्त्यचिन्तामणिकल्पमनेकभवशतसहस्रोपात्तानिष्टदुष्टाष्टकर्मराशिजनित- दौर्गत्यविच्छेदकमपीदमयोग्यत्वादवाप्य न विधिवदासवते, लाघवं चास्य समापादयति, ततो विधिसमासेवकः कल्याणमिव मह- दकल्याणमासादयति, उक्तं च-‘आमे षडे निहत्तं जहा जलं तं घडं विणासेइ । इय सिद्धंतरहस्सं अण्पाहारं विणासेइ ॥१॥’ इत्यादि, अतोऽप्योग्यदाने दातृकृतमेव वस्तुतस्तस्य तदकल्याणमिति, अलं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुतः, तत्राधिकृतगाथां प्रपञ्चतः आवश्य- कानुयोगे व्याख्यास्यामः, इह पुनः स्थानाशून्यार्थं भाष्यगाथाभिर्व्याख्यायुत इति ॥ उल्लेख्य न सको गज्जइ इय मुग्गसेलओ रत्ने । तं संवट्टगमेहो सोउं तस्सोव्वरि पडइ ॥ १ ॥ रविओत्ति ठिओ मेहो उल्लो मि णवत्ति गज्जइ य सेलो । सेलसमं गाहेस्सं निव्विज्जइ गाहगो एवं ॥ २ ॥ आयरिए सुत्तंमि य परिवाओ सुत्तअत्थपालिमंथो । अन्नेसिंमि य हाणी पुट्ठावि न दुद्धया वंझा ॥ ३ ॥ बुट्ठेऽवि दोणमेहे ण कण्हभोमाउ लोड्डए उदगं । गहणधरणासमत्थे इय देवम- छित्तिकारिमि ॥ ४ ॥ भाविय इयरे य कुडा अपसत्थ पसत्थ भाविया दुविहा । पुप्फाईहि पसत्था सुरतेछाईहि अपसत्था ॥ ५ ॥ वम्मा य अवम्मावि य पसत्थवम्मा य होति अग्गेज्झा । अपसत्थवम्मावि य तप्पडिवक्खा भवे गेज्झा ॥ ६ ॥ कुप्पवयणओस- भेहि भाविया एवमेव भावकुडा । संविग्गेहि पसत्था वम्मावम्मा य तह चेव ॥ ७ ॥ जे पुण अभाविया खलु ते चतुधा अथविमो गमो अन्नो । छिद्द कुड भिन्नखंडे सगले य परूवणा तेसिं ॥ ८ ॥ सेले य छिड् चालिणि मिहो कहा सोउमुट्ठियाणं तु । छिड्हाऽऽह योग्या- योग्याः	॥ २१ ॥
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः		

[illegible]

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा ॥४५-४७॥	
प्रत सूत्रांक [-] गाथा ॥४५- ४७॥ दीप अनुक्रम [४७-५२]	नन्दी- हारिमदीय वृत्तौ ॥ २३ ॥ सुक्तं तथा अगहिते दुपरिग्राह्यं कथं तथा कलहो । पिबुण अइचिर विकथ गतेसु चोरा य उजगधं ॥ २६ ॥ मा गिण्हव इय दातुं उवजुंजिय देहि किं विचितेसि ? । विच्चाभेलियदाणे किलिस्ससी तं चऽहं चेव ॥ २७ ॥ भणिया जोग्गा २ सीसा गुरवो य तत्थ दोण्हं पि । वेयालियगुणदोसो जोगो जोगस्स भासेज्जा ॥ २८ ॥ एवं तावद्विभागतो योग्यायोग्यविनेयविभागोपदर्शनं कृत्वा साम्प्रतं सामान्येन पर्वदं प्ररूपयन्माह— सा समासओ तिविहा पणत्तेत्यादि, सा पर्वत्त समासतः संक्षेपेण त्रिविधा त्रिप्रकारा प्रज्ञप्ता प्ररूपिता, कैः ?—तीर्थकरगणधरैरिति गम्यते, ‘तथ्यथे’ त्युदाहरणोपन्यासार्थः, ‘ज्ञिके’त्यत्र ‘ज्ञा अवबोधन’ इत्यस्य ‘इगुपधज्ञाटकिरः क’इति (३-१-१३५) कप्रत्ययः, ‘आतो लोप इटि च किञ्चिती’त्या (६-४-६४) कारलोपः परगमनं टाप् जानातीति ज्ञा कप्रत्ययः ‘प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्थात् इदाप्यसुप्’ इति (७-३-४४) इत्वं, ज्ञिका-परिज्ञानवती, न ज्ञिका अज्ञिका- तद्विलक्षणा, दुर्विदग्धा मिथ्याबलेपगर्भा । तत्स्थिमा जाणिया-‘गुणदोसविसेसणू अणभिग्राहिया य कुस्सुत्तिमएसु । एसा जाणगपरिसा गुणतच्छिळा अगुण- वज्जा ॥ १ ॥’ इमा तु अयाणिया-‘पवतीमुद्ध अयाणिय मिगळावयसीहकुक्कुडयभूया । रयणमिव असंठविया सुहससण्णा गुणसमिद्धा ॥ २ ॥ इमा पुण दुव्वियङ्गिया- किंचिम्मसग्गाही पल्लवगाही य तुरियगाही य । दुव्वियङ्गिया उ एसा भणिया तिविहा भवे परिसा ॥ ३ ॥ साम्प्रतमिहदेवतास्तवादिसम्पादितसकलसौहित्यो देववाचकोऽधिकृताध्ययनविषयभूतस्य ज्ञानस्य प्ररूपणां कुर्वन्निदमाह— ‘णानं पंचविहं पणत्तं’ इत्यादि, (सूत्रम् १-६५) ज्ञातिः ज्ञानं ‘कृत्यल्युटो ल्हलं’ इति वचनाद्भावसाधनः, संविदि- पर्वदेदाः ॥ २३ ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः *** पर्वदायाः भेदानां वर्णनं क्रियते	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१] / गाथा ॥४७...॥		
प्रत सूत्रांक [१] गाथा ॥४५- ४७॥ दीप अनुक्रम [४७-५३]	नन्दी- हरिभट्टीय वृत्तौ ॥ २४ ॥	त्यर्थः, ज्ञायते वाज्जेनेति (अस्मादिति वा) ज्ञानं तदावरणक्षयोपशमादेव, ज्ञायतेऽस्मिन्निति क्षयोपशमे सति, ज्ञानमात्मैव विशिष्ट- क्षयोपशमयुक्तो जानातीति वा ज्ञानं तदेव स्वविषयसंवेदनरूपत्वात् तस्य, पञ्चविधमित्यत्र पञ्चेति संख्यावाचकः विधानं विधेत्यत्र 'दुधाञ् धारणपोषणयो' रित्यस्यानुबन्धलोपे कृते विपूर्वस्य स्त्रियां वर्तमानायां 'पिङ्गिदादिभ्योऽङि' ति (३-३-१०४) वर्तमाने 'आतश्चोपसर्गे' (३-१-१३६) इत्यनेन अङ्प्रत्ययः अनुबन्धलोपे कृते आतो लोप इति च किङ्ती (६-४-६४) त्यनेन चाकारलोपे कृते परगमने च 'अजाद्यतष्टाधिति' (४-१-४) टाप्प्रत्ययोऽनुबन्धलोपः परगमनं विधा, पञ्च विधा अस्येति समासो 'हस्यो नपुंसके प्रातिपदिकस्ये'ति (१-२-४७) वर्तमाने 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्ये' (१-२-४८) त्यनेन ह्रस्वत्वं, सुअम्भावः पञ्चविधं- पञ्चप्रकारमित्येतदेवमनवद्यं, कुव्याख्याव्यपोहार्थं चैतदेवं निदर्शितमित्यलं प्रसंगेन, प्रज्ञप्तं-प्ररूपितं, कैः? अर्थतस्तीर्थकरैः स्र ततो गणधरैरिति, उक्तं च—“अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा णिउणं । सासणस्स हियट्ठाए तओ सुत्तं पवत्तइ ॥ १ ॥ ” इत्यनेन स्वमनीषिकाव्यपोहमाह, अथवा प्राज्ञादाप्तं प्राज्ञाप्तं, तीर्थकरादाप्तमिति प्राप्तं गौतमादिभिः, अथवा प्राज्ञैराप्तं प्राज्ञाप्तं गौतमादिभिः, प्रज्ञया वाऽऽप्तं प्रज्ञाद्वाऽऽप्तं प्रज्ञाप्तं, सर्वैरेव संसारिभिरिति, तथाहि-न प्रज्ञाधिकलैरिदमवाप्यते इति भावनीयं, तद्यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थः, आभिनिबोधिकज्ञानं श्रुतज्ञानं अवधिज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं केवलज्ञानं चेति, तत्रार्थाभिमुखो नियतो बोधोऽभिनिबोधः स एव स्वार्थिकप्रत्ययोपादानादाभिनिबोधिकं, अभिनिबोधे वा भवं तेन वा निर्धृत्तं तन्मयं तत्प्रयोजनं वेत्याभि- निबोधिकं, अभिनिबुध्यते वा तदित्याभिनिबोधिकं-अवग्रहादिरूपं मतिज्ञानमेव, तस्य स्वसंविदितरूपत्वादभेदोपचारादित्यर्थः, अभिनिबोध्यतेऽनेनैत्याभिनिबोधिकं-तदावरणक्षयोपशम इति भावार्थः, अभिनिबुध्यतेऽस्मादिति वा आभिनिबोधिकं-तदावरणकर्म-	ज्ञानभेदा- नामुद्देशः ॥ २४ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अथ नन्दीसूत्रस्य प्रथम-सूत्र आरभ्यते, तदन्तर्गतः ज्ञानस्य भेदानां वर्णयते		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१] / गाथा ४७...
प्रत सूत्रांक [१] गाथा ४७.. दीप अनुक्रम [५३]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ २५ ॥ क्षयोपशम एव, अभिनिबुद्ध्यतेऽस्मिन्निति वा क्षयोपशमे सत्याभिनिबोधिकं, आत्मैव वा अभिनिबोधोपयोगपरिणामान्यत्वादभिनिबुद्ध्यत इति, आभिनिबोधिकं च तज्ज्ञानं चाभिनिबोधिकज्ञानं १ तथा श्रूयते इति श्रुतं-शब्द एव, भावश्रुतकारणत्वात्, कारणे कार्योपचारादिति भावार्थः, श्रूयते वा अनेनेति श्रुतं-तदावरणक्षयोपशम इति हृदयं, श्रूयतेऽस्मादिति वा श्रुतं-तदावरणक्षयोपशम एव, श्रूयतेऽस्मिन्निति वा क्षयोपशमे सति श्रुतं, आत्मैव श्रुतोपयोगपरिणामान्यत्वाच्छ्रुणोतीति, श्रुतं च तत् ज्ञानं च श्रुतज्ञानं २ तथाऽवधीयतेऽनेनेत्यवधिः, अवधीयत इत्यधोऽधो विस्तृतं परिच्छिद्यते मर्यादया वेति अवधिज्ञानावरणकर्मक्षयोपशम एव, तदुपयोगहेतुत्वादित्यर्थः, अवधीयतेऽस्मादित्यवधिस्तदावरणकर्मक्षयोपशम एव, अवधीयते तस्मिन्निति वेत्यवधिर्भावार्थः पूर्ववदेव, अवधानं वा अवधिः, विषयपरिच्छेदनमित्यर्थः, अवधिश्चासौ ज्ञानं च अवधिज्ञानं ३, तथा मनःपर्यायज्ञानमित्यत्र परिः सर्वतो भावे अयनं अयः गमनं वेदनमिति पर्यायाः, परि अयः पर्ययः, पर्ययनं पर्यय इत्यर्थः, मनसि मनसो वा पर्ययो मनःपर्ययः, सर्वतस्तत्परिच्छेद इत्यर्थः, स एव ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं, अथवा मनसः पर्याया मनःपर्याया धर्मा बाह्यवस्त्वालोकनादिप्रकारा इत्यनर्थान्तरं तेषु ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं तेषां वा सम्बन्धि ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं, इदं चाद्रितीयद्वीपसमुद्रान्तर्वर्त्तिसंज्ञिमनोगतद्रव्यालम्बनमेवेति भावार्थः ४, तथा केवलम्-असहायं मत्यादिज्ञाननिरपेक्षं, शुद्धं वा केवलमावरणमलकलंकाकरहितं, सकलं वा केवलं तत्प्रथमतयैवाशेषतदावरणाभावतः सम्पूर्णोत्पत्तेः, असाधारणं वा केवलं अनन्यसदृशमिति हृदयं, ज्ञेयानन्तत्वादनन्तं वा केवलं यथावस्थिताशेषभूतभवद्भाविभावस्वभावाविर्भासीति भावना, केवलं च तज्ज्ञानं च केवलज्ञानं ५ ॥ आह-एषां ज्ञानानामित्यमुपन्यासे किं प्रयोजनमिति, उच्यते, इह स्वामिकालकारणविषयपरोक्षत्वसाधर्म्यात् तद्भावे च शेषज्ञानभावादादेवेव मतिश्रुत- ज्ञानभेदा- नामुद्देशः ॥ २५ ॥
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१] / गाथा ॥४७...॥		
प्रत सूत्रांक [१] गाथा ॥४७...॥ दीप अनुक्रम [५३]	नन्दी- हरिभद्राचार्य वृत्ति ॥ २६ ॥	ज्ञानयोरुपन्यास इति, तथाहि-य एव मतिज्ञानस्य स्वामी स एव श्रुतज्ञानस्य, ‘तत्त्व मतिज्ञानं तत्त्व सुयज्ञानं’ ति वचनात्, तथा यावान् मतिज्ञानस्य स्थितिकालस्तावानेवेतरस्य, प्रवाहापेक्षया अतीतानानागतवर्तमानः सर्व एव, अप्रतिपत्तितैकजीवापेक्षया च षट्पाष्टिसागरोपमाण्यधिकानीति, उक्तं च भाष्यकारेण—“दो वारे विजयाइसुं गयस्स तिस्रऽच्छुते अहव ताई । अइरेगं नरभविंयं णाणाजीवाणं सव्वद्धं ॥ १ ॥” यथा मतिज्ञानं क्षयोपशमहेतुकं तथा श्रुतज्ञानमपि, यथा च मतिज्ञानमादेशतः सर्वद्रव्यादिविषयमेवं श्रुतज्ञानमपि, यथा मतिज्ञानं परोक्षं एवं श्रुतज्ञानमपीति, तथा मतिज्ञानश्रुतज्ञानयोरेव अवध्यादिज्ञानभावादिति । आह-एवमपि मतिज्ञानमादौ किमर्थमिति?, उच्यते, मतिपूर्वकत्वाद्विशिष्टमत्यंशरूपत्वाद्वा श्रुतस्यादौ मतिज्ञानमिति, उक्तं च-“मतिपुच्छं जेण सुयं तेणादीए मती विसिद्धो वा । मतिभेओ चेव सुयं तो मतिसमणंतरं भणियं ॥ १ ॥” इति, पर्याप्तं विस्तरेण । तथा कालविपर्ययस्वामिलाभसाधर्म्यान्मतिश्रुतज्ञानानन्तरमवधिज्ञानस्योपन्यासः, तथाहि-यावानेव मतिज्ञानश्रुतज्ञानयोः स्थितिकालः प्रवाहापेक्षयाऽप्रतिपत्तितैकसत्त्वाधारापेक्षया च तावानेवावधिज्ञानस्यापि अतः स्थितिसाधर्म्यं, तथा यथैव मतिज्ञानश्रुतज्ञाने विपर्ययज्ञाने भवत एवमिदं मिथ्याच्छेदविभंगज्ञानं भवतीति विपर्ययसाधर्म्यं, तथा य एव मतिज्ञानश्रुतज्ञानयोः स्वामी स एवावधिज्ञानस्यापि (इति) भवति स्वामिसाधर्म्यं, तथा विभंगज्ञाननिस्त्रिदशदेः सम्प्रदर्शनावाप्तौ युगपदेव ज्ञानत्रयलाभसम्भवाल्लाभसाधर्म्यं । तथा छद्मस्थविषयभावाध्यक्षसाधर्म्यादवधिज्ञानानन्तरं मनःपर्यायज्ञानस्योपन्यासः, तथाहि-यथाऽवधिज्ञानं छद्मस्थस्य भवत्येवं मनःपर्यायज्ञानमपि छद्मस्थस्यैवेति छद्मस्थसाधर्म्यं, तथा यथाऽवधिज्ञानं रूपिद्रव्यविषयमेवं मनःपर्यायज्ञानमपि सामान्येनेति विषयसाधर्म्यं, तथा यथाऽवधिज्ञानं क्षायोपशमिके भावे तथा मनः-	ज्ञानभेदानामुद्देशः ॥ २६ ॥
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः			

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [२,३] / गाथा ॥४७...॥	
प्रत सूत्रांक [२-३] गाथा ॥४७...॥ दीप अनुक्रम [५४-५५]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ २७ ॥ पर्यायज्ञानमपि इति भावसाधर्म्यं, तथा यथा अवधिज्ञानं प्रत्यक्षमेवं मनःपर्यायज्ञानमपीत्यध्यक्षसाधर्म्यं । तथा मनःपर्यायज्ञानानन्तरं केवलज्ञानस्योपन्यासः, तस्य सकलज्ञानोत्तमत्वात्, तथा अप्रमत्तयतिस्वामिसाधर्म्यात्, तथाहि-यथा मनःपर्यायज्ञानमप्रमत्तयतेरेव भवति एवं केवलज्ञानमपि अप्रमत्तभावयतेरेवेति साधर्म्यं, तथाऽवसानलाभाच्च, यो हि सर्वज्ञानानि समासादयति स खल्वन्त एवेदमाप्नोतीति भावना, विपर्ययाभावसाधर्म्याच्च, तथाहि-यथा मनःपर्यायज्ञानं विपरीतं न भवत्येवं केवलमपि इति साधर्म्यं, अलं विस्तरेणेति सूत्रार्थः, ‘तं समासतो बुबिहं पन्नत्त’मित्यादि (२-७१) तत् पंचप्रकारं ज्ञानं समासतः संक्षेपेण द्विविधमिति द्वे विधे अस्वेति द्विविधं-द्विप्रकारं प्रज्ञप्तं प्ररूपितं तद्यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थम्, प्रत्यक्षं च परोक्षं च, तत्र प्रत्यक्षमित्यत्र जीवोऽक्षः, कथं?, ‘अशू- व्याप्ता’वित्यस्य ज्ञानात्मनाऽऽनुतेऽर्थानित्यक्षः, व्याप्नोतीत्यर्थः, ‘अन्न भोजन’ इत्यस्य वाऽऽप्नोति सर्वाऽर्थानित्यक्षः, पालयति श्रुते चेत्यर्थः, तमक्षं प्रति वर्तते इति प्रत्यक्षं, आत्मनः अपरनिमित्तमवध्याद्यतीन्द्रियमिति भावार्थः, चक्षब्दः स्वगतानेकभेदप्रदर्शनपरः, विचित्रतां चास्योत्तरत्र वक्ष्यामः, परोक्षं चेत्यत्राक्षस्य-आत्मनः द्रव्येन्द्रियाणि द्रव्यमनश्च पुद्गलमयत्वात् पराणि वर्तन्ते, पृथगित्यर्थः, तेभ्योऽक्षस्य यत् ज्ञानमुत्पद्यते तत् परोक्षं, परनिमित्तत्वाद्भूमादभिज्ञानवद्, अथवा परैरुक्षा-संबन्धनं विषयविषयीभावलक्षणमस्येति परोक्षं, चक्षब्दः पूर्ववद्, एवमन्यत्राप्युत्प्रेक्ष्य चक्षब्दार्थो वक्तव्य इति सूत्रार्थः ॥ एवं भेदद्वये उपन्यस्ते सत्यनयोः सम्यक्-स्वरूपमनवगच्छन्नाह चादकः— ‘से किं तं पञ्चकखं ?०’ (२-७५) सेशब्दो मागधदेशीप्रसिद्धो निपातोऽथशब्दार्थे वर्तते, स च प्रक्रियादिवाचकः, यथोक्तं प्रत्यक्ष- परोक्षे ॥ २७ ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः *** ज्ञानस्य संक्षेप्तः द्वे भेदे प्रदर्शयते	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४-७] / गाथा [४७...]
प्रत सूत्रांक [४-७] गाथा [४७...] दीप अनुक्रम [५६-५९]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ २९ ॥ यत्पुनः साक्षादिन्द्रियमनोनिमित्तं तत्तेषामेव तत्प्रत्यक्षम्, अलिंगत्वाद्, आत्मनोऽवध्यादिवत्, न त्वात्मनः, आत्मनस्तु तत् परोक्षमेव, परनिमित्तत्वाद्धैमिकवत्, इन्द्रियाणामपि तदुपचारतः प्रत्यक्षं, न परमार्थतः, कथम्?, अचेतनत्वादित्यत्र बहु वक्तव्यं तच्चान्यत्र वक्ष्यामो, मा भूत् प्रथमग्रन्थ एव प्रतिपत्तिगौरवमित्यलं विस्तरेण, आह--‘स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणीन्द्रियाणी’ ति क्रमः, अयमेव च ज्यायान्, पूर्वपूर्वलाभ एवोत्तरोत्तरलाभाद्, अतः किमर्थमुत्क्रमः?, उच्यते, पश्चानुपूर्व्यादिन्यायज्ञापनार्थं, स्पष्टसंवेदनद्वारेण सुखप्रतिपत्त्यर्थं चेति, इह मनोज्ञानयपीन्द्रियज्ञानतुल्ययोगक्षेममेव द्रष्टव्यं, तथा चाभिनिबोधिकज्ञानप्ररूपणायां प्रत्यक्षत इति सेतं इदियपक्षकत्वं तदेतदिन्द्रियप्रत्यक्षम् ॥ ‘से किं तं णोइंदियपक्षकत्वं’ (५-७६) अथ किं तन्नोइन्द्रियप्रत्यक्षं? नोइन्द्रियप्रत्यक्षं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-अवधिज्ञान-प्रत्यक्षं इत्यादि ॥ ‘से किं तं’ इत्यादि (६-७६) अथ किं तदवधिज्ञानप्रत्यक्षं?, २ द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-भवप्रत्ययं च क्षायोपशमिकं च, तत्र भवन्त्यस्मिन् कर्मवशवर्तिनः प्राणिन इति भवः-नरकादिजन्मेति भावः, भव एव प्रत्ययः-कारणं यस्य तद्भवप्रत्ययं, च पूर्ववत्, तथा क्षयश्चोपशमश्च क्षयोपशमौ ताभ्यां निर्वृत्तं क्षायोपशमिकं ॥ तत्र यद्येषां भवति तत्तेषामुपदर्शनाह— ‘दोणह’मित्यादि (७-७६) द्वयोर्जीवसमूहयोः भवप्रत्ययं, तद्यथा-देवानां नारकाणां च, तत्र दीव्यन्तीति देवाः, निरूपमक्रीडामनुभवन्तीत्यर्थः, तेषां, तथा नरान् कायन्तीति नरकाः, योग्यतया शब्दयन्तीत्यर्थः, तेषु भवा नारकास्तेषां ॥ अत्राह-न- अवधेर- धिकारः ॥ २९ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अथ प्रत्यक्ष-ज्ञान भेदे ‘अवधिज्ञान’ वर्णयते

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं ७-९ / गाथा ॥४७...॥	
प्रत सूत्रांक [७-९] गाथा ॥४७...॥ दीप अनुक्रम [५९-६१]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ ३० ॥ नवधाधिज्ञानं क्षायोपशमिके भावे वर्तते देवनारकभवश्चौदयिकस्तत् कथं तद् भवप्रत्ययमिति, उच्यते, क्षायोपशमिकमेव तत्, किंतु स एव देवनारकमेव अवश्यं भावि, पक्षिणां गगनगमनलब्धिनिमित्तवदित्येता भवप्रत्यय इति, उक्तं च-“उदयकृत्स्नखयोवसमोवसमा जं च कम्मुणो भणिया । दब्बं खेत्तं कालं भावं च भावं च संपप्प ॥ ९ ॥ (पंचसं० ७६) तथा द्वयोः क्षायोपशमिकं, तद्यथा-मनुष्याणां पंचेन्द्रियतिर्यग्योनीनां च, न चैवामवश्यंतया भवतीत्यतः सत्यपि क्षायोपशमिकत्वे भवप्रत्ययाद् भिन्नमिदमिति, तत्त्वतस्तु सर्वमेव क्षायोपशमिकमिति ॥ अधुना क्षयोपशमस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—‘को हेऊ’ इत्यादि, को हेतुः? किंनिमित्तं किंविषयं क्षायोपशमिकं यद्वा किं कारणं क्षायोपशमिकमुच्यते इत्यध्याहारः, अत्र निर्वचनमभिधातुकाम आह-क्षायोपशमिकं तदावरणीयानाम्-अवधिज्ञानावरणीयानां कर्मणां उदीर्णानां उदयावलिकाप्राप्तानां क्षयेण प्रलयेन अनुदीर्णानां चात्मनि व्यवस्थितानामुपशमेन उदयनिरोधेन अवधिज्ञानमुत्पद्यत इति सम्बन्धः, यत एवमतः कर्मोदयानुदयविषयं, अथवा येन तदावरणीयानां कर्मणां उदीर्णानां क्षयेणानुदीर्णानामुपशमेनावधिज्ञानमुत्पद्यते तेन क्षायोपशमिकमित्युच्यत इति, स च क्षयोपशमो विशिष्टगुणप्रतिपत्तिमन्तरेण तथा गुणप्रतिपत्तितश्च भवति, तत्रान्तरेण यथाऽऽकाशे घनघनपटलाच्छादितमूर्तेर्दिवसकरमण्डलस्य कर्धचिद्रूपजातरन्ध्रेण विनिर्गतास्तिमिरनिचयप्रलयहेतवः किरणाः स्वावपातदेशास्पदं द्रव्यं शुद्धोत्तयन्ति तथा प्रकृतिभास्वरस्यात्मनो मिथ्यात्वादजनिजज्ञानावरणीयादिकर्ममलपटलतिमिरातिरस्कृतस्वभावस्यानादौ संसारे परिभ्रमतो यथाप्रवृत्त्योपजातावधिज्ञानावरणक्षयोपशमविवरस्यावधिज्ञानालोकः प्रसाधयति स्वकार्यमिति, गुणप्रतिपत्तितस्तु मूलगुणादिप्रतिपत्तेर्भवति, यत आह— ‘अथवा’ इत्यादि ॥ (९-८१) ॥ अथवेति प्रकारान्तरप्रदर्शनार्थं, अन्तरेण प्रतिपत्तिमित्यस्मादिदं प्रकारान्तरमेव, गुणाः- अवधे- रधिकारः ॥ ३० ॥	
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१-१०] / गाथा ४७... 	
प्रत सूत्रांक [१०] गाथा ४७... दीप अनुक्रम [६२]	नन्दी- हारिभद्रीय वृत्तौ ॥ ३१ ॥ मूलगुणादयस्तेः प्रतिपन्नो-गृहीतो गुणप्रतिपन्न इत्यनेन अतिशयपात्रतामाह, यतः पात्राश्रयिणो गुणाः, उक्तञ्च—“नोद- नानर्थितामेति, न चाभोभिर्न पूर्यते । आत्मा तु पात्रतां नेयः, पात्रमायान्ति सम्पदः ॥ १ ॥” अथवा प्राकृतशैल्या पूर्वापरनि- पातकरणात् प्रतिपन्नगुणस्य अनगारस्य न गच्छन्तीत्यगाः-वृक्षास्तैः कृतमगारं-गृहं नास्यागारं विद्यते इत्यनगारः परित्यक्तद्र- व्यभावगृह इत्यर्थः, तस्य प्रशस्ताध्यवसायस्य तदावरणकर्मक्षयोपशमे सत्यवधिज्ञानं समुत्पद्यते, तं समासतो इत्यादि, तद् अ- वधिज्ञानं समासतः संक्षेपेण षड्विधं षट्प्रकारं प्रज्ञप्तं प्ररूपितं, तद्यथा—अनुगामिकं अनुगमनशीलं, अनुगामिकं अवधि- ज्ञानं लोचनवद्गच्छन्तमनुगच्छतीतिभावार्थः, अननुगामिकं नावधिज्ञानिनं गच्छन्तमनुगच्छति संकलाप्रतिबद्धप्रदीपवत् इति ह- दयं, वर्धते वर्द्धमानं तदेव वर्द्धमानकं, संज्ञायां कन्, उत्पात्तिकालादारभ्य प्रवर्द्धमानं, महेन्धननिबन्धनोत्पद्यमानानलज्वालाक- लापवदिति भावना, हीयमानकं हीयते हीयमानं तदेव हीयमानकं, कुत्सायां कन्, उदयसमयसमनन्तरमेव हीयमानं दग्धेन्ध- नप्रायभूमध्वजाचिर्भ्रातवदित्यर्थः, प्रतिपाति प्रतिपतनशीलं प्रतिपाति कथंचिदापादिताजात्यमणिप्रभाजालवदिति गर्भार्थः, अप्रति- पाति न प्रतिपाति अप्रतिपाति क्षारमृत्पुटपाकाद्यापाद्यमानजात्यमणिकिरणनिकरवदित्यभिप्रायः, आह-आनुगायुकानानुगामिकमे- द्वय एव शेषभेदानां वर्द्धमानकादीनामन्तर्भावात् किमर्थमुपन्यास इति, उच्यते, सत्यप्यन्तर्भावे तद्विकल्पद्वयादेव तेषामपरिच्छित्तेः, तथाहि-आनुगायुकमनानुगायुकं चेत्युक्ते वर्द्धमानकादयो गम्यन्त इति, अज्ञातज्ञापनार्थं च शास्त्रप्रवृत्तिरित्यलं प्रसंगेन । ‘से किं तन्माणुगामिक’मित्यादि ॥ (१०-८२) ॥ अथ किं तदानुगायुकं अवधिज्ञानं?, २ द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—अन्त- गतं च मध्यगतं च, इहान्तः पर्यन्तो भण्यते, नान्तवत्, गतं स्थितामित्यनर्थान्तरं, अन्ते गतमन्तगतं अन्ते स्थितं, तच्च फड्ड- अवधे- भेदाः ॥ ३१ ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अथ अवधिज्ञानस्य भेदानां वर्णनं आरभ्यते	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०] / गाथा ४७... 		
प्रत सूत्रांक [९-१०] गाथा ४७... दीप अनुक्रम [६१-६२]	नन्दी- हरिभद्राय वृत्तौ ॥ ३२ ॥	कावधित्वादात्मप्रदेशान्ते, सर्वात्मप्रदेशक्षयोपशमभावतो वा औदारिकशरीरान्ते, एकीदगुपलम्भाद्वा तदुद्योतितक्षेत्रांते गतमंत- गतं, इह चात्मप्रदेशान्तगतमुच्यते, सकलजीवोपयोगे सत्यपि साक्षादेकदेशेनैव दर्शनात्, औदारिकशरीरान्तगतमपि, औदारिकश- रीरेकदेशेनैव दर्शनाच्च, यथोक्तक्षेत्रान्तगतं त्ववाधिमत्तस्तदन्तवृत्तेरिति भावना, चशब्दः पूर्ववत्, मध्यगतं इह मध्यः प्रसिद्ध ए- व दण्डादिमध्यवत्, मध्ये गतं मध्यगतं मध्ये स्थितं, तच्च सर्वत्र फड्कविशुद्धेरात्ममध्ये सर्वात्ममध्ये सर्वात्मनो वा क्षयोपशमयो- गाविशेषेऽपि औदारिकशरीरमध्योपलब्धेः तन्मध्ये सर्वदिगुपलम्भाद्वा तत्प्रकाशितक्षेत्रमध्ये गतं मध्यगतं, अत्र चात्ममध्यगतमभिधी- यते, सर्वात्मोपयोगे सत्यपि मध्य एव फड्कसद्भावात्, साक्षान्मध्यभागेनोपलब्धेः, औदारिकशरीरमध्यगतमप्यादैरिकशरीरमध्य भागेनैवोपलब्धेः, प्रस्तुतक्षेत्रमध्यगतं पुनरवधिज्ञानिनस्तत्र मध्ये भावादिति भावार्थः, चशब्दः पूर्ववत् । ‘से किं त’मित्यादि, प्रायः सुगमम्, नवरं उल्का-दीपिका चुडुली-पर्यन्तज्वलिता तृणपूलिका अलातम्-उल्मुकं मणिः-पन्नरा गादिः प्रदीपशिखादि ज्योतिः मल्लिकाद्याधारोऽग्निः प्रदीपः प्रतीतः पुरतः-अग्रतो हस्तदण्डादौ गृहीत्वा ‘पणोल्लेमाणे पणो- ल्लेमाणे’ति प्रेरयन् २ गच्छेद् यायात् सेतं तदेतत् पुरतोऽन्तगतम्, अयमत्र भावार्थः-स हि गच्छन् उल्कादिभ्यः सकाशात् पुरत एव पश्यति, नान्यत्र, एवं यतोऽवधिज्ञानाद्विधिक्षयोपशमनिमित्तत्वादेशपुरत एव पश्यति, नान्यत्र, तत् पुरतोऽन्तगतमभि- धीयते इत्येतावताऽशेन दृष्टान्त इत्येवं सर्वत्र योज्यम् । से किं तमित्यादि, निगदसिद्धं, नवरं ‘अणुकङ्क्रेमाणे २’ति अनुकर्षन् २, एवं ‘परियट्टेमाणे २’ परिकर्षन् २, अथ किं तन्मध्यगतमित्यादि निगदसिद्धमेव, नवरं मस्तके शिरसि कृत्वा गच्छेत् तदेतन्म- ध्यगतमिति, एतदुक्तं भवति-स तेन मस्तकस्थेन सर्वत्र तत्प्रकाशितमर्थं पश्यति, परमेवं यतोऽवधिज्ञानात् तदुद्योतितार्थवगमस्त-	अनु- गाम्याद्याः अन्त- गताद्याश्च ॥ ३२ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०-१२] / गाथा ४७...
प्रत सूत्रांक [१०-१२] गाथा ४७... दीप अनुक्रम [६२-६४]	नन्दी- हरिभट्टीय वृत्तौ ॥ ३३ ॥ मध्यगतमित्येतावताऽंशेन दृष्टान्त इति, इह व्याख्यातार्थं सम्यगनवगच्छन्नाह चोदकः- अंतगतस्स य इत्यादि सूत्रसिद्धं यावत् 'मज्झगतेण'मित्यादि, मध्यगतेनावधिज्ञानेन सर्वतः सर्वासु दिग्विदिक्षु समन्तात् सर्वैरात्मप्रदेशैर्विशुद्धफडुकैर्वा संख्येयानि वा असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति, अथवा समन्ता अवधिज्ञान्येव च गृह्यते, संख्येयानि चेत्यत्र संख्यायन्त इति संख्ये- यानि- एकादीनि शीर्षप्रहेलिकापर्यन्तानि गृह्यन्ते, तत ऊर्ध्वमसंख्येयानि, तदेतदानुगामुक्तमवधिज्ञानं इति । 'से किं त' मित्यादि ॥११-८९॥ प्रकटार्थमेव, नवरं ज्योतिःस्थानं-अग्निस्थानं कृत्वा तस्यैव ज्योतिःस्थानस्य पर्यन्तेषु, किमेकदिग्गतेषु १, नेत्याह- परिः सर्वतो भावे, ततश्च परिपर्यन्तेषु २ परिघूर्णन्, परिभ्रमन् इत्यर्थः, तदेव ज्योतिःस्थानं, ज्योतिः- प्रकाशितं क्षेत्रमित्यर्थः, पश्यति, अन्यत्र गतो न पश्यति, तदुपलम्भाभावात्, तदावरणक्षयोपशमस्य तत्क्षेत्रसम्बन्धसापेक्षत्वात्, एवमेव अनानुगामुक्तमवधिज्ञानं यत्रैव क्षेत्र व्यवस्थितस्य सतः समुत्पद्यते तत्रैव व्यवस्थितः सन् संख्येयानि वा असंख्येयानि वा योजनानि सम्बद्धानि वा असम्बद्धानि वा जानाति पश्यति, नान्यत्र, क्षेत्रसम्बन्धसापेक्षत्वादवधिज्ञानावरणक्षयोपशमस्य, तदेतद- नानुगामुक्तम् ॥ 'से किं त' मित्यादि ॥(१२-९०)॥ अथ किं तद्वर्द्धमानकं?, २ वर्द्धमानमेव वर्द्धमानकं प्रशस्तेष्वध्यवसायस्थानेषु वर्तमानस्य वर्तमानचारित्रस्य, इहौघतो द्रव्यलेश्योपरंजितं चित्तमध्यवसायस्थानमुच्यते, अस्य चानवस्थितत्वात्तद्द्रव्यसाचिव्ये सति विशेष- पभावाद्भुत्वमिति, तत्र प्रशस्तेष्वित्यनेनाप्रशस्तकृष्णलेस्यादिद्रव्योपरंजितव्यवच्छेदमाह, अध्यवसायस्थानेषु वर्तमानस्य, प्रश- अनानुगा- मुक्तं वर्ध- मानकं च ॥ ३३ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२] / गाथा ॥४८॥	
प्रत सूत्रांक [१२] गाथा ॥४८॥ दीप अनुक्रम [६४-६५]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ ३४ ॥ स्ताध्यवसायस्येत्यर्थः, सर्वतः समन्तादवधिः परिवर्द्धत इति योगः, अनेनाविरतसम्यग्दृष्टेरपि वर्द्धमानक उक्तो वेदितव्यः, वर्त्तमानचारित्रस्येत्यनेन तु देशविरतसर्वविरतयोरिति, विशुध्यमानस्य-तदावरणकर्ममलविगमादुत्तरोत्तरं शुद्धिमनुभवतः अविरतसम्यग्दृष्टेरेव, अनेनावधेः शुद्धिजन्यत्वमाह, विशुध्यमानचारित्रस्य देशसर्वविरतस्य सर्वतः समन्तादवधिः परिवर्द्धत इति, तत्र परिवर्द्धत इत्युक्तम्, अथ सर्वजघन्योऽयं कियत्प्रमाणो भवतीति प्रश्नसम्भवे क्षेत्रतः प्रतिपादयन्नाह— जावह्याङ्गाहा॥(*४८-९०)॥यावती यावत्प्रमाणा, आहारयतीत्याहारकः त्रिसमयं आहारकः त्रिसमयाहारकः त्रीन् वा समयानिति, तस्य, सूक्ष्मनामकर्मोदयात् सूक्ष्मस्तस्य, पनकश्चासौ जीवश्च पनकजीवः, वनस्पतिविशेषः इत्यर्थः, तस्य, अवगाहन्ते यस्यां प्राणिनः सा अवगाहना, तनुरित्यर्थः, जघन्या- सर्वस्तोका, अवधेः क्षेत्रं अवधिक्षेत्रं, जघन्यं- सर्वस्तोकं, तुशब्द एवकारार्थः, स चावधारणे, तस्य चैवं प्रयोगः-अवधिक्षेत्रं जघन्यमेतावदेवेति ॥ अत्र च सम्प्रदायसमधिगम्योऽयमर्थः— योजनसहस्रमानो मत्स्यो मृत्वा स्वकायदेशे यः । उत्पद्यते हि सूक्ष्मः पनकत्वेनेह स ग्राह्यः ॥ १ ॥ संहृत्य चाद्यसमये स ह्यायामं करोति च प्रतरम् । संख्यातीताख्याङ्गुलविभागबाहल्यमानं तु ॥ २ ॥ स्वतनूप्रथुत्वमात्रं दीर्घत्वेनापि जीवसामर्थ्यात् । तमपि द्वितीयसमये संहृत्य करोत्यसौ सूचिम् ॥ ३ ॥ संख्यातीताख्याङ्गुलविभागविष्कम्भमाननिर्दिष्टाम् । निजतनुप्रथुत्वदैर्घ्यां तृतीयसमये तु संहृत्य ॥ ४ ॥ उत्पद्यते च पनकः स्वदेहदेशे स सूक्ष्मपरिणामः । समयत्रयेण तस्यावगाहना यावती भवति ॥ ५ ॥ तावज्जघन्यमवधेरालम्बनवस्तुभाजनं क्षेत्रम् । इदमित्थमेव मुनिगणसुसम्प्रदायात् समवसेयम् ॥ ६ ॥ अवधेर्ज- घन्यं क्षेत्रं ॥ ३४ ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२...] / गाथा ॥४९-५३॥	
प्रत सूत्रांक [१२..] गाथा ॥४९- ५३॥ दीप अनुक्रम [६६-७०]	नन्दी- हारिभद्राय वृत्तौ ॥ ३६ ॥ सर्वदिक् एतावति क्षेत्रे यानि अवस्थितानि द्रव्याणि तत्परिच्छेदसामर्थ्ययुक्तः परमावधिः क्षेत्रमंगीकृत्य निर्दिष्टो, भावार्थस्तु पूर्ववदेव, अयमक्षरार्थः, इदानीं साम्प्रदायिकः प्रतिपाद्यते-तत्र सर्ववह्निजीवा वादराः प्रायोऽजितस्वामितीर्थकरकाले भवन्ति, तदारम्भकपुरुषबाहुल्यात्, सूक्ष्माश्चोत्कृष्टपदिनस्तत्रैवावरुध्यन्ते, ततश्च सर्ववहवो भवन्ति, तेषां च बुद्ध्या षोढाऽवस्थानं कल्प्यते, एकैकक्षेत्रप्रदेशे एकैकजीवावगाहनया सर्वतश्चतुरस्रो घनः प्रथमं, स एव जीवः स्वावगाहनया द्वितीयं, एवं प्रतरोऽपि द्विभेदः, श्रेण्यपि द्विभेदा, तत्राद्याः पञ्च प्रकारा अनादेशाः, क्षेत्रस्याल्पत्वात् क्वचित् समयविरोधाच्च, षष्ठः प्रकारस्तु सूत्रादेश इति, ततश्चासौ श्रेणी अवधिज्ञानिनः सर्वासु दिक्षु शरीरपर्यन्तेन भ्राम्यते, सा चासङ्ख्येयानलोके लोकमात्रान् क्षेत्रविभागान् व्याप्नोति, एतावदवधिक्षेत्रमुत्कृष्टमिति, सामर्थ्यमङ्गीकृत्यैवं प्ररूप्यते, एतावति क्षेत्रे यदि द्रष्टव्यं भवति पश्यति, न त्वलोके द्रष्टव्यमस्तीति गार्थार्थः ॥ एतत्तावज्जघन्यमुत्कृष्टं चावधिक्षेत्रमभिहितम्, इदानीं विमध्यमप्रतिपिपादयिषया एतावत्क्षेत्रोपलम्भे चैतावत्कालोपलम्भः तथा एतावत्कालोपलम्भे चैतावत्क्षेत्रोपलम्भ इत्यर्थस्य प्रदर्शनाय चेदं गाथाचतुष्टयं जगाद शास्त्रकारः— अंगुलमावलियाणं०॥(*५०)॥ हृत्थम्मि० गाहा ॥(*५१)॥ भरहम्मि०गाहा ॥(*५२)॥ संखेज्जम्मिउ० गाहा ॥(*५३-५०)॥ अंगुलं क्षेत्राधिकारात् प्रमाणाङ्गुलं गृह्यते, अवध्यधिकाराच्चोच्छ्रयाङ्गुलमित्येके, आवलिका असङ्ख्येयसमयसङ्घातोपलक्षितः कालः, उक्तञ्च-‘असंखेयाणं समयाणं समुदयसमितिसमागमेण एगा आवलिगत्ति बुच्चइ’ अङ्गुलं च आवलिका च अङ्गुलावलिके तयोरङ्गुलावलिकयोर्भागमसङ्ख्येयं पश्यति अवधिज्ञानी, एतदुक्तं भवति-क्षेत्रमङ्गुलासंख्येयभागमात्रं पश्यन् कालतः आवलिकायाः असंख्येयमेव भागं पश्यति, अतीतमनागतं चेति, क्षेत्रकालदर्शनं उपचारेणोच्यते, अन्यथा हि क्षेत्र- विमध्यमा- वधि- क्षेत्रकालौ ॥ ३६ ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२...] / गाथा ॥४९-५३॥
प्रत सूत्रांक [१२..] गाथा ॥४९- ५३॥ दीप अनुक्रम [६६-७०]	नन्दी- हारिभद्रा वृत्तौ ॥ ३७ ॥ व्यवस्थितानि दर्शनयोग्यानि द्रव्याणि तत्पर्यायांश्च विवक्षितकालान्तर्वर्तिनः पश्यति, न तु क्षेत्रकालौ, मूर्त्तद्रव्यालम्बनत्वात्, एवं सर्वत्र भावना द्रष्टव्या, क्रिया च गाथाचतुष्टयेऽप्यध्याहार्या, तथा द्वयोः अङ्गुलावलिकयोः सङ्ख्येयौ भागौ पश्यति, अङ्गुलसंख्येयभागमात्रं क्षेत्रं पश्यन्नावलिकायाः सङ्ख्येयभागमेव पश्यतीत्यर्थः, तथा अङ्गुलं पश्यन् क्षेत्रतः आवलिकान्तः पश्यति, भिन्नाभावलिकामित्यर्थः, तथा कालतः आवलिकां पश्यन् क्षेत्रतः अङ्गुलपृथक्त्वं पश्यति, पृथक्त्वं हि द्विप्रभृतिरानवभ्यः, इति प्रथम-गाथार्थः ॥ द्वितीयगाथाव्याख्या- हस्त इति हस्तविषयः क्षेत्रतोऽवधिः कालतो मुहूर्त्तान्तः पश्यति, भिन्नमुहूर्त्तमित्यर्थः, अवध्य-वधिमतोऽभेदोपचारादवधिः पश्यतीत्युच्यते, तथा कालतो दिवसान्तो भिन्नदिवसं पश्यन् क्षेत्रतो गव्यूत इति गव्यूतविषयो बोद्धव्यः, तथा योजनविषयः क्षेत्रतोऽवधिः कालतो दिवसपृथक्त्वं पश्यति, तथा पक्षान्तः-भिन्नं पक्षं पश्यन् कालतः पञ्चविंशतिं योजनानि पश्यतीति द्वितीयगाथार्थः ॥ तृतीयगाथाव्याख्या- भरत इति क्षेत्रतो भरतविषयेऽवधौ कालतः अर्द्धमास उक्तः, एवं जम्बूद्वीपविषये चावधौ साधिको मासः, वर्षं च मनुष्यलोकविषयेऽवधाविति मनुष्यलोकः खल्वर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रपरिमाणः, वर्षपृथक्त्वं च रुचकाख्यबाह्यद्वीपविषयेऽवधाववगन्तव्यमिति तृतीयगाथार्थः ॥ चतुर्थगाथाव्याख्या- सङ्ख्यायत इति सङ्ख्येयः, स च संवत्सरलक्षणोऽपि भवति, तुशब्दो विशेषणार्थः, किं विशिनष्टि ?, सङ्ख्येयो वर्षसहस्रात् परतोऽपि गृह्यते इति, तस्मिन् संख्येये कलनं कालः तस्मिन् काले अवधेर्गोचरे सति क्षेत्रतस्तस्यैवावधेर्गोचरतया द्वीपाश्च समुद्राश्च द्वीपसमुद्रा अपि भवन्ति संख्येयाः, अपिशब्दात् महानेकोऽपि तदेकदेशोऽपीति, तथा कालेऽसंख्येये पल्योपमादिलक्षणेऽवधेर्विषये सति तस्यैवासंख्येयकाल-परिच्छेदकस्यावधेः क्षेत्रतः परिच्छेद्यतया द्वीपसमुद्रास्तु भाज्याः कदाचिदसंख्येया एव, यदा इह कस्यचिन्मनुष्यस्यासंख्येयद्वीप- क्षेत्रकाल- वृद्धिः ॥ ३७ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२...] / गाथा ॥५३-५४॥
प्रत सूत्रांक [१२..] गाथा ॥५३- ५४॥ दीप अनुक्रम [७०-७१]	नन्दी- हरिभद्रा वृत्तिः ॥ ३८ ॥ समुद्रविषयोऽवधिरूपद्यत इति, कदाचिन्महान्तः संख्येयाः, कदाचिदेकदेशः स्वयम्भूरमणतिरश्चोऽवधिविज्ञेयः, स्वयम्भूरमणविषय- मनुष्यबाह्यावधेर्वा, योजनापेक्षया च सर्वपक्षेष्वसंख्येयमेव क्षेत्रमिति गाथार्थः ॥ एवं तावत् परिस्थूरन्यायमंगीकृत्य क्षेत्रवृद्ध्या कालवृद्धिरनियता कालवृद्ध्या च क्षेत्रवृद्धिः प्रतिपादिता, साम्प्रतं द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया यस्य वृद्धौ यस्य वृद्धिर्भवति यस्य वा न भवत्यमुमर्थमभिधित्सुराह— काले०गाथा ॥(५४-९०)॥ कालेऽवधिज्ञानगोचरे वर्द्धमाने चतुर्णां द्रव्यादीनां वृद्धिर्भवति, कालस्तु भाज्यो विकल्पयितव्यः, क्षेत्रस्य वृद्धिः क्षेत्रवृद्धिः तस्यां क्षेत्रवृद्धौ सत्यां कदाचिद्वर्द्धते कदाचिन्नेति, कुतः?, क्षेत्रस्य सूक्ष्मत्वात्, कालस्य च स्थूलत्वाद्, द्रव्यपर्यायौ तु वर्द्धन्ते, सप्तम्यन्तता चास्य-‘ए होइ अगरेत पयम्मि बीयाए बहुसु पुंल्लिगे । तइयाइसु लट्ठीसत्तमीण एकम्मि महि- लत्थे॥१॥’ अस्माल्लक्षणात् सिद्धेति, एवमन्यत्रापि प्राकृतशैल्या इष्टविभक्त्यन्तता पदानामवगन्तव्येति, तथा वृद्धौ च-द्रव्यं च पर्यायश्च द्रव्यपर्यायौ तयोर्वृद्धौ सत्यां भाज्यौ- विकल्पनीयौ क्षेत्रकालावेव, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, कदाचिदनयोर्वृद्धिर्भवति कदाचिन्नेति, द्रव्यपर्याययोः सकाशात् परिस्थूरत्वात् क्षेत्रकालयोरिति भावार्थः, द्रव्यवृद्धौ तु पर्याया वर्द्धन्त एव, पर्यायवृद्धौ च द्रव्यं भाज्यं, द्रव्यात् पर्यायाणां सूक्ष्मत्वाद् एकस्मिन् भावे (अ)क्रमवर्त्तिनामपि च वृद्धिसम्भवात् कालवृद्ध्यभावो भावनीय इति गाथार्थः ॥ अत्र कश्चिदाह- जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नयोरवधिज्ञानसम्बन्धिनोः क्षेत्रकालयोरंगुलावलिकाऽसंख्येयभागोपलक्षितयोः परस्परतः प्रदेशसमयसंख्यया परिस्थूरसूक्ष्मत्वे सति कियता भागेन हीनाधिकत्वमिति, अत्रोच्यते, सर्वत्र प्रतियोगिनः खल्वावलिकाऽसंख्ये- यभागादेः कालादसंख्येयगुणं क्षेत्रं, कुत एतदत आह— द्रव्यादि- वृद्धिनिधमः ॥ ३८ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [१५-१७] / गाथा [५५].....	
प्रत सूत्रांक [१५-१७] गाथा [५५] दीप अनुक्रम [७६-७८]	नन्दी- हरिभद्राय वृत्तौ ॥ ४० ॥ पाति आकेवलप्राप्तेरवधिज्ञानमिति, अयमत्र भावार्थः-एतावत्तुल्योपशमसम्प्राप्तात्मा विनिहृतप्रधानप्रतिपक्षयोद्धसंघात इव नरपतिर्न पुनः कर्मशत्रुणा परिभूयते, किं तर्हि ? , समासादितैतावदालोक एवाप्रतिनिवृत्तः शेषमपि कर्मशत्रुं विनिर्जित्याप्नोति केवलराज्य- श्रियमिति, लोकालोकविभागस्त्वयं-जीवादीनां वृत्तिद्रव्याणां भवति यत्र तत् क्षेत्रम् । तैर्द्रव्यैः सह लोकस्तद्विपरीतं ह्यलोकाख्यम् ॥ १ ॥ ‘सेत’ मित्यादि, तदेतदप्रतिपात्यवधिज्ञानमिति ॥ व्याख्याताः षड्भेदाः, साम्प्रतं द्रव्यादिविषयापेक्षया भेदतोऽ- वधिज्ञानमेव निरूपयन्नाह— ‘तं समासओ’ इत्यादि ॥ (१६-१७) ॥ तदवधिज्ञानं समासतः संक्षेपेण चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावत इति, तत्र द्रव्यतः णमिति वाक्यालंकारे अवधिज्ञानी जघन्येनानन्तानि द्रव्याणि तैजसभाषाद्रव्याणामपान्तरालवर्तीनि, यत् उक्तम्- ‘तेयाभासादव्वाण अंतरा एत्थ लभइ पट्टवओ’-त्ति, उत्कृष्टतः सर्वरूपिद्रव्याणि बादरद्वक्ष्मभेदभिन्नानि जानाति विशेषाका- रेण, पश्यति सामान्याकारेण, आह-आदौ दर्शनं ततो ज्ञानमिति क्रमः तत् किमर्थमेनं परित्यज्य प्रथमं जानातीत्युक्तम् ? , अत्रो- च्यते, इहावधिज्ञानाधिकारात् प्राधान्यख्यापनार्थमादौ जानातीत्युक्तं, अवधिदर्शनस्य त्ववधिविभगसाधारणत्वात् पश्चात् पश्य- तीति, अथवा सर्वा एव लब्धयस्सांकारोपयोगोपयुक्तस्योत्पद्यन्त इति, अवधेश्च लब्धित्वादित्यस्यार्थस्य ख्यापनार्थमादौ जाना- तीत्याह, ततः क्रमेणोपयोगप्रवृत्तेः पश्यतीति, क्षेत्रतः अवधिज्ञानी जघन्येनांगुलस्यासंख्येयभागं, उत्कृष्टतोऽसंख्येयानि अल्लोके केवलाकाशास्तिकाये शक्तिमपेक्ष्य लोकप्रमाणानि खण्डानि जानाति पश्यति, कालतोऽवधिज्ञानी जघन्येनावलिकासंख्येयभागं उत्कृ- ष्टतोऽसंख्येया अवसर्पिण्युत्सर्पिणीरतीतं चानागतं च कालं जानाति पश्यतीति, भावार्थः प्राक् प्रतिपादित एव, भावतोऽवधिज्ञानी अवधि- विषयाः द्रव्यादयः ॥ ४० ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अवधिज्ञानस्य द्रव्य आदि चत्वारः भेदानां वर्णनं क्रियते	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१७] / गाथा [५६-५७]	
प्रत सूत्रांक [१७] गाथा [५६- ५७] दीप अनुक्रम [७८-८१]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ ४१ ॥ जघन्येन अनन्तानन्तान् भावान्-पर्यायान्, आधारद्रव्यानन्तत्वात्, न तु प्रतिद्रव्यमिति, उत्कृष्टतोऽनन्तान् भावान् जानाति पश्यति, तेऽपि चोत्कृष्टपदिनः सर्वभावानां सर्वपर्यायाणामनन्तभाग इति ॥ इत्थमवधिज्ञानं भेदतोऽप्यभिधाय साम्प्रतं संग्रहगाथामाह— ओही भव० इत्यादि (* ५६-९८) अवधिर्मवप्रत्ययो गुणप्रत्ययश्च वर्णितो व्याख्यातः एषः अनन्तरं, पाठान्तरं वा वर्णितो द्विविधः, तस्य द्विविधस्यापि बहवो विकल्पा द्रव्यत इति द्रव्यविषयाः परमाणुकादिद्रव्यभेदात् क्षेत्रत इति क्षेत्रविषया अंगुलासङ्ख्येयभागादिविशिष्टक्षेत्रभेदात्, कालत इति कालविषयाः आवलिकाऽसङ्ख्येयभागाद्युपलक्षितकालभेदात्, चशब्दाद्भावविषयाश्च, वर्णाद्यनेकप्रकारत्वाद्भावानामिति गाथार्थः ॥ एवं तावदवधिज्ञानमभिधाय साम्प्रतं ये बाह्यावधयो ये चाभ्यन्तरावधयो भवन्ति तानुपदर्शयन्नाह— पेरइय० गाथा (* ५७-९८) नारकाश्च देवाश्च तीर्थकराश्चेति समासः, चशब्द एवकारार्थः, स चावधारणे, अस्य च व्यवहितः प्रयोग इति दर्शयिष्यामः, एते नारकादयः अवधेः अवधिज्ञानस्य न बाह्या अवाह्या भवन्ति, इदमत्र हृदयम्—अवध्युपलब्धक्षेत्रस्यान्तर्वर्तन्ते, सर्वतोऽवभासकत्वात् प्रदीपवत् अवाह्यावधय एव भवन्ति, नैषां बाह्यावधिर्मवतीत्यर्थः, तथा पश्यति सर्वतः सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च, खलुशब्दोऽप्येवकारार्थः, स चावधारणे, सर्वास्वेव दिक्ष्विति, आह-अवधेरवाह्या भवन्तीत्यस्मादेव सर्वत इत्यस्य सिद्धत्वात् सर्वतो ग्रहणमतिरिच्यत इति, अत्रोच्यते, नन्वभ्यन्तरत्वे सत्यपि न सर्वे सर्वतः पश्यन्ति, दिगन्तरालादर्शनाद्, अवधेर्विचित्रत्वात्, अतो नातिरिच्यते इति, शेषास्तिर्यग्रराः देशेनेत्येकदेशेन पश्यन्ति, अत्रेष्टतोऽवधारणविधेः शेषा एव देशतः अवधे- विषयः अवाह्याश्च ॥ ४१ ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१७] / गाथा [५६-५७]		
प्रत सूत्रांक [१७] गाथा [५६- ५७] दीप अनुक्रम [७८-८१]	नन्दी- हरिमहोदय वृत्ति ॥ ४२ ॥	पश्यन्ति, न तु देशत एवेति गार्थार्थः ॥ अथवाऽन्यथा व्याख्यायते-एवं तावदवधिज्ञानमभ्यधायि, साम्प्रतं ये नियतावधयो ये चानियतावधयो भवन्ति तान् प्रतिपादयन्नाह—“नेरइय” गाहा, नारका देवास्तीर्थकरा एव अवधेरवाहा भवन्ति, किमुक्तं भवति ?-नियतावधयो भवन्ति, नियमनैयामवधिर्भवतीत्यर्थः, तेन चावधिना पश्यन्ति सर्वत एव, न पुनर्देशतोऽपि, अत्राह-पश्यन्ति सर्वत एवेत्येतावदेवास्तु, अवधेरवाहा भवन्तीत्येतत्त्वनर्थकं, नियतावधित्वस्यार्थसिद्धत्वात्, तथा चोक्तम्-‘द्वयोर्भवप्रत्ययः, तद्यथा-देवानां च नारकाणां च’ त्वतोऽर्थगम्यमेवेषां नियतावधित्वं, तीर्थकृतामपि प्रसिद्धतरपारमविकावधिसमन्वागमादेव नियतावधित्वसिद्धिरिति, अत्रोच्यते, नियतावधित्वे सिद्धेऽपि न सर्वकालावस्थायित्वसिद्धिरित्यतस्तत्प्रदर्शनार्थं अवधेरवाहा भवन्तीति सदाऽवधिज्ञानवन्तो भवन्तीति ज्ञापनार्थत्वाददुष्टं, यद्येवं तीर्थकृतां सर्वकालावस्थायित्वं विरुध्यत इति, न, उन्नत्य-कालस्यैव विवक्षितत्वात्, अलं विस्तरेण, शेषं पूर्ववदिति गार्थार्थः । ‘सेतं ओहिणार्णति, तवेतदवधिज्ञानम् ॥ ‘से किं तं मणपज्जवणाण’ मित्यादि ॥ १७-१९ ॥ अथ किं तन्मनःपर्यायज्ञानं?, इदं प्राप्तिरूपितशब्दार्थ-मेव, साम्प्रतमुत्पत्तिस्वामिमार्गिणाद्वारेण चिन्त्यते, तथा चाह—‘मणपज्जवणाणं भेते’ इत्यादि, मनःपर्यायज्ञानं णमिति वा-क्यालङ्कारे, मदन्तः इति गुर्वामन्त्रणं, किमिति परिग्रहे, मनुष्याणामुत्पद्यत इति प्रकटार्थम्, अमनुष्याणामुत्पद्यत इत्यमनुष्या-देवादयः, अत्रेदं निर्वचनं-गौतम! माणुस्साणमित्यादि । आह-किमिदं अकाण्ड एव गौतमामन्त्रणं, ननु देववाचकरचितो-ऽयं ग्रन्थ इति, उच्यते, सत्यं, किन्त्वेते पूर्वसूत्रालापका एवार्थवशाद्विरचिताः, ‘जावइया तिसमयाहारगस्ते’ त्यादिनिर्युक्ति-गाथासूत्रवदित्यतो न दोषः, तत्र च गौतमप्रश्नभगवन्निर्वचनरूप एव ग्रन्थ इति, पुनरप्याह-ननु गौतमोऽपि सूत्रतः प्रवचन-	मनःपर्या- याधिकारः ॥ ४२ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अथ प्रत्यक्षज्ञान भेदे मनःपर्यवज्ञानस्य वर्णनं आरभ्यते		

[illegible]

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१८] / गाथा ५७...
प्रत सूत्रांक [१८] गाथा ५७... दीप अनुक्रम [८२]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ ४५ ॥ उद्धाटितज्ञा मध्यमबुद्धयः प्रपञ्चधियश्चेत्यलं विस्तरेण, स्थितमेतत्-प्राप्तर्षिअग्रमत्तसंयतानामुत्पद्यते, एतच्चोत्पद्यमानं द्विधोत्पद्यते, तद्यथा-ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च, मननं मतिः, संवेदनमित्यर्थः, ऋज्वी-सामान्यग्राहिणी मतिः ऋजुमतिः, घटोऽनेन चिन्तितः इत्यध्यवसायनिबन्धनमनोद्रव्यप्रतिपत्तिरित्यर्थः, एवं विपुला-विशेषग्राहिणी मतिर्विपुलमतिः घटोऽनेन चिन्तितः, स च सौवर्णः पाटलिपुत्रकोऽद्यतनो महानित्याद्यध्यवसायहेतुभूतमनोद्रव्यविज्ञप्तिरिति भावार्थः, अस्या व्युत्पत्तौ स्वतन्त्रं ज्ञानमेव गृह्यत इति, अथवा ऋज्वी-सामान्यग्राहिणी मतिरस्य सौवर्णं ऋजुमतिस्तद्वानेव गृह्यते, एवं विपुला-विशेषग्राहिणी मतिरस्येति विपुलमतिस्तद्वानेव, भावार्थः प्राग्वद्, उत्तरत्र वा वक्ष्यामः । “तं समासतो” इत्यादि (१८-१०७) तत् समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तं. तद्यथा—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतः, तत्र द्रव्यतः णमिति पूर्ववत् ऋजुमतिः अनन्तान् अपरिमितान् अनन्तपरमाण्यात्मकानित्यर्थः, स्कन्धान् विशिष्टैकपरिणामपरिणतान् संज्ञिभिः पञ्चेन्द्रियैः पर्याप्तैरर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रान्तर्वर्त्तिभिर्मनस्त्वेन परिणामितानित्यर्थः, जानीत इति मनःपर्यायज्ञानावरणक्षयोपशमस्य पटुत्वात् साक्षात्कारेण विशेषभूयिष्ठपरिच्छेदाज्जानीत इत्युच्यते, तदालोचितं पुनरर्थं घटादिलक्षणमध्यक्षतो न जानाति, किन्तु तत्परिणामान्यथाऽनुपपत्त्याऽनुमानतः पश्यतीत्युच्यते, उक्तं च भाष्यकारेण—“जाणति बज्जेऽणुमाणाओ” त्ति, इत्थं चैतदङ्गी-कर्त्तव्यं, यतो मूर्त्तद्रव्यालम्बनमेवेदं, मन्तारस्त्वमूर्त्तमपि धर्मास्तिकायादिकं मन्येरन्, नच तदनेन साक्षात्कर्तुं शक्यते, तथा चतुर्विधं च चक्षुर्दर्शनादि दर्शनमुक्तम्, अतो भिन्नालम्बनमेवेदमवसेयं, तत्र च दर्शनसम्भवात् पश्यतीत्यपि न दुष्टं, एकप्रमात्रपेक्षया तदनन्तरभावित्वान्चोपन्यस्तमिति, ओषतो वैकविधक्षयोपशमलब्धौ विविधोपयोगसम्भवाद्विशेषसामान्यार्थापेक्षया जानाति पश्यति मनःपर्या- याधिकारः ॥ ४५ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१८] / गाथा ५७...
प्रत सूत्रांक [१८] गाथा ५७... दीप अनुक्रम [८२]	नन्दी- हारिभद्रीय वृत्तौ ॥ ४७ ॥ लोभोवरि जे ते उवरिमा, के य ते?, उच्यते, सञ्चितिरियलोगवत्तिणो, तिरियलोगस्स वा अहो नव ज्ञेयणसतवत्तिणो, ताण चेव जे हेट्ठिमा ते जाव पश्यतीत्यर्थः, इमं च ण घडति, अहोलोइयगाममणपज्जवणाणसंभववाहल्लत्तणओ, उक्तञ्च-“इहाधोलौकिकान् ग्रामान्, तिर्यग्लोकविवत्तिनः । मनोगतांस्त्वसौ भावान्, वेत्ति तद्वत्तिनामपि ॥१॥” अलं प्रसंगेन, एवमूर्ध्वं यावज्ज्योतिश्चक्र-स्योपरितलं, तिर्यग्यावदन्तो मनुष्यक्षेत्रे, मनुष्यलोकान्त इत्यर्थः, शेषं सुगमं यावत् ‘संज्ञीणं पञ्चेन्द्रियाणां’मित्यादि, तत्र संज्ञिनोऽ-पान्तरालगतावपि तदायुष्कसंवेदनादभिधीयन्त एव, न तैरिहाधिकार इत्यतः पञ्चेन्द्रियग्रहणं, तेऽपि चोपपातक्षेत्रप्राप्ता अपि मनः-पर्याप्त्या अपर्याप्तका अपि भण्यन्ते, न च तैरपीहाधिकार इत्यतः पर्याप्तकग्रहणं इति, स्वरूपकथनं वा संज्ञिनां पञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तकानामिति, अथवा संज्ञिनो हेतुवादोपदेशेन विकलेन्द्रिया अपि भण्यन्ते, तद्व्यवच्छेदार्थं पञ्चेन्द्रियग्रहणं, तेऽप्यपर्याप्तका अपि भवन्ति अतः पर्याप्तग्रहणमिति, इह क्षेत्राधिकारस्यैव प्राधान्यात्तदेव मनोलब्धिसमन्वितजीवाधारक्षेत्रमभिगृह्यते, विपुलमतिः अर्द्धं तृतीयस्य येषु तान्यर्द्धतृतीयानि तैरभ्यधिकतरं, प्रभूततरमित्यर्थः, तदेव प्राकृतशैल्या अभ्यधिकतरकं, एवं शेषेष्वपि द्रष्टव्यं, तत्रैकदिशमभ्यधिकतरं भवत्यतः सर्वतोऽधिकतरमिति प्रतिपादनार्थमाह-विपुलतरं-विस्तीर्णतरम्, अथवा आयामविष्कम्भावाश्रि-त्यामभ्यधिकतरं, बाह्यमाश्रित्य विपुलतरं तथा विमुद्धतरं निर्मलतरमित्यर्थः, यथा चन्द्रकान्तादिप्रकाशकद्रव्यविमलतरवि-शेषाद्विमलप्रकाशितद्रष्टुः सकाशाद्विमलतरप्रकाशितद्रष्टा विशुद्धतरं पश्यति, एवं विष्कम्भितोदयमनःपर्यायज्ञानावरणस्य कारण-भेदतो मन्दतरविशेषभावात् ऋजुमतेः सकाशात् विपुलमतिर्विशुद्धतरमिति, उपशान्तावरणविशेषादपि ज्ञानस्य विशेष इत्येताव-ताऽऽज्ञेन दृष्टान्तः, तथा तदावरणक्षयोपशमविशेषाच्च चित्तिभिरतरं-निर्मलतरं, अथवा प्राग्बद्धतदावरणकर्मक्षयोपशमस्य प्रधान- मनःपर्या- याधिकारः ॥ ४७ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१९] / गाथा ॥५८॥	
प्रत सूत्रांक [१९] गाथा ॥५८॥ दीप अनुक्रम [८३-८५]	नन्दी- हरिभद्राय वृत्तौ ॥ ४८ ॥ त्वाद्विशुद्धतरं, बध्यमानावरणकर्मक्षयोपशमविशेषाच्च वितिमिरतरं, बध्यमानाभावाच्च वितिमिरतरमित्यन्ये, अथवैकार्थिका एवैते शब्दाः नानादेशज्ञानां विनैयानां कस्यचित् कश्चित् प्रसिद्धो भवतीत्युपन्यस्ताः, क्षेत्रं तात्स्थ्यात् तद्व्यपदेश इति जानाति पश्यति, शेषं निगदसिद्धं यावत्— मणपञ्जव० गाथा (५८-१०८) मनःपर्यायज्ञानं प्रागुनिरूपितशब्दार्थं, पुनःशब्दो विशेषणार्थः, इदं हि रूपिनि-बन्धनक्षयोपशमिकप्रत्यक्षादिसाम्येऽपि सत्यवधिज्ञानात् स्वाम्यादिभेदेन विशिष्टमिति स्वरूपतः प्रतिपादयन्नाह—जायन्त इति जनाः तेषां मनांसि २ जनमनोभिः परिचिन्तितः जनमनःपरिचिन्तितः जनमनःपरिचिन्तितश्चासावर्थश्चेति समासः, तं, प्रकटयति-प्रकाशयति जनमनःपरिचिन्तितार्थप्रकटनं, मानुषक्षेत्रम्-अर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रपरिमाणं तन्निबन्धनं, तदवहिर्यवस्थितप्राणिमनः-परिचिन्तितार्थविषयं प्रवर्त्तत इत्यर्थः, गुणाः-क्षान्त्यादयः त एव प्रत्ययाः-कारणानि यस्य तद् गुणप्रत्ययं, चारित्रमस्यास्तीति चारित्रवान् तस्य चारित्रवत एवेदं भवति, एतदुक्तं भवति-अप्रमत्तसंयतस्य आमर्षौषध्यादिक्रद्धिप्राप्तस्य चेति गाथार्थः ॥ ‘से तं मणपञ्जवणाणं,’ तदेतन्मनःपर्यायज्ञानमिति ॥ ‘से किं तं केवलज्ञान’मित्यादि ॥(१९-१११)॥ अथ किं तत् केवलज्ञानं?, केवलज्ञानं द्विविधं-प्रज्ञप्तं, तद्यथा-भवस्थकेवलज्ञानं च सिद्धकेवलज्ञानं च, भवन्त्यस्मिन् कर्मवशवर्त्तिनः प्राणिन इति भवः, भवो गतिर्जन्मेति पर्यायाः, भवे तिष्ठतीति भवस्थः तस्य केवलज्ञानं, ‘विधौ संरादौ’ ‘राध साध संसिद्धौ’ ‘विधूं शास्त्रे मांगल्ये च’ सिध्यति स्म सिद्धः-यो येन गुणेन निष्पन्नः-परिनि-	मनःपर्यायः केवलं च ॥ ४८ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अथ प्रत्यक्षज्ञान-भेदे केवलज्ञानस्य वर्णनं आरभ्यते	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१९] / गाथा ॥५८॥	
प्रत सूत्रांक [१९] गाथा ॥५८॥ दीप अनुक्रम [८३-८५]	नन्दी- हरिभद्रीय वृत्तौ ॥ ४९ ॥ छितो, न पुनः साधनीयः, सिद्धौदनवत् स सिद्धः, स च कर्मसिद्धादिमेदादनेकविधः, उक्तं च-‘कम्मे सिप्पे य विज्जा य, मंते जोगे य आगमे । अत्थ जत्ता आभिप्पाए, तवे कम्मक्खए इय ॥ १ ॥’ इह कर्मक्षयसिद्धेनाधिकारः, स चाशेषकर्माशक्षयात् कर्म-क्षयसिद्धः, सितध्वंसित्वात् सिद्धः, ‘सि वर्णगन्धनयो’रिति सितं- बद्धमष्टप्रकारं कर्म तद् ध्वंसितुं शीलमस्येति सितध्वंसी सिद्धः, तस्य केवलज्ञानं २ ॥ ‘से किं त’मित्यादि, अथ किं तद् भवस्थकेवलज्ञानं?, २ द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-सयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च अयोगिभवस्थके-वलज्ञानं च, इह युज्यन्ते इति योगाः-कायादयः, उक्तं च-‘कायवाङ्मनःकर्म योगः’ तत्रौदारिकादिशरीरयुक्तस्यात्मनो वीर्यपरिणति-विशेषः काययोगः, तथौदारिकवैक्रियाहारकशरीरव्यापाराहृतवाग्द्रव्यसमूहसाचिव्यात् जीवव्यापारो वाग्योगः, तथौदारिकवैक्रिया-हारकशरीरव्यापाराहृतमनोद्रव्यसमूहसाचिव्याज्जीवव्यापारो मनोयोगः, तद्यथासम्भवं योगोऽस्य विद्यत इति सयोगी सयोगी चासौ भवस्थश्च २, तस्य केवलज्ञानं, एवं न योगी २ स च भवस्थश्च तस्य केवलज्ञानं २, शैलेश्यवस्थागतस्येत्यर्थः, अथ किं तत् सयोगि-भवस्थकेवलज्ञानं?, २ द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-प्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च अप्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च, तत्र प्रथमसमयस्तत्प्रथमतयोत्पत्तिसमय एव गृह्यते, न प्रथमोऽप्रथमः-द्वितीयादयः सर्व एव शैलेश्यवस्थाप्राप्तेरप्रथमसमया इति, अथवेत्यन्यथा प्रतिपाद्यते, ‘चरमसमये’त्यादि, तत्र चरमः-सयोगिकालान्त्यसमयः, न चरमोऽचरमः पश्चानुपूर्व्या चरमादारभ्य सर्व एवाकेवलप्राप्तेरचरमा इति । ‘सेत’ मित्यादि, निगमनम्, ‘से किं त’मित्यादि, अत्रापि शैलेश्यवस्थाभाविकेवलज्ञानम-धिकृत्यैवमेव भावनीयमलं विस्तरेण । ‘सित’ मित्यादि, निगमनम्, तदेतद्भवस्थकेवलज्ञानम् ॥ केवलज्ञानं ॥ ४९ ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२०-२१] / गाथा ५८... 		
प्रत सूत्रांक [२०-२१] गाथा ५८... दीप अनुक्रम [८६-८७]	नन्दी- हरिभद्रा वृत्ति ॥ ५० ॥	‘से किं त’मित्यादि ॥ (२०-११३) ॥ अथ किं तत् सिद्धकेवलज्ञानं ?, सिद्धकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं च परम्परसिद्धकेवलज्ञानं च, तत्र शैलेश्वरस्यापर्यन्तवर्तिसमयसमासादितसिद्धत्वस्य तस्मिन्नेव समये यत् केवलज्ञानं तदनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं, ततो द्वितीयादिसमयेष्वनन्तामप्यनागताद्वा परम्परसिद्धकेवलज्ञानमिति ॥ ‘से किं त’मित्यादि ॥ (२१-१३०) ॥ प्रश्नसूत्रस्य निर्वचनम्-अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं पंचदशविधं प्रज्ञप्तं, सिद्धानामेवानन्तरभवगतोपाधिभेदेन पंचदशभेदभिन्नत्वात्, पंचदशभेदभिन्नतामेव दर्शयन्नाह-तद्यथा-तीर्थसिद्धा इत्यादि, तत्र येनेह जीवा जन्म-जरामरणसलिलं मिथ्यादर्शनाविरतिगंभीरं विचित्रदुःखगणकरिमकरं रागद्वेषपवनप्रक्षोभितमनन्तसंसारसागरं तरन्ति तत्तीर्थमिति, तच्च यथाऽवस्थितसकलजीवाजीवादिपदार्थप्ररूपकं अत्यन्तानवद्यान्याविज्ञातचरणकरणक्रियाधारं अचिन्त्यशक्तिसमन्विताविसंबा-बुधुपकल्पं चतुस्त्रिंशदतिशयसमन्वितपरमगुरुप्रणीतं प्रवचनम्, एतच्च संघः प्रथमगणधरो वा, तथा चोक्तम्- “तित्थं भंते तित्थं?, तित्थंकरे तित्थं ?, गोयमा! अरिहा नियमा ताव तित्थंकरे, तित्थं पुण चाउव्वण्णो समणसंघो पढमगणहरो वा” इत्यादि, ततश्च तस्मिन्नुपपन्ने ये सिद्धास्ते तीर्थसिद्धाः, अतीर्थसिद्धास्तीर्थान्तरसिद्धा इत्यर्थः, श्रूयते च ‘जिणन्तरे साहुचोच्छेओ’ति, तत्रापि जातिस्मरणादिनाऽवाम्नापवर्गमार्गाः सिध्यन्ति एव, मरुदेविप्रभृतयो वाऽतीर्थसिद्धास्तदा तीर्थस्यानुत्पन्नत्वात्, तीर्थकरसिद्धास्तीर्थकरा एव, अतीर्थकरसिद्धा अन्ये सामान्यकेवलिनः, स्वयंबुद्धाः सन्तो ये सिद्धास्ते स्वयंबुद्धसिद्धाः, प्रत्येकबुद्धाः सन्तो ये सिद्धास्ते प्रत्येकबुद्धसिद्धा इति। अथ स्वयंबुद्धप्रत्येकबुद्धयोः कः प्रतिविशेष इति, उच्यते, बोध्युपधिश्रुतलिंगकृतो विशेषः, तथाहि-स्वयंबुद्धा बाह्यप्रत्ययमन्तरेणैव बुध्यन्ते, प्रत्येकबुद्धास्तु न तद्विरहेण, श्रूयते च बाह्यवृषभादिप्रत्ययसापेक्षा करकंद्वादीनां प्रत्येकबुद्धानां बोधि-	सिद्ध- केवलज्ञानं ॥ ५० ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अत्र ‘सिद्ध’स्य पंचदश भेदानां वर्णयते		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [२१-२२] / गाथा ॥५८...॥	
प्रत सूत्रांक [२१-२२] गाथा ॥५८...॥ दीप अनुक्रम [८७-८९]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्ती ॥ ५१ ॥ रिति, उपाधिस्तु स्वयंबुद्धानां द्वादशविधः पात्रादिः, प्रत्येकबुद्धानां तु नवविधः प्रावरणवर्जः, स्वयंबुद्धानां पूर्वाधीतश्रुते अनियमः, प्रत्येकबुद्धानां तु नियमतो भवत्येव, लिंगप्रतिपत्तिः स्वयम्बुद्धानां आचार्यसन्निधावपि भवति, प्रत्येकबुद्धानां तु देवता प्रयच्छ- तीत्यलं विस्तरेण। ‘बुद्धबोधितसिद्धाः’ बुद्धाः-आचार्यास्तैर्बोधिताः सन्तो ये सिद्धास्ते इह गृह्यन्ते, एते च सर्वेऽपि केचित् स्त्रीलिंग- सिद्धाः केचित् पुल्लिंगसिद्धाः केचिन्नपुंसकलिंगसिद्धा इति, आह- तीर्थकरा अपि स्त्रीलिंगसिद्धा भवन्ति ?, भवन्तीत्याह, यत उक्तं सिद्धप्राभृते- ‘सर्ववर्त्योवा तित्थगरीसिद्धा, तित्थगरितित्थे णोतित्थसिद्धा संखेज्जगुणा, तित्थगरितित्थे णोतित्थगरिसिद्धाओ संखेज्जगुणाओ, तित्थगरितित्थे णोतित्थगरिसिद्धा संखेज्जगुणा’ इति, न तु नपुंसकलिंगः, प्रत्येकबुद्धास्तु पुल्लिंगा एव, स्वलिंग- सिद्धा द्रव्यलिंगं प्रति रजोहरणगोच्छकधारिणः, अन्यलिंगसिद्धाः परिव्राजकादिलिंगे सिद्धाः, गृहिल्लिंगसिद्धा मरुदेवीप्रभृतयः, एकसिद्धा इति एकस्मिन् समये एक एव सिद्धः, ‘अणेगसिद्धा’ इति एकस्मिन् यावद् अष्टशतं सिद्धं, यत उक्तम्-वत्तीसा अडयाला सुट्टी वावत्तरी य बोद्धव्वा। बुलसीती छन्नउई दुरहिय अट्टुत्तरसयं च ॥१॥ अत्राह चोदकः-ननु सर्व एवैते भेदास्तीर्थसिद्धाती- र्थसिद्धभेदद्वयान्तर्भाविनः, तथाहि-तीर्थसिद्धा एव तीर्थकरसिद्धाः, अतीर्थकरसिद्धा अपि तीर्थ[कर]सिद्धा वा स्युः अतीर्थसिद्धा वेत्येवं शेषेष्वपि भावनीयमिति, अतः किमेभिरिति, अत्रोच्यते, अन्तर्भावे सत्यपि पूर्वभेदद्वयादेवोत्तरोत्तरभेदाप्रतिपत्तेः, अज्ञातज्ञापनार्थं च भेदाभिधानमिति। ‘सेत’मित्यादि, निगमनम् ॥ ‘से किं तं परम्पर’ इत्यादि ॥ २२-१२३ ॥ न प्रथमसमयसिद्धाः अप्रथमसमयसिद्धाः- परम्परसिद्धविशेषणप्रथम- समयवर्तिनः, सिद्धत्वद्वितीयसमयवर्तिनः इत्यर्थः, ज्यादिषु तु द्विसमयसिद्धादयः प्रोच्यन्ते, यद्वा सामान्येनाप्रथमसमयसिद्धा अभि- सिद्ध- केवलज्ञानं ॥ ५१ ॥	
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [२२] / गाथा ॥५८...॥	
प्रत सूत्रांक [२२] गाथा ॥५८...॥ दीप अनुक्रम [८९]	नन्दी- हारिमद्रीय वृत्तौ ॥ ५२ ॥ धानविशेषतो द्विसमयादिसिद्धाभिधानमिति, शेषं प्रकटार्थं, यावत् तं समासतो इत्यादि, तदिति सामान्येन केवलज्ञानमभिगृह्यते, द्रव्यतः केवलज्ञानी सर्वद्रव्याणि—धर्मास्तिकायादीनि साक्षाज्जानाति पश्यति, क्षेत्रतः केवलज्ञानी सर्वं क्षेत्रं लोकालोकभेदभिन्नं साक्षाज्जानाति पश्यति, (ग्र० १०००) इह च धर्मास्तिकायादिसर्वद्रव्यग्रहणे सत्यप्याकाशास्तिकायस्य क्षेत्रत्वेन रुढत्वाद् भेदेनोपन्यासः, कालतः केवलज्ञानी सर्वं कालमतीतानागतवर्तमानभेदभिन्नं साक्षाज्जानाति पश्यति, भावतः केवलज्ञानी सर्वान् जीवाजीवगतान् भावान् गतिकषायाद्यगुल्लघुलक्षणादीन् साक्षाज्जानाति पश्यति । इह च केवलज्ञानदर्शनोपयोगचिन्तायां क्रमोपयोगादौ क्षीणामनेकविधा विप्रतिपत्तिः अतः संक्षेपतो विनेयजनानुग्रहाय तत्प्रदर्शनं क्रियत इति, तत्र-केई भणंति जुगवं जाणइ पासइ य केवली णियमा । अन्ने एगंतरियं इच्छंति सुओवदेसेणं ॥१॥ अन्ने ण चेव वीसुं दंसणमिच्छंति जिणवरिंदस्स । जं चिय केवलनाणं तंचिय से दंसणं षिंति ॥२॥ गाथाद्वयम्, अस्य व्याख्या-केचन सिद्धसेनाचार्यादयः भणंति, किं?, युगपद्-एकस्मिन्नेव काले जानाति पश्यति च, कः?, केवली, न त्वन्यः, नियमात्-नियमेन ॥ अन्ये जिनभद्रगणिकक्षमाश्रमणप्रभृतयः एकान्तरितं जानाति पश्यति चेत्येवमिच्छन्ति, श्रुतोपदेशेन यथाश्रुतागमानुसारेणेत्यर्थः, अन्ये तु वृद्धाचार्याः न नैव चिष्वक् पृथक् तद्दर्शनमिच्छन्ति जिनवरेन्द्रस्य, केवलिन इत्यर्थः, किं तर्हि?, यदेव केवलज्ञानं तदेव 'से' तस्य केवलिनो दर्शनं ब्रुवते, क्षीणावरणस्य देशज्ञानाभाववत् केवलदर्शनाभावादिति भावना, अयं गाथाद्वयार्थः । साम्प्रतं युगपदुपयोगवादिमतप्रदर्शनायाह—जं केवलाइं सादीं अपडजवासियाइं दोवि भणियाइं । ता षिंति केइ जुगवं जाणइ पासइ य सव्वन्नू ॥ ३ ॥ यस्मात् केवलज्ञानदर्शने साद्यपर्यवसिते द्वे अपि भाषिते ततः ब्रुवते केचन सि- केवलोप- योगवादः ॥ ५२ ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अत्र केवल ज्ञान-दर्शनयोः उपयोगस्य वादः दर्शयते	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२२] / गाथा ॥५८...॥
प्रत सूत्रांक [२२] गाथा ॥५८...॥ दीप अनुक्रम [८९]	नन्दी- हारिभद्राया वृत्तौ ॥ ५४ ॥ थाऽभिप्रायः । न च क्षयकार्येण अवश्यमनवरतमेव भवितव्यमिति दर्शयन्नाह—अहं णवि एवं तां सुणं जहेव खीणंतराहो अरहा । संतेवि अंतरायक्खयम्मि पंचप्पगारम्मि ॥ ७ ॥ सततं न देति लहति व भुंजति उवभुंजई व सव्वन्नू । कज्जम्मि देति लभति व भुंजति तहेव इहइपि ॥ ८ ॥ किंच-दितस्स लभंतस्स य भुंजंतस्स व जिणस्स एस गुणो । खीणंतराहयत्ते जं से विग्घं न संभवइ ॥ ९ ॥ उवउत्तस्सेमेव य णाणम्मि व दंसणम्मि व जिणस्स । खीणावरणगुणोऽयं जं कसिणं सुणइ पासइ वा ॥ १० ॥ सो-पासंतोऽवि न जाणइ जाणं व ण पासती जइ जिणंदो । एवं न कदाइवि सो सव्वन्नू सव्वदरिसी य ॥ ११ ॥ पश्यन्नपि न जानाति जानन्वा न पश्यति यदि जिनेद्रः एवं न कदाचिदप्यसौ सर्वज्ञः सर्वदर्शी वा, युगपदन्यतरोपयोगकालेऽन्यतरोपयोगाभावादिति गाथार्थः ॥ सिद्धान्तवाधाह—जुगवमजाणंतोऽवि हु चउहि वि णाणेहिं जहेव चउणाणी । भण्णइ तहेव अरहा सव्वन्नू सव्वदरिसी य ॥ १२ ॥ इयं तु निगदसिद्धेव, नवरं क्षायिकभावमाश्रित्येति गाथार्थः ॥ पुनरप्याह—तुल्ले उभयावरणक्खयम्मि पुव्वतरमुव्वमवो कस्स? । दुविहुवयोगाभावे जिणस्स जुगवंति चोदेति ॥ १३ ॥ तुल्ये उभयावरणक्षये केवलज्ञानदर्शनावरणक्षये पूर्वतरं प्रथमतरमुद्भवः—उत्पादः कस्य?, यदि ज्ञानस्य स किंनिबन्धन इति वाच्यं, तदावरणक्षयनिबन्धन इति चेत् दर्शनेऽपि तुल्य इति तस्याप्युद्भवप्रसंगः, एवं दर्शनेऽपि वाच्यं, अतः स्वावरणक्षयेऽपि दर्शनाभाववत् ज्ञानस्याप्यभावप्रसंगः विपर्ययो वा, एवं-द्विविधोपयोगाभावे जिनस्य युगपदिति चोदयति, अयं गाथार्थः ॥ अत्र सिद्धान्तवाधाह—भण्णति ण एस नियमो जुगवुप्पन्नेण जुगवमेवेह । होयव्वं उवओगेण एत्थ सुण ताव दिट्ठंतं ॥ १४ ॥ जहं जुगवुप्पत्तीयवि सुत्ते सम्मत्त- केवलोप- योगवादः ॥ ५४ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२२] / गाथा ॥५९॥
प्रत सूत्रांक [२२] गाथा ॥५९॥ दीप अनुक्रम [९०]	नन्दी- हारिभद्रीय वृत्तिः ॥ ५९ ॥ मत्तिसुतादीणं । णत्थि जुगबोवयोगो सव्वेसु तहेव केवलिणो ॥ १५ ॥ भणियं पि य पन्नत्तीपन्नवणादीसु जह जि- णो समयं । जं जाणती न पासइ तमणुरयणप्पभादीणं ॥ १६ ॥ इदं गाथात्रयमपि प्रकटार्थम् । अधुना ये केवलज्ञा- नदर्शनाभेदादिनस्तन्मतमुपन्यस्यन्नाह—जह किर खीणावरणे देसन्नाणाण संभवो न जिणे । उभयावरणादिते त- ह केवलदंसणस्सावि ॥ १७ ॥ निगदसिद्धा । सिद्धान्तवाद्याह—देसन्नाणोवरमे जह केवलणाणसंभवो भणिओ । देस- दंसणविगमे तह केवलदंसणं होउ ॥ १८ ॥ अह देसणाणदंसणविगमे तुह केवलं मयं णाणं । ण मतं केवलदंस- णमेच्छामेत्तं णणु तवेयं ॥ १९ ॥ भण्णइ जहोहिणाणी जाणइ व पासइ व भासितं सुत्ते । न य णाम ओहिदंसणणाणे- गत्तं तह इमं पि ॥ २० ॥ जह पासइ तह पासतु पासति सो जेण दंसणं तं से । जाणति य जेण अरहा तं से णाणंति वत्तव्वं ॥ २१ ॥ स्वपक्षसमर्थनायैव सिद्धान्तवाद्याह—णाणम्मि दंसणम्मि य एत्तो एगतरयम्मि उवउत्तो । सव्वस्स केवललिस्सा जुगबं दो णत्थि उवओगा ॥ २२ ॥ उवओगो एगयरो पणुवीसतिमे सते सिणायस्स । भणिओ वियडत्थो च्चिय छट्ठुहेसे विसेसेउं ॥ २३ ॥ गाथाद्वयमपि निगदसिद्धं, नवरं भगवत्यां पंचविंशतितमे शतेऽधि- कारोपलक्षिते ‘सिणायस्स’ स्ति स्नातकस्य केवलिनः । सिद्धान्तवाद्यनुद्धतत्वमागममर्क्ति च परां ख्यापयन्नाह—कस्स व णाणुमतमिणं जिणस्स जदि होज्ज दोवि उवओगा ? । पूर्णं ण होति जुगबं जेण णिसिंदो सुत्ते बहुसो ॥ २४ ॥ निगदसिद्धैवेत्यलं प्रसंगेन, प्रकृतं प्रस्तुतम् । ‘अह’० गाहा ॥ (५९--१३४) ॥ इह मनःपर्यायज्ञानानन्तरं सूत्रक्रमोद्देशतः शुद्धिलाभतश्च प्राक्केवलज्ञानमुक्तं, तदुपन्यस्तय- केवलज्ञानं ॥ ५९ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२३] / गाथा ॥६०॥	
प्रत सूत्रांक [२३] गाथा ॥६०॥ दीप अनुक्रम [९१-९२]	नन्दी- हरिभद्ररीय वृत्तौ ॥ ५६ ॥ इत्यतस्तदर्थोऽयमथशब्दः, उक्तं च-“अथशब्दः प्रक्रियाप्रज्ञानान्तर्गम्यमंगलोपन्यासप्रतिवचनसमुच्चयेषु’ सर्वाणि च तानि द्रव्याणि सर्वद्रव्याणि जीवाजीवलक्षणानि तेषां परिणामाः-प्रयोगविश्रसोभयाख्या उत्पादादयः सर्वद्रव्यपरिणामास्तेषां भावः सत्ता स्वलक्षणमित्यनर्थान्तरं तस्य विशेषेण ज्ञापनं विज्ञप्तिः विज्ञानं वा विज्ञप्तिः, तत्र भेदोपचारात्तस्या विज्ञप्तेः-परिच्छित्तेः कारणं सर्वद्रव्यपरिणामभावविज्ञप्तिकारणं, अथवा विज्ञप्तिरेव कारणं विज्ञप्तिकारणं, अत एव सर्वक्षेत्रकालविषयं तत्, क्षेत्रादीनामपि द्रव्यत्वात्, तच्च ज्ञेयानन्तत्वादनन्तं, अश्वद्भावाच्छाश्वतं, सदोपयोगादिति भावार्थः, प्रतिपत्तनशीलं प्रतिपाति न प्रतिपाति अप्रतिपाति, सदाऽवस्थितमित्यर्थः, आह—यच्छाश्वतं तदप्रतिपात्येवातः किं विशेषणेनेति?, उच्यते, मा भूद् यावद्भवति तावच्छाश्वत-मनवरतमेव भवतीति प्रतिपत्तिः, न पुनरवध्यादिवदन्यथेत्यतो विशेषणमित्यनवरतं भवति सर्वकालं चेति, अथवैकपदव्यभिचारेऽपि विशेषणविशेष्यभावो भवतीति ज्ञापनार्थं, तथाहि—शाश्वतमप्रतिपात्येव, अप्रतिपाति तु शाश्वतमशाश्वतं वा, अप्रतिपात्यवधेरप्यशाश्वतत्वादिति, एकविधम्-एकप्रकारं आवरणाभावात् क्षयस्थैकरूपत्वात्, केवलं-मत्यादिनिरपेक्षं, केवलं च तज्ज्ञानं चेति गार्थार्थः ॥ इह तीर्थकृतं समुपजातकेवलः सत्त्वानुग्रहार्थं देशनां करोति, तीर्थकरनामकर्मोदयात्, ततश्च ध्वनेर्द्रव्यश्रुतरूपत्वात्तस्य च भावश्रुतपूर्वकत्वात् श्रुतज्ञानसम्भवादिनिष्ठापत्तिरिति मा भून्मतिमोहोऽव्युत्पन्नबुद्धीनामित्यतस्तद्विनिवृत्त्यर्थमाह— ‘केवलं’ गाथा ॥ (* ६०—२३सू० १३९) ॥ इह तीर्थकरः केवलज्ञानेनार्थान्-धर्मास्तिकायादीन् मूर्त्तामूर्त्तान् अभिलाप्यान्मिलाप्यान् ज्ञात्वा विनिश्चित्य केवलज्ञानेनैव ज्ञात्वा, नतु श्रुतज्ञानेन, तस्य क्षायोपशमिकत्वात्, केवलिनश्च तदभावात्, सर्वशुद्धौ देशशुद्ध्यभावादित्यर्थः ‘तत्र’ तेषामर्थानां मध्ये प्रज्ञापनं प्रज्ञापना तस्या योग्याः प्रज्ञापनायोग्याः तान् भाषते-तानेव वाक्ते,	केवलज्ञानं ॥ ५६ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [२४] / गाथा ॥६०॥		
प्रत सूत्रांक [२४] गाथा ॥६०॥ दीप अनुक्रम [९३]	नन्दी- हरिभट्टीय वृत्ती ॥ ५७ ॥	नेतरानिति, प्रज्ञापनीयानिति न सर्वानेव भाषतेऽनन्तत्वाद् आयुषः परिमितत्वात्, किं तर्हि?, योग्यानेव, गृहीतृशक्त्यपेक्षया, यो हि यावतां योग्य इति, तत्र केवलज्ञानोपलब्धार्थभिधायकः शब्दराशिः प्रोच्यमानस्तस्य भगवतो वाग्योग एव भवति, न श्रुतं, नामकर्मोदयनिबन्धनत्वात्, श्रुतस्य च क्षायोपशमिकत्वात्, स च श्रुतं भवति ‘शेष’ शेषमित्यप्रधानं, एतदुक्तं भवति—श्रोतृणां श्रुतग्रन्थानुसारि भावश्रुतनिबन्धनत्वाच्छेषम्-अप्रधानं द्रव्यश्रुतमित्यर्थः, अन्ये त्वेवं पठन्ति-‘बहजोग सुयं हवइ तेसिंस वाग्योगः श्रुतं भवति तेषां श्रोतृणां, भावश्रुतकारणत्वादित्यभिप्रायः, अथवा वाग्योगः श्रुतं द्रव्यश्रुतमेवेति गार्थः। ‘से तं’ इत्यादि निगमनम्। तदेतत् केवलज्ञानं, तदेतत्प्रत्यक्षम्। एवं प्रत्यक्षे प्रतिपादिते सति परोक्षस्वरूपमनवगच्छन्नाह चोदकः— ‘से किं त’ मित्यादि ॥(२४-१४०)॥ अथ किं तत् परोक्षं?, परोक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानपरोक्षं च श्रुतज्ञानपरोक्षं च, चौ पूर्ववत्, अनयोश्चेत्थं क्रमोपन्यासे प्रयोजनमुक्तमेव ॥ साम्प्रतं स्वाम्यभेदप्रतिपादनायाह—‘जत्थ आभिणिबोहियणाणं मित्यादि, यत्र पुरुषे इन्द्रियोहोन्द्रियक्षयोपशमे वा आभिनिबोधिकज्ञानं तत्रैव पुरुषादौ श्रुतज्ञानं, तथा यत्र श्रुतज्ञानं तत्राभिनिबोधिकज्ञानम्। आह—यत्राभिनिबोधिकं ज्ञानं तत्र श्रुतज्ञानमित्युक्ते यत्र श्रुतज्ञानं तत्राभिनिबोधिक-ज्ञानमिति गम्यत एवेत्यतः किमनेनोक्तेनेति?, अत्रोच्यते, नियमतो न गम्यत इत्यतो नियमार्थं, तथा चाह—‘दोवि एयाइ’ इत्यादि, द्वे अप्येते-आभिनिबोधिकश्रुते अन्योऽन्यानुरागे-परस्परं प्रतिबद्धे, स्यादेतद्-एवं सत्यभेद एवास्त्वनयोरित्याशङ्क्याह—‘तह्वि पुणो’ इत्यादि, तथापि पुनराचार्याः नानात्व-भेदं प्रज्ञापयन्ति प्ररूपयन्ति, कथं?, लक्षणभेदाद्, दृष्टवान्योऽन्यानुरागतयोरप्येकाकाशस्थयोर्धर्माधर्मास्तिकाययोर्लक्षणभेदाद्देद इति, तत्र यो हि गतिपरिणामपरिणतयोर्जीवपुद्गलयोर्गत्युपष्टम्भहेतुजलमिव झषस्य स	मतिश्रुत- योर्भेदः ॥ ५७ ॥
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः			
*** अथ परोक्षज्ञान-भेदे ‘मतिज्ञान’ वर्णयते			

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२४] / गाथा ६०
प्रत सूत्रांक [२४] गाथा ६० दीप अनुक्रम [९३]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्ती ॥ ५८ ॥ खल्वसंख्येयप्रदेशात्मकोऽमूर्तो धर्मास्तिकाय इति, तथा यः स्थितिपरिणामपरिणतयोर्जविषुद्वलयोरेव स्थित्युपहृतमेहेतुर्विवक्षया क्षितिरिव ज्ञापक स खल्वसंख्येयप्रदेशात्मकोऽमूर्त एवाधर्मास्तिकाय इति, एवभाभिनिबोधिकश्रुतयोरपि लक्षणभेदाद्भेदः, तथा चाह—‘अभिणिबुद्धइ’ इत्यादि, अभिनिबुध्यते इत्याभिनिबोधिकं—आत्मनः परिणाभविशेषः, एवं शृणोतीति श्रुते—आत्मन एव परिणामविशेष इति, एतदुक्तं भवति—यदिन्द्रियमनोनिमित्तमात्मनो विज्ञानं श्रुतग्रन्थानुसारेणोपजायते तत् श्रुतं, शेषमिन्द्रियमनोनिमित्तमाभिनिबोधिकमिति । इत्थं लक्षणभेदाद्भेदमभिधायाद्युना प्रकारान्तरेण भेदमभिधिस्तराह—‘मतिपुरवं सुतं, न मती सुयपु- त्रिया’ ‘पु पालनपूर्णयो’रित्येतस्य पूर्यते प्राप्यते प्राल्प्यते वाऽनेन कार्यमिति पूर्वकारणं, मतिः पूर्वमस्येति मतिपूर्वं, श्रुतं- श्रुतज्ञानं, तथा चेदं मत्या पूर्यते प्राप्यते प्राल्प्यते वा, अन्यथा प्रणश्यतीत्यर्थः, न मतिः श्रुतपूर्वेत्ययं महान् भेद इति ॥ अत्राह— मतिश्रुतयोर्युगपदेव सम्यक्त्वबाष्ठाभाव उक्तः, अज्ञानयोरपि विगमः, तत् कथं मतिपूर्वं श्रुतमिति ?, किंच—मतिपूर्वकत्वेऽभ्युपग- म्यमाने सति मतिज्ञानभावेऽपि तत्कालं श्रुतमज्ञानं प्राप्तोति, अनार्षं चेदमिति, अत्रोच्यते, ननु लब्धि प्रति मतिश्रुते समकाले भवतः, न तुपयोगोऽनयोः समकाले इति मतिपूर्वं श्रुतं, इह पुनः को भावार्थः ?-श्रुतोपयोगो मतिप्रभवः, यतो नासंचिन्त्य मत्या श्रुतग्रन्थानुसारि विज्ञानमुत्पद्यते। आह—एवं मतिरपि श्रुतपूर्वा भवत्येव, तथाहि-शब्दं श्रुत्वा या मतिरुत्पद्यते सा श्रुतपूर्वेति प्रतीयते, अतो न विशेषो, यथा मतिपूर्वं श्रुतं तथा मतिरपि श्रुतपूर्वेति, अत्रोच्यते, ननु सा द्रव्यश्रुतोद्भवा वर्तते, इह तु न मतिः श्रुतपूर्वेति, का भावना?, भावश्रुतात् सकाशात् मतिर्नास्तीति, यद्वा कार्यतया निषिध्यते, न पुनः क्रमेण, क्रमेण तु श्रुतोपयोगात् व्युत्पन्नस्य मत्यव- स्थानमिष्यते एवेत्यलं प्रसङ्गेन, न चैतत् स्वमनीषिकयोच्यते, यतोऽभ्यधायि आप्यच्छ्रुता—“पाणाणञ्ज्याणाणि य समकालाई यतो मतिश्रुतयो भेदः ॥ ५८ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दिसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [२५] / गाथा ॥६०...॥	
प्रत सूत्रांक [२५] गाथा ॥६०...॥ दीप अनुक्रम [९४]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ ५९ ॥ मइसुयाइं । तो न सुयं मतिपुव्वं मतिणणे वा सुयऽण्णाणं ॥ १ ॥ इह लद्धिमइसुयाइं समकालाइं न त्वयोगो सिं । मतिपुव्वं सुय- मिह पुण सुतोपयोगो मतिप्पभवो ॥ २ ॥ सोऊण जा मती ते सुयपुव्वत्ति तेण ण विसेसो । सा दव्वसुयप्पभवा भावसुयाओ मती नत्थि ॥ ३ ॥ कज्जतया ण तु कमसो कमेण को वा मतिं निवारो ॥ ४ ॥ इतश्च मतिश्रुतयोर्भेदः, भेदभेदात्, तथाहि-अवग्रहादिभेदादष्टाविंशतिविधं मतिज्ञानं, अङ्गप्रविष्टाद्यनेकभेदभिन्नं च श्रुतज्ञानं, इन्द्रियोप- योगलाभतो उक्तो (० लब्धिविभागतो) वा, उक्तञ्च-“सोइंदिओवलद्धी होइ सुतं सेसयं तु मतिणणं । मोत्तूणं दव्वसुयं अक्खरलंभो य सेसेसु ॥१॥” इतश्च भेदः, अनक्षरमपि मतिज्ञानं, अक्षरानुगतं च श्रुतज्ञानमिति, अथवाऽऽत्मप्रत्यायकं मतिज्ञानं स्वपरप्रत्यायकं श्रुतज्ञानम्, आवरणभेदाच्च भेद इत्यलं अतिप्रसङ्गेन, इह च यथा मतिश्रुतयोः कार्यकारणभेदान्मिथो भेदस्तथा सम्यग्मिथ्यादर्श- नपरिग्रहविशेषात् स्वरूपतोऽपि भेद इति दर्शयन्नाह- ‘अविसेसिता’ इत्यादि ॥ (२५-१४२) ॥ अविशेषिता मतिः सामान्येनैव मतिज्ञानं मत्यज्ञानं च, सामान्येनोभयत्रापि मतिशब्दप्रवृत्तेः, विशेषिता मतिः स्वामिविशेषेण सम्यग्दृष्टेर्मतिर्मतिज्ञानं, निश्चयनयदर्शनेन स्वकार्यप्रसाधकत्वात्, मिथ्यादृष्टेर्मतिः मत्यज्ञानं, तत्त्वतः स्वफलरहितत्वादित्यर्थः, एवं श्रुतसूत्रमपि व्याख्येयम् । आह-क्षयोपशमादिकारणाभेदे घटादिपरिच्छेदकार्याभेदे च कथं मिथ्यादृष्टेरज्ञाने इति, तथा च मिथ्यादृष्टेरपि क्षयोपशमादेव मतिश्रुतप्रवृत्तिः, तथोर्ध्वादिलक्षणाकारमेव घटादिसंवेदनमिति, अत्रोच्यते, मिथ्यादृष्टेरज्ञाने मतिश्रुते, सदसत्तोरविशेषादुन्मत्तकवद्, उक्तं च भाष्यकारेण—सदसदविसेसणाओ भवहेउ- जहिच्छिओवलंभाओ । णाणफलाभावातो मिच्छादिद्विस्स अन्नाणं ॥ १ ॥ विनियजनानुग्रहार्थमिदं लेख्यते ॥ ५९ ॥	मति- श्रुतयो- ज्ञाना- ज्ञानता
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२६] / गाथा ६१
प्रत सूत्रांक [२६] गाथा ६१ दीप अनुक्रम [९५-९६]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ ६० ॥ अश्रुतनि- श्रितामतिः H ६० ॥ इति, मिथ्यादष्टिः कथंचित् सन्तमपि पुरुषे देवादिधर्म न प्रतिपद्यते, पुरुष एवेत्यभ्युपगमात् , तथा असन्तमपि षटादिधर्मं प्रतिपद्यते, अस्त्येवेत्यभ्युपगमात् , अतः सदसतोरविशेष इति, अतश्च मिथ्यादष्टैर्मिति श्रुते अज्ञाने, भवहेतुत्वाच्च मिथ्यादर्शनवत्, इतश्चाज्ञानं यदच्छोपलब्ध्येरुन्मत्तवत् , इतश्चाज्ञानं फलाभावादन्धप्रदीपवत्, ज्ञानस्य हि फलं विरतिः, सा च मिथ्यादष्टेर्न विद्यते इत्यलं प्रसंगेन, प्रकृतं प्रस्तुमः, इह मतिपूर्वं श्रुतमितिकृत्वा मतिज्ञानमेवाधिकृत्य ग्रन्थसूत्रमाह- ‘से किं त’मित्यादि ॥(२६-१४४)॥ अत्र निर्वचनं-द्विविधं ब्रजसं, तद्यथा-श्रुतनिश्रितं चाश्रुतनिश्रितं च, चौ पूर्ववत्, श्रुतमिह सामायिकादि लोकबिन्दुसारान्तं द्रव्यश्रुतं गृह्यते, तदनुसारेण श्रुतपरिकर्मितमतेस्तदपेक्षमेव च उत्पादकाले यत्तु तन्निरपेक्षमेवोत्पद्यते तत् श्रुतनिश्रितं अवग्रहादि, यत्तु तन्निरपेक्षं तथाविधक्षयोपशमप्रभवमेव वर्चते तदश्रुतनिश्रितं-औत्पत्तिकयादि ॥ आह-इदमप्यवग्रहादिरूपमेव, सत्यं, किन्तु श्रुतानुसारमन्तरेणोत्पत्तेर्भेदेनोक्तं । तत्राल्पतरक्त्वव्यत्वादश्रुतनिश्रितमतिज्ञानप्रतिपादनायाह-‘से किं त’मित्यादि, अत्र उत्पत्तियाङ्गाह ॥(*६१-१४४)॥ उत्पत्तिरेव प्रयोजनं यस्याः सा औत्पत्तिकी, आह-क्षयोपशमः प्रयोजनमस्याः, सत्यं, किन्तु स खल्वन्तरंगत्वात् सर्वबुद्धिसाधारण इति न विवक्ष्यते, न चान्यच्छास्त्रस्वकर्माभ्यासादिकमपेक्षत इति, विनयो-गुरुश्रुत्या स कारणमस्यास्तत्प्रधाना वा वैनयिकी, अनाचार्यकं कर्म साचार्यकं शिल्पं नित्यव्यापारः कर्म कदाचित्कं शिल्पं कर्मजति कर्मणो वा जाता कर्मजा, परि समन्तात् नमनं परिणामः सुदीर्घकाळपूर्वापरार्थवलोकनादिजन्य आत्मधर्म इत्यर्थः स कारणमस्यास्तत्प्रधाना
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अत्र औत्पात्तिकी आदि बुद्धेः वर्णनं आरभ्यते

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [२६...] / गाथा [६२-६६]	
प्रत सूत्रांक [२६] गाथा [६२- ६६] दीप अनुक्रम [९७- १००]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ ६१ ॥ पारिणामिकी । बुध्यते अनयेति बुद्धिर्मतिरित्यर्थः, सा चतुर्विधोक्ता तीर्थकरगणधरैः, किमिति?, यस्मात् पंचमी नोपलभ्यते केवललिनाऽ- पि, असत्त्वादिति गाथार्थः ॥ औत्पत्तिक्या लक्षणं प्रतिपादयन्नाह-पुष्प-गाथा ॥ (*६२-१४४) ॥ पूर्वमिति बुद्ध्युत्पादात् प्राक् स्वयमदृष्टः अन्यतश्चाश्रुतः अवेदितो मनसाऽप्यनालोचितः तस्मिन्नेव क्षणे विशुद्धो यथावास्थितः गृहीतोऽवधारितः अर्थोऽभिप्रेतपदार्थो यया सा तथा, इहैकान्तिकमिहपरलोकाविरुद्धं फलान्तरावाधितं चाव्याहृतमुच्यते, फलं-प्रयोजनं, अव्याहृतं च तत्फलं च २ योगोऽ- स्यास्तीति योगिनी अव्याहृतफलेन योगिनी २, अन्ये पठन्ति-अव्याहृतफलयोगा अव्याहृतफलेन योगोऽस्याः सा अव्याहृतफल- योगा बुद्धिः औत्पत्तिकी नामेति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं विनेयजनानुग्रहायास्या एव स्वरूपप्रतिपादनार्थमुदाहरणानि प्रतिपादयन्नाह- भरहसिल पणिय ॥ *६३ ॥ भरह ॥ *६४ ॥ महुसित्थ ॥ *६५ ॥ (१४४) गाथाओ, आसामर्थः कथानकेभ्य एवावसेयः, तानि चावसरप्राप्तान्यपि गुरुनियोगान्न ब्रूमः, किन्त्वावश्यके वक्ष्यामः, अधुना वैनयिक्या लक्षणं प्रतिपादयन्नाह- भरणित्थ ॥ गाथा ॥ (*६६-१५९) ॥ इहातिगुरु कार्यं दुर्निर्वहत्वाद्भर इव भरः तन्निस्तरणे समर्था भरनिस्तरणसमर्था, त्रयो वर्गास्त्रिवर्गमिति लोकरूढेर्धर्मार्थकामाः तदर्जनपरोपायप्रतिपादननिबन्धनं सूत्रं, तदन्वाख्यानं त्वर्थः पेयालं प्रमाणं सारो वा त्रिवर्ग- सूत्रार्थयोगृहीतं प्रमाणं सारो वा यया सा तथाविधा, अथवा त्रिवर्गः त्रैलोक्यं, आह-त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतसारत्वे सत्यश्रुतनिश्चितत्वं विरुध्यत इति, न हि श्रुताभ्यासमन्तरेण त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतसारत्वं सम्भवति, अत्रोच्यते, इह प्रायोवृत्तिमंगीकृत्याश्रुतनिश्चितभावेऽपि न कश्चिदोष इति, उभयलोकफलवती ऐहिकामुष्मिकफलवती विनयसमुत्था विनयोद्भवा भवति बुद्धिरिति गाथार्थः ॥ अस्या एव विनेयजनानुग्रहार्थं उदाहरणैः स्वरूपमुपदर्शयन्नाह-	बुद्धिचतुष्कं ॥ ६१ ॥
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२६...] / गाथा ॥६७-७१॥
प्रत सूत्रांक [२६] गाथा ॥६७- ७१॥ दीप अनुक्रम [१०१- १०५]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः नन्दी- हरिभद्राय वृत्तौ ॥ ६२ ॥ णिमिति०गाहा ॥*६७॥ सीता०गाहा॥(*६८-१५९)॥गाथाद्वयार्थः कथानकेभ्य एवावसेयः, तानि चोत्तरत्र वक्ष्यामः । साम्प्रतं कर्मजाया बुद्धेलक्षणं प्रतिपादयन्नाह— उपयोग०गाहा॥(*६९-१५९)॥ उपयोजनमुपयोगो-विवक्षिते कर्मणि मनसोऽभिनिवेशः सारः-तस्यैव कर्मणः परमार्थः, उपयो- गेन दृष्टः सारो यथेति समासः, अभिनिवेशोपलब्धकर्मपरमार्थेत्यर्थः, कर्मणि प्रसंगः २, प्रसंगः-अभ्यासः, परिचोलनं-विचारः, कर्मप्रसंगपरिचोलनाभ्यां विशाला, अभ्यासविचारविस्तीर्णिति भावार्थः, साधु कृतमिति सुष्ठु कृतमिति विद्वज्जः प्रशंसा-साधुकारः तेन फलवतीति समासः, साधुकारेण वा शेषमपि फलं यस्याः सा तथा, कर्मसमुत्था कर्मोद्भवा भवति बुद्धिरिति गाथार्थः ॥ अस्या अपि विनियवर्गानुक्रमयोदाहरणैः स्वरूपमुपदर्शयन्नाह— हेरणिणए गाहा ॥(*७०-१६४)॥ अस्या अप्यर्थं वक्ष्यामः ॥ साम्प्रतं पारिणामिकया लक्षणं प्रतिपादयन्नाह— अणुमाण० गाहा ॥(*७१-१६५)॥ ‘अनुमानहेतुदृष्टान्तैः’ साध्यमर्थं साधयतीति अनुमानहेतुदृष्टान्तसाधिका, इह लिङ्ग- ज्ञानमनुमानं, स्वार्थमित्यर्थः, तत्प्रतिपादकं वचो हेतुः, परार्थमित्यर्थः, अथवा ज्ञापकमनुमानं, कारको हेतुः, दृष्टमर्थमन्तं नय- तीति दृष्टान्तः, आह-अनुमानग्रहणादेव दृष्टान्तस्य गतत्वादलमुपन्यासेन, न, अनुमानस्य तत्त्वत एकलक्षणत्वाद्, उक्तं च-“अन्यथा- ऽनुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण कि”मित्यादि । साध्योपमाभूतश्च दृष्टान्तः, उक्तञ्च-“यः साध्यस्योपमाभूतस्स दृष्टान्त” इति, कालकृतो देहावस्थाविशेषो वय इत्युच्यते, तद्विपाकेन परिणामः-पुष्टता यस्याः सा तथाविधा, हितम्-अभ्युदयस्तत्कारणं वा निःश्रेयसं- बुद्धिचतुष्कं ॥ ६२ ॥

[illegible]

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२९-३१] / गाथा ॥७४...॥		
प्रत सूत्रांक [२९-३१] गाथा ॥७४...॥	नन्दी- हारिमद्रीय वृत्तौ ॥ ६४ ॥	‘से किं त’मित्यादि (२९-१६२) अथ कोऽयं व्यञ्जनावग्रहः इत्यत्र पुनरुत्पत्तिक्रम एवाश्रितो यथासम्भवमिति सुश्लिष्टमेतदिति, प्रकृतमुच्यते-व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियव्यञ्जनावग्रह इत्यादि सूत्रसिद्धं। आह-पञ्चेन्द्रिय-मनःसद्भावे सति किमित्ययं चतुर्विध इति ?, अत्रोच्यते, नयनमनसोरप्राप्तकारित्वाद्, अप्राप्तकारित्वं च विषयकृतानुग्रहोपघातशून्य-त्वात्, प्राप्तकारित्वे पुनरनलजलशूलाद्यालोकने दहनक्लेदनपाटनादयः स्युः, अत्र च विषयदेशं गत्वा न पश्यति, प्राप्तं चार्थं नालम्बत इत्येतावन्नियम्यते, मूर्तिमता पुनः प्राप्तेन भवत एवानुग्रहोपघातौ भास्करकिरणादिनेति, अन्यस्त्वाह-व्यवहितार्थानुपलब्धेरनुमानात् प्राप्तकारित्वं लोचनस्येति, एतदयुक्तं, नैकान्तिकत्वाद्, रुचोऽप्रपटलस्फटिकान्तरितोपलब्धेः, स्यादेतत्-नायना रश्मयो निर्गत्य तमर्थं गृह्णन्तीति दर्शने रश्मीनां तैजसत्वात्, तेजोद्रव्यैरप्रतिस्खलनाददोष इति, एतदप्ययुक्तं, महाज्वालादौ प्रतिस्खलनोपलब्धे-रित्यत्र बहु वक्तव्यं तत्तु नोच्यते ग्रन्थविस्तरमयाद्रमनिकामात्रमेतदिति । ‘से किं त’मित्यादि ॥* ३०-१७३॥ अथ कोऽयमर्थवग्रहः?, अर्थवग्रहः षड्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियार्थवग्रह इत्यादि सूत्रसिद्धं यावत् । ‘तस्स णं इमे’ इत्यादि ॥ * ३१-१७४ ॥ तस्यावग्रहस्यामूनि, णं पूर्ववत्, अवग्रहसामान्यापेक्षयैकार्थिकानि नानाघो-षाणि नानाव्यञ्जनानि पञ्च नामधेयानि भवन्ति, घोषा उदात्तादयः कादीनि व्यञ्जनानि, नामैव नामधेयं, अवग्रहविशेषापेक्षया तु कथंचिद् भिन्नार्थानि, त्रिविधश्चावग्रहः-सामान्यावग्रहो विशेषावग्रहः विशेषसामान्यार्थावग्रहश्चेति, तत्र भिन्नार्थता निदर्श्यते-	अवग्रहै- कार्थता
दीप अनुक्रम [११३- ११५]	॥ ६४ ॥		
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः			

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)		 मूलं [३१-३२] / गाथा [७४...]
प्रत सूत्रांक [३१-३२] गाथा [७४...] दीप अनुक्रम [११५- ११६]	नन्दी- हारिमद्रीय वृत्तौ ॥ ६५ ॥	‘तंजहा-ओगिणहणते’ त्यादि, अवगृह्यतेऽनेनेति अवग्रहणं, करणे ल्युट्, व्यञ्जनावग्रहप्रथमसमयप्रविष्टशब्दादिद्रव्यादानपरिणाम इत्यर्थस्तद्भावः अवग्रहणता, धार्यतेऽनेनेति धारणं उप-सामीप्येन धारणं उपधारणं व्यञ्जनावग्रहाद्वाया आ(व्या)दिसमयेष्ववसानान्तं प्रतिसमयमेव शब्दादिद्रव्यादानधारणपरिणाम इति भावना, तद्भाव उपधारणता, श्रूयतेऽनेनेति श्रवणं एकसामायिकसामान्यार्थावग्रहावबोधपरिणाम इत्युक्तं भवति तद्भावः श्रवणता, अवलम्बत इत्यवलम्बनं, ‘कृत्यल्युटो बहुल’ मिति वचनात् कर्मणि ल्युट्. तद्भावः अवलम्बनता-विशेषसामान्यार्थावग्रह इवि भावार्थः, तथा हि उत्तरोत्तरधर्मजिज्ञासायां सत्यां शब्दादिज्ञानमेवावलम्ब्येहादयः प्रवर्तन्ते—किमयं शांखः किं वा शाङ्ग्य इत्यतस्तदनन्तरमेवेहादिप्रवृत्तेर्विशेषसामान्यार्थावग्रहोऽवलम्बनमिति, एवमुत्तरोत्तरधर्मजिज्ञासायां सत्यां विशेषसामान्यार्थावग्रहेषु मर्यादया धावतो. मेधोच्यते, यावदधिगच्छति, यथा-शांखः स किं मन्द्रः किं वा तार इत्यादि, यत्र व्यञ्जनावग्रहो नास्ति तत्राद्यभेदद्वयाभाव इति । ‘से तं उगगहे’ सोऽयमवग्रहः । ‘से किं तं’ मित्यादि, सूत्रम् ॥ ३२-१७५॥ निगदसिद्धं यावत् आभोगनता ईहा, अर्थावग्रहसमयसमनन्तरमेव सद्भूतार्थविशेषाभिमुखमालोचनमाभोगनमुच्यते तद्भाव आभोगनता, मृग्यतेऽनेन परिणामकरणेनेति मार्गणं, सद्भूतार्थविशेषाभिमुखमेव तदूर्ध्वमन्वयव्यतिरेकधर्मान्वेषणमिति हृदयं, तद्भावो मार्गणता, एवमन्विष्यतेऽनेनेति गवेषणं, तत् ऊर्ध्वं सद्भूतार्थविशेषाभिमुखमेव व्यतिरेकधर्मपरित्यागतोऽन्वयधर्माध्यासेनालोचनमिति गर्भः, तद्भावो गवेषणता, ततो मुहुर्मुहुः क्षयोपशमविशेषतः स्वधर्मानुगतसद्भूतार्थविशेषचिन्तनं चिन्ता, विमर्षणं विमर्षः-क्षयोपशमविशेषादेवोर्ध्वं स्पष्टतरावबोधतः सद्भूतार्थविशेषाभिमुखमेव व्यतिरेकधर्मपरित्यागतोऽन्वयधर्मालोचनं विमर्षः, नित्यानित्यादिद्रव्यभावालोचनमित्यन्ये । ‘से तं ईहा’ ।	ईहापाय- पर्यायाः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [३३-३४] / गाथा ७४...
प्रत सूत्रांक [३३-३४] गाथा ७४... दीप अनुक्रम [११७- ११८]	नन्दी- हारिभद्रीय वृत्तौ ॥ ६६ ॥ ‘से किं त’ मित्यादि ॥(३३-१७६)॥ सूत्रसिद्धं यावदावर्त्तनता, वर्त्यते अनेनेति वर्त्तनं-क्षयोपशमकरणमेव ईहाभावनिवृत्त्य- भिमुखस्यापायभावप्रतिपत्त्यभिमुखस्य चार्थविशेषावबोधविशेषस्या-मर्यादया वर्त्तनमावर्त्तनं तद्भावाः आवर्त्तनता, ततः प्रतिपत्त्या(प्रती- पमा-) वर्त्तनं प्रत्यावर्त्तनं, अर्थविशेष एव विवक्षितापायप्रत्यासन्नतरबोधविशेषाणां मुहुर्मुहुर्वर्त्तनमित्यर्थः, तद्भावः प्रत्यावर्त्तनता, अप- अयः अपायः विशेषतः सङ्कलनेन निश्चयो निर्णयोऽवगम इत्यनर्थान्तरं, सर्वथेहाभावाभिवृत्तस्यावधारणावधारितमर्थमवगच्छतोऽ- पाय इति भावार्थः, ततस्तमेवावधारितमर्थं क्षयोपशमविशेषात् स्थिरतया पुनः पुनः स्पष्टतरमेव बुध्यमानस्य बुद्धिः, विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानं क्षयोपशमविशेषादवधारितार्थविषयमेव तीव्रतरधारणाकरणमित्यर्थः, ‘से तं अवायो’ सोऽयमपायः । ‘से किं त’ मित्यादि ॥(३४-१७६)॥ निगदसिद्धं यावद्वारणेत्यादि, अपायानन्तरमवगतार्थमविच्युत्या जघन्योत्कृष्टम- न्तर्मुहूर्त्तमात्रं कालं धारयतो धारणेति भण्यते, ततस्तमेवार्थं उपयोगाच्युतं जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तादुत्कृष्टतोऽसङ्ख्येयकालात् परतः स्मरतो धरणं धारणोच्यते, स्थापनं स्थापना, ततोऽपायावधारितमर्थं पूर्वापरालोचितं हृदि स्थापयतः स्थापना, मूर्त्तघटस्थापना- वत्, वासनेत्यर्थः, अन्ये तु धारणास्थापनयोर्व्यत्ययेन स्वरूपमाचक्षते, प्रतिष्ठापनं प्रतिष्ठा अपायावधारितमेवार्थं हृदि प्रमेदेन प्रतिष्ठापयतः प्रतिष्ठा भण्यते, जले उपलप्रक्षेपप्रतिष्ठावत्, कोष्ठक इति अविनष्टव्यवार्थबीजधारणात् कोष्ठकवद् धारणा कोष्ठक इति । इहात्मनो ज्ञानस्वभावत्वाज्ज्ञानावरणीयादिकर्ममलपटलाच्छादितस्वभावत्वात् गुरुवदनसमुत्थशब्दाद्यनेकविधकारणापाद्यमानक्ष- योपशमसामर्थ्यादवबोधः, ज्ञेयस्य चानन्तधर्मात्मकत्वात् कालक्षयोपशमविशेषतोऽवग्रहेहापायावबोधविशेषो भावनीयः, कथां च- धारणा- पर्यायाः अवग्रहा- दिकालः ॥ ६६ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [३५-३६] / गाथा ॥७४...॥	
प्रत सूत्रांक [३५-३६] गाथा ॥७४...॥ दीप अनुक्रम [११९- १२०]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ ६७ ॥ देकाधिकरणत्वाद्, अन्यथा परिच्छेदप्रवृत्तिलक्षणसकललोकप्रसिद्धसंव्यवहारोच्छेदप्रसङ्ग इत्यलं प्रसङ्गेन, गमनिकामात्रमेतत् ॥ अव- ग्रहादिकालप्रमाणं प्रतिपादयन्नाह— 'ओग्गहे' इत्यादि॥(३५-१७७)॥ अर्थावग्रहः एकसामायिकः, आन्तर्मौहूर्तिकी ईहा, आन्तर्मौहूर्तिकोऽपायः, धारणा संख्येयं वाऽसंख्येयं वा कालं स्मृतिवासनारूपा, सङ्ख्येयवर्षायुषां संख्येयमसंख्येयवर्षायुषामसंख्येयम् । 'एवं अट्टावीसविधस्से'- त्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण अष्टाविंशतिविधस्य, कथमष्टाविंशतिविधं ?, चतुर्विधो व्यञ्जनावग्रहः षड्विधोऽर्थावग्रहः षड्विधा ईहा षड्विधोऽपायः षड्विधा धारणा, एवमष्टाविंशतिविधस्याभिनिबोधिकज्ञानस्य सम्बन्धी यो व्यञ्जनावग्रहः तस्य प्ररूपणं-प्रतिपादनं करिष्यामि, कथं ?, प्रतिबोधकदृष्टान्तेन मल्लकदृष्टान्तेन च, 'से किं त'मित्यादि ॥(३६-१७७)॥ प्रतिबोधयतीति प्रतिबोधकः स एव दृष्टान्तस्तेन, तद्यथा नाम कश्चिदनिर्दिष्टस्वरूपः पुरुषः कंचिदन्यतममनिर्दिष्टस्वरूपमेव पुरुषं सुप्तं सन्तं पतिषोभएज्जति प्रतिबोधयेत्, कथं ?. अमुकामुकेति, तत्र चोदकेत्यादि. इह ज्ञानावरणकर्मोदयतः कथितमपि सूत्रार्थमनवगच्छन् प्रश्नचोदनाच्चो- दकः, अविशिष्टश्रयोपशमभावतो वा अगृहीतशास्त्रगमार्थः पूर्वापरविरोधचोदनात् चोदकः, यथाऽवस्थितं सूत्रार्थं प्रज्ञापयतीति प्रज्ञा- पकः, श्रौतार्थापेक्षया विरुद्धं पुनरुक्तसूत्रं वा अर्थतोऽविरुद्धं अपुनरुक्तं प्रज्ञापयतीति प्रज्ञापकः, तत्र चोदकः प्रज्ञापकं एवमुक्तवा- निति, भूतकालनिर्देशोऽनादिमानागम इति ख्यापनार्थः, किमेकसमयप्रविष्टेत्यादि सुगमं यावत् एवं वदन्तं चोदकं प्रज्ञापक एव- मुक्तवान्-नो एकसमयप्रविष्टेत्यादि प्रकटार्थं यावत् न सङ्ख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, नवरमयं प्रतिषेधः स्फुटश- ब्दविज्ञानप्राप्ततामधिकृत्य वेदितव्यः, शब्दविज्ञानजनकत्वेनेत्यर्थः, अन्यथा सम्बन्धमात्रमधिकृत्य प्रथमसमयादारभ्य ग्रहणमा- प्रतिबोधक- दृष्टान्तः ॥ ६७ ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [३५-३६] / गाथा ७४... 	
प्रत सूत्रांक [३५-३६] गाथा ७४... दीप अनुक्रम [११९- १२०]	नन्दी- हारिभद्रीय वृत्तौ ॥ ६८ ॥ गच्छन्त्येव, ‘असंख्येज्ज’ इत्यादि, प्रतिसमयप्रवेशेनादित आरभ्य असंख्येयसमयैः प्रविष्टैरसंख्येयसमयप्रविष्टाः, न पुनर्विश्रत्या- ज्जोभिः पथिकगृहप्रवेशवदपान्तरालागमनसमयापेक्षयाऽसंख्येयसमयप्रविष्टा इति, पुद्गलाः-शब्दद्रव्यविशेषा ग्रहणमागच्छन्ति, अर्था- वग्रहज्ञानहेतवो भवन्तीति भावः, इह च चरमसमयप्रविष्टा एव ग्रहणमागच्छन्ति, तदन्ये त्विन्द्रियक्षयोपशमकारिण इत्योषधतो ग्रहणमुक्तमिति, असंख्येयमानं चात्र जघन्यमावलिकासंख्येयभागसमयतुल्यं, उत्कृष्टं तु संख्येयावलिकासमयतुल्यं, तच्च प्राणापा- नपृथक्त्वकालसमयमिति, उक्तं च-“व्यंजनवग्गहकालो आवलियाऽसंख्यभागमेतौ उ । योवो उक्कोसो पुण आणापाणूहुत्तंति ॥ १ ॥” ‘सि तं’ इत्यादि निगमनम् ॥ सयं प्रतिबोधकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रहप्ररूपणेति वाक्यशेषः ॥ ‘सि किं त’मित्यादि, अथ कोऽयं मल्लकदृष्टान्तो?, २ नाम तद्यथा नाम कश्चित् पुरुष आपाकशिरसः, आपाकः प्रतीतः तच्छिर- सश्च मल्लकं-शरावं गृहीत्वा, इदं रुक्षं भवति इत्यतोऽस्य ग्रहणमिति, तत्र मल्लके एकं उदकाबिन्दुं प्रक्षिपेत् स नष्टः, तत्रैव तद्भावपरि- णतिमापन्न इत्यर्थः, शेषं सुगमं यावत् जण्णं तं मल्लकं रावेहिच्चि आर्द्रतां नेष्यति, शेषं सुगमं यावत् एवमेवेत्यादि, अतिबहुत्वात् प्रतिसमयमनन्तैः पुद्गलैः-शब्दपुद्गलैः यदा तद् व्यंजनं पूरितं भवति तदा हुमिति करोति, तमर्थं गृह्णातीत्युक्तं भवति, अत्र व्यंजनशब्देन त्रयमभिगृह्यते-द्रव्यमिन्द्रियं सम्बन्धो वा, यदा द्रव्यं व्यंजनमधिक्रियते तदा पूरितमिति प्रभृतीकृतं, स्वप्रमाणमानीतं, स्वविषय- व्यक्तौ समर्थीकृतमित्यर्थः, यदा व्यंजनमिन्द्रियं तदा पूरितमित्याभूतं, भूतं व्याप्तमित्यर्थः, यदा तु द्वयोरपि सम्बन्धोऽधिक्रियते तदा पूरितमित्यंगांगीभावमानीतमनुषक्तमित्यर्थः, एवं यदा पूरितं भवति तदानीं तमर्थं गृह्णाति, किंविशिष्टं?-मामजात्यादिकल्पना- रहितं, तथा चाह-णो चैव णं जाणइ के वेस सद्दित्तिः न पुनरेवं जानाति क एष शब्दादिरर्थ इति, एकसामयिकत्वादर्थो- मल्लक- दृष्टान्तः ॥ ६८ ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [३५-३६] / गाथा ७४... 		
प्रत सूत्रांक [३५-३६] गाथा ७४... दीप अनुक्रम [११९- १२०]	नन्दी- हारिभद्रादि वृत्तौ ॥ ७० ॥	गहिर्यं सहेति तं कहं पु॥१॥ सहेति भणति वत्ता तम्मचं वा ण सद्गुत्ती(बुद्धी)ए । जदि होज्ज सद्गुत्ती तोऽवाओ चेव सो होज्जा ॥ २ ॥ जति सद्गुत्तिमेत्तयमवग्गहे तव्विसेसणमवाओ । णणु सद्दो णासद्दो ण य रूवादी विसेसोऽयं ॥३॥ थोवम्मि य णावायो तव्वेयाविकखणं अवाओत्ति । तव्वेयाविकखाए णणु थोवमिणं पि णावाओ ॥ ४ ॥” इत्यादि, अन्ये त्वाचार्या इदं सूत्रं विशेषसा-मान्यार्थावग्रहविषयं व्याचक्षते, अव्यक्तं-अनिर्द्धारितविशेषस्वरूपं अशब्दव्यवच्छेदेन शब्दं शृणुयात्, तेन शब्द इति शब्दमात्र-मवगृहीतं, न पुनरेवं जानाति क एष शब्दः,?, शांखशास्त्रादीनामन्यतमः, आदिशब्दाद्रसादिपरिग्रहः, तत्रापीयमेव वाच्येति, युक्ति-युक्ता चेयं व्याख्यातेति, तत् ईहां प्रविशति-सदर्थपर्यालोचनां करोति, इह च दुरवबोधत्वाद्वास्तुन अपटुत्वाच्च मतिज्ञानावरण-क्षयोपशमस्यासंजातापाय एवेहोपर्योगाच्च्युतः पुनरप्यन्यमन्तर्मुहूर्त्तमीहते, एवमीहोपर्योगाविच्छेदत एव प्रभूतानप्यन्तर्मुहूर्त्तानीहते इति सम्भवः, ततो जानातीत्यादि, वस्तुतः गतार्थं यावत् स्पर्शेन्द्रियवक्तव्यता, उक्तं च भाष्यकारेण-“सेसेसुवि रूवादिसु विसण-सुवि होइ रूवलक्खाइ । पायं पच्चासन्नत्तणेणमीहादिवत्थूणि ॥ १ ॥ थाणुपुरिसादिकुट्टुप्पलादिसंभिनकरिहमंसादी । सप्पो-प्पलणालादियसमाणरूवादिविसयाइ ॥ २ ॥ एवं चिय सुमिणादिसु मणसो सद्दादिणसु विसणसु । होत्तिदियवावाराभावेऽवि अवग्गहादीया ॥३॥” इत्यादि, ‘से जहा णामए’ इत्यादि, इह प्रतिबोधप्रथमसमयेऽव्यक्तम्-अनिर्द्धारितस्वरूपं स्वप्नं प्रातिसं-वेदेयत्, तस्य तदाऽर्थावग्रहः, तत् ऊर्ध्वमीहादय इति, अन्ये तु मनसोऽप्यर्थावग्रहात् पूर्वं व्यंजनावग्रहं मनोद्रव्यव्यंजनग्रहणलक्षणं व्याचक्षते, तत् पुनरप्युक्तं, अनार्षत्वाद्, व्यंजनावग्रहस्य श्रोत्रादिभेदेन चतुर्विधत्वात्, शेषं प्रकटार्थं यावत् सेतं मल्लगादिद्वन्द्वेण । इह च सुखप्रतिपत्त्यर्थं स्वप्नमधिकृत्य नोइन्द्रियार्थावग्रहादयः प्रतिपादिताः, अन्यथाऽन्यत्रापीन्द्रियव्यापाराभावे सति मनसा	अवग्रहादिः क्रमः सत्तेर्विषयः ॥ ७० ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः		

[illegible]

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [३७...] / गाथा [७८-७९]	
प्रत सूत्रांक [३७..] गाथा [७८- ७९] दीप अनुक्रम [१२५- १२६]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ ७४ ॥ पुनः पश्यति-गृह्णाति, अस्पृष्टम्-अनालिङ्गितमसंबद्धमित्यर्थः, पुनःशब्दो विशेषणार्थः, तुशब्दस्त्वेवकारार्थः, ततश्चायमर्थः-अस्पृष्टमेव पश्यति, पुनःशब्दादस्पृष्टमपि योग्यदेशावस्थितं, नायोग्यदेशावस्थितमधोलोकादि, कुतः?, अग्राप्तकारित्वात् परिमितदेशस्थिविषय-ग्राहित्वाच्चक्षुष इति २, प्रायत इति गन्धस्तं ३, रस्यत इति रसस्तं च, स्पृश्यत इति स्पर्शस्तं, चशब्दौ पूरणसमुच्चयाथौ, ‘बद्ध-स्पृष्टमिति’ बद्धम्-आखिलं तोयवदात्मप्रदेशैरात्मीकृतमित्यर्थः, स्पृष्टं पूर्ववत्, प्राकृतशैल्या चेत्यमुपन्यासो ‘बद्धपुटं’ ति, अर्थतस्तु स्पृष्टं च बद्धं च स्पृष्टबद्धमिति विज्ञेयं, आलिङ्गितानन्तरमात्मप्रदेशैरागृहीतमित्यर्थः, गन्धादिः, स्तोकद्रव्यत्वादभावुकत्वाद् प्राणादीनां चापदुत्वाद्विनिश्चिनोतीत्येव व्यागृणीयादिति गाथार्थः ॥ इह स्पृष्टं शृणोति शब्दमित्युक्तं, तत्र किं शब्दप्रयोगोत्सृष्टान्येव केवलानि शब्दद्रव्याणि गृह्णात्युतान्यानि तद्भाषितानि आहोस्वित् मिश्राणीति चोदकाभिप्रायमाशङ्क्य न तावत् केवलानि, तेषां वासकत्वात्तद्व्योम्यद्रव्याकुलत्वाच्च लोकस्य, किन्तु मिश्राणि तद्भाषितानि वा गृह्णातीति, अमुमर्थमभिधत्सुराह— भासाङ्गाहा ॥(*७९-१८४)॥ भाष्यत इति भाषा, वक्त्रा शब्दतयोत्सृज्यमाना द्रव्यसंहतिरित्यर्थः, तस्याः समश्रेणयो भाषा-समश्रेणयः, समग्रहणं विश्रेणीव्यवच्छेदार्थं, इह श्रेणयः क्षेत्रप्रदेशश्रेणयोऽभिधीयन्ते, ताश्च सर्वस्यैव भाषमाणस्य षट्सु दिक्षु विद्यन्ते, यास्तत्सृष्टा सति भाषाऽऽद्यसमय एव लोकान्तमनुधावतीति, ता इतो- भाषासमश्रेणीतः, इतो गतः प्राप्तः स्थित इत्यनर्थान्तरं, एतदुक्तं भवति- भाषासमश्रेणिव्यवस्थित इति, शब्दतेऽनेनेति शब्दः भाषात्वेन परिणतः पुद्गलराशिः तं शब्दं, यं पुरुषा-श्वादिसम्बन्धितं शृणोति-गृह्णाति उपलभत इति पर्यायाः, यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात् मिश्रं शृणोति, एतदुक्तं भवति- उत्सृष्टद्रव्य-भाषितापान्तरालस्थशब्दद्रव्यामिश्रमिति, विश्रेणिं पुनरित इति वर्तते, ततश्चायमर्थो भवति- विश्रेणिव्यवस्थितः पुनः श्रोता शब्दं प्राप्याप्रा- प्यकारिता ॥ ७४ ॥	
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [३८] / गाथा ॥७९-८०॥		
प्रत सूत्रांक [३८] गाथा ॥७९- ८०॥ दीप अनुक्रम [१२६- १२९]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्ति ॥ ७५ ॥	शृणोति नियमेन पराघाते सति, यानि शब्दद्रव्याण्युत्सृष्टद्रव्याभिधाते वासितानि तान्येव, न पुनरुत्सृष्टानीति भावार्थः, कुतः?, तेषां अनुश्रेणिगमनात् प्रतिघाताभावाच्च, अथवा विश्रेणिस्थित एव विश्रेणिरभिधीयते, पदेऽपि पदावयवप्रयोगदर्शनाद्धीमसेनः सेनः सत्यमामा भामेति यथेति गार्थार्थः ॥ साम्प्रतं विनेयगणसुखप्रतिपत्तये मतिज्ञानपर्यायशब्दानभिधित्सुराह— ईहा०गाहा ॥(*८०-१८४)॥ ईहनमीहा, सदर्थपर्यालोचनचेष्टेत्यर्थः, अपोहनमपोहो, निश्चय इत्यर्थः, विमर्षणं विमर्षः, ईहा-पायमभ्यवर्त्ती प्रत्ययः, तथाञ्चवधर्मान्वेषणा मार्गणा, चः समुच्चयार्थः, व्यतिरेकधर्मालोचना गवेपणा, तथा संज्ञानं संज्ञा-व्यंजनावग्रहोत्तरकालभावी मतिविशेष इत्यर्थः, स्मरणं स्मृतिः, पूर्वानुभूतार्थालम्बनप्रत्ययः, मननं मातिः कथंचिदर्थपरिच्छिन्ना-वपि सूक्ष्मधर्मालोचनरूपा बुद्धिरित्यर्थः, तथा प्रज्ञानं प्रज्ञा विशिष्टक्षयोपशमजन्या अभूतवस्तुगतयथाऽवस्थितधर्मालोचनरूपा संविदिति भावना, सर्वभिदमाभिनिबोधिकं मतिज्ञानमित्यर्थः, एवं किंचिद्भेदाद्भेदः प्रदर्शितः, तत्त्वतस्तु मतिवाचकाः सर्व एते पर्यायशब्दा इति गार्थार्थः ॥ ‘सेत’मित्यादि, तदेतदाभिनिबोधिकज्ञानमिति ॥ साम्प्रतं प्रागुपन्यस्तसकलचरणकरणक्रियाधारश्रुत-ज्ञानस्वरूपजिज्ञासयाह— ‘से किं त’मित्यादि ॥(३८-१८०)॥ अथ किं तत् श्रुतज्ञानं?, श्रुतज्ञानमुपनिधभेदाच्चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा- अक्षरश्रुतं १ अनक्षरश्रुतं २ संज्ञिश्रुतं ३ असंज्ञिश्रुतं ४ सम्यक्श्रुतं ५ मिथ्याश्रुतं ६ सादि ७ अनादि ८ सपर्यवासितं ९ अपर्यवासितं १० गमिकं ११ अगमिकं १२ अंगप्रविष्टं १३ अनंगप्रविष्टं १४, एतेषां च भेदानां स्वरूपं यथावसरं वक्ष्यामः । अक्षरश्रुतानक्षरश्रुतभेदद्वयान्त-	माषाश्रुतिः मतिपर्या- याश्च ॥ ७५ ॥
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः			
*** अथ परोक्षज्ञान-भेदे ‘श्रुतज्ञान’स्य वर्णनं आरभ्यते, तदन्तर्गतं ‘श्रुत’स्य १४ भेदानां वर्णनं क्रियते			

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [३९] / गाथा ॥८१॥	
प्रत सूत्रांक [३९] गाथा ॥८१॥ दीप अनुक्रम [१३१- १३२]	नन्दी- हरिभट्टीय वृत्तौ ॥ ७७ ॥ माह, लब्ध्यक्षरं समुत्पद्यते, कुतश्चिच्छब्दादेर्निमित्तात् सञ्जाततदावरणकर्मक्षयोपशमस्य लब्ध्यक्षरं समुत्पद्यते-अक्षरोपलम्भः सञ्जायते, एतदुक्तं भवति-शब्दादिग्रहणसमनन्तरमिन्द्रियमनोनिमित्तं श्रुतग्रन्थानुसारि शाङ्ख इत्याद्यक्षरानुपक्तं विज्ञानमुत्पद्यते, तच्चानेकप्रकारं, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियलब्ध्यक्षरमित्यादि, इह श्रोत्रेन्द्रियेण शब्दश्रवणे सति शाङ्खोऽयमित्याद्यक्षरद्वयलाभः श्रोत्रेन्द्रिय-निमित्तत्वाच्छ्रोत्रेन्द्रियलब्ध्यक्षरमिति, एवं शेषेष्वपि भावनीयं, ‘से त’ मित्यादि, तदेतल्लब्ध्यक्षरं, ‘से त’ मित्यादि, तदेतदक्षरा-त्मकं अक्षरं च तदिति वा श्रुतं चाक्षरश्रुतं, तत्र संज्ञाव्यञ्जनाक्षरे द्रव्यश्रुतं, लब्ध्यक्षरं पुनर्भावश्रुतं, लब्धेर्विज्ञानरूपत्वात् ॥ ‘से किं त’ मित्यादि, अथ किं तदनक्षरश्रुतम् ? २ अनक्षरः शब्दः कारणं कार्यमनक्षरश्रुतं अनेकविधम्-अनेकप्रकारं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा— ऊससियं०गाहा ॥ (* ८१-१८७) ॥ उच्छ्वसनमुच्छ्वसितं, भावे निष्ठाप्रत्ययः, तथा निःश्वसनं निःश्वसितं, निष्ठीवनं निष्ठीयुतं, कासनं कासितं, चशब्दः समुच्चयार्थः, क्षवणं क्षुतं, चशब्दः समुच्चयार्थ एव, अस्य व्यवहितः सम्बन्धः, कथं?, सेंटितं चानक्षरं श्रुतमिति वक्ष्यामः, निःसङ्घनं निःसङ्घितं, अनुस्वारवदनुस्वारं, अक्षरमपि यदनुस्वारवदुच्चार्यते, ‘अनक्षर’मित्येतदुच्छ्व-सिताद्यनक्षरश्रुतमिति, सेण्टनं सेण्टितं तत् सेंटितं चानक्षरश्रुतमिति, इदं चोच्छ्वसितादि द्रव्यश्रुतमात्रं ध्वनिमात्रत्वात्, अथवा श्रुतविज्ञानोपयुक्तस्य जन्तोः सर्वे एव व्यापारः श्रुतं, तस्य तद्भावेन परिणतत्वात्, आह-यद्येवं किमित्युपयुक्तस्य चेष्टाऽपि श्रुतं नोच्यते, येनोच्छ्वसिताद्येवोच्यते इति, अत्रोच्यते, रूढ्या, अथवा श्रूयत इति श्रुतं, अन्वर्थसंज्ञामधिकृत्योच्छ्वसिताद्येव श्रुतमुच्यते-न चेष्टा, तदभावादिति, अनुस्वारादयस्त्वर्थगमकत्वादेव श्रुतमिति, ‘से त’ मित्यादि, तदेतदनक्षरश्रुतम् । लब्ध्यक्षरं अनक्षरश्रुतं ॥ ७७ ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [४०] / गाथा [८१...]	
प्रत सूत्रांक [४०] गाथा [८१...] दीप अनुक्रम [१३३]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ ७८ ॥ ‘से किं त’मित्यादि, ॥ (४०-१८९) ॥ अथ किं तत् संज्ञिश्रुतं, संज्ञानं संज्ञा, संज्ञाऽस्यास्तीति संज्ञी तस्य श्रुतं २ त्रिविधं प्रज्ञप्तं, संज्ञिन एव त्रिभेदत्वात्, त्रिभेदतामेव दर्शयन्नाह-तद्यथा-कालिक्युपदेशेन हेतूपदेशेन दृष्टिवादोपदेशेन. ‘से किं त’मित्यादि, अथ कोऽयं कालिक्युपदेशेन, ईहादिपदलोपादीर्घकालिकी कालिक्युच्यते, संज्ञेति प्रकरणाद्रम्यते, उपदेशनमुपदेशः, कथनमित्यर्थः, दीर्घकालिक्याः सम्बन्धी दीर्घकालिक्या वा मतेनोपदेशो दीर्घकालिक्युपदेशस्तेन यस्य प्राणिनः अस्ति-विद्यते ईहा-शब्दाद्यवग्रह-णोत्तरकालमन्वयव्यतिरेकधर्मालोचनचेष्टेत्यर्थः, तथा अपोहो-व्यतिरेकधर्मपरित्यागेनान्वयधर्माध्यासेनावधारणात्मकः प्रत्यय इति भावना, यथा शब्द इति, तथा मार्गणा विशेषधर्मान्वेषणारूपा संविदित्यर्थः, यथा शब्दः सन् किं शाङ्गः किं वा शाङ्ग इति, तथा गवेषणा व्यतिरेकधर्मस्वरूपालोचना, यथा खरादय एवंभूता इति, तथा चिन्ता अन्यधर्मपरिज्ञानाभिमुखा चेष्टा, यथा मधुरत्वादयस्त्वेवंभूता इति, तथा विमर्षः त्याज्यधर्मपरित्यागेनोपादेयधर्मग्रहणाभिमुख्यं, यथा न शाङ्गः, प्रायोऽयं मधुरत्वादियोगाच्छाङ्ग इति, ‘से णं सञ्जीति लब्धमिति’ति स प्राणी णमिति वाक्यालङ्कारे संज्ञीति लभ्यते, मनःपर्याप्त्या पर्याप्तोऽवग्रहादिमतिज्ञानसम्पत्समान्वित इत्यर्थः, अथवा यस्यास्ति ईहा-किमेतदिति चेष्टा इदमित्यवगमोऽपोहः अवगतार्थाभिलाषे तत्प्रार्थना मार्गणा तदप्राप्तौ च निपुणोपाय तोऽन्वेषणं गवेषणा प्रयुक्तप्रतिहतोपायस्योपायान्तरचिन्तनं चिन्ता तद्विषय एवोपायालोचनात्मकः प्रत्ययो विमर्षः स संज्ञीति-लभ्यते, अयं च गर्भव्युत्क्रान्तिकः पुरुषादिरौपपातिकश्च देवादिरेव मनःपर्याप्तिप्रयुक्तो विज्ञेयः, यथोक्तविशेषणकलापसमन्वितत्वात्, न पुनरन्यस्तद्विशेषणविकल इति, आह च-‘जस्से’ त्यादि, यस्य नास्ति ईहाऽपोहो मार्गणा गवेषणा चिन्ता विमर्षः सोऽसंज्ञीति लभ्यते, अयं च सम्पूर्णमपंचेन्द्रियविकलेन्द्रियादिज्ञेयः, अल्पमनोलब्धित्वादभावाच्च, ‘सेत’मित्यादि, सोऽयं कालिक्युपदेशेन । संज्ञिश्रुतं ॥ ७८ ॥	
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४०] / गाथा ८१...
प्रत सूत्रांक [४०] गाथा ८१... दीप अनुक्रम [१३३]	नन्दी- हारिभद्रीय वृत्तौ ॥ ७९ ॥ ‘से किं त’मित्यादि, अथ कोऽयं हेतूपदेशेन?, हेतुः कारणं स एव उपदेशः हेतोरुपदेशः हेतूपदेशस्तेन, कारणोपदेशेनेत्यर्थः, यस्य प्राणिनोऽस्ति-विद्यतेऽभिसन्धारणम्-अव्यक्तेन विज्ञानेनालोचनं तत्पूर्विका- तत्कारणिका करणशक्तिः- क्रियाशक्तिः, करण-क्रिया शक्तिः- सामर्थ्यं, अव्यक्तविज्ञानालोचननिबन्धनचेष्टासामर्थ्यमिति भावना, स प्राणी णमिति वाक्यालंकारे संज्ञीति लभ्यते, अयं च द्वीन्द्रियादिः सम्मूर्च्छिमपंचेन्द्रियावसानो विज्ञेयः, तथाहि- कृम्यादयोऽपीष्टेष्वहारादिषु प्रवर्तन्ते अनिष्टेभ्यश्च निवर्तन्ते स्वदेहपारिपालनार्थं, प्रायो वर्तमान एव, न चासंचिन्त्येष्टानिष्टविषयः प्रवृत्तिनिवृत्तिसम्भव इति संज्ञी, उक्तलक्षणविकल-स्त्वसंज्ञी, तथा चाह-‘यस्ये’त्यादि, यस्य नास्ति अभिसन्धारणपूर्विका करणशक्तिः सोऽसंज्ञीति लभ्यते, अयं चैकेन्द्रियपृथिव्यादिरव-सेयो, मनोलब्धिरहितत्वाद्, आह-यदि स्वल्पसंज्ञायोगाद्विकलेन्द्रियादयः संज्ञिन इष्यन्ते पृथिव्यादयः किं नेष्यन्ते ? यतस्तेषामपि दशविधाः संज्ञा विद्यन्ते एव, तथा चोक्तं परमगुरुभिः-“कति णं भंते! एगिदियाणं सन्नाओ पन्नत्ताओ?, गोयमा! दस, तंजहा-आहार-संज्ञा भयसन्ना मेहुण० परिग्गहसन्ना कोह० माण० माया० लोभ० ओहसन्ना लोगसन्ना य”त्ति उपयोगमात्रमोघसंज्ञा लोकसंज्ञा स्वच्छ-न्दविकल्पिता विश्वगमा लौकिकैराचरिता, तद्यथा-अनपत्यस्य न सन्ति लोका इत्यादि, अन्ये तु व्याचक्षते- ओघसंज्ञा दर्शनोप-योगो लोकसंज्ञा ज्ञानोपयोग इति, अत्रोच्यते, इहौघसंज्ञा स्तोक्तत्वाद् आहारादिसंज्ञाश्चानिष्टत्वाच्चाधिक्रियन्ते, यथा न कार्षापण-मात्रेण धनवानभिधीयते, मूर्त्तिमात्रेण वा रूपवानिति, किन्तु यथा प्रभृतरत्नादिसमन्वितो धनवान् प्रशस्तमूर्त्तियुक्तश्च रूपवानभि-धीयते, एवं महती शोभना च संज्ञा यस्यास्त्यसौ संज्ञीति, विशिष्टतरा च विकलेन्द्रियसंज्ञेत्यलं विस्तरेण, ‘सेत’मित्यादि, सोऽयं हेतूपदेशेन। ‘से किं त’मित्यादि, अथ कोऽयं दृष्टिवादोपदेशेन?, दृष्टिः-दर्शनं वदनं वादः दृष्टीनां वादः दृष्टिवादः तदुपदेशेन तन्मतापेक्षया संज्ञिभूतं ॥ ७९ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४१] / गाथा ॥८१...॥
प्रत सूत्रांक [४१] गाथा ॥८१...॥ दीप अनुक्रम [१३४]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ ८० ॥ संज्ञिश्रुतस्य क्षयोपशमेन संज्ञीति लभ्यते, अयमत्र भावार्थः-संज्ञानं संज्ञा तद्योगात् संज्ञी तस्य श्रुतं संज्ञिश्रुतं, इदं सम्यक् श्रुतमेव, अन्यथा संज्ञानाभावात्, न हि मिथ्यादृष्टेः संज्ञानमस्ति, हिताहितप्रवृत्तिनिवृत्त्यभावाद्, रागादिप्रवृत्तेः, उक्तं च-“तज्ज्ञानमेव न भवति यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः। तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुम् ? ॥१॥” सम्यग्दृष्टिस्तु तन्निग्रहपरत्वाद्गीतराग-सम एव, उक्तं च- “कलुसफलेण ण जुज्जह किं चित्तं तत्थ जं विगततराओ । संतेवि जो कसाए णिगिण्हेती सोऽवि तत्तुल्लो ॥१॥” तीत्यादि, अलं प्रसंगेन, तदित्यंभूतस्य संज्ञिश्रुतस्य क्षयोपशमेन सता संज्ञीति लभ्यते, अयं च सम्यग्दृष्टिरेव क्षयोपशमिकज्ञान-युक्तो रागादिनिग्रहपरः, तदन्यस्त्वसंज्ञी, यत आह ग्रन्थकारः-असंज्ञिश्रुतस्य क्षयोपशमेनासंज्ञीति लभ्यते, ‘सेत’मित्यादि, सोऽयं दृष्टिवादोपदेशेन, एवं संज्ञिनस्त्रिभेदभिन्नत्वात् श्रुतमपि तदुपाधिभेदात् त्रिविधमेवेति। अत्राह-कालिक्युपदेशेनेत्यादि क्रमः किमर्थः, उच्यते, इह प्रायः सूत्रे यत्र क्वचित् संज्ञिग्रहणं तत्र दीर्घकालिक्युपदेशेन समनस्कसंज्ञिपरिग्रह इति प्रथमं तदुपन्यासः, अप्रधान-त्वाच्चेतरयोः अन्ते च प्रधानाभिधानमिति न्याय्यं, ‘सेत’मित्यादि, तदेतत् संज्ञिश्रुतं, असंज्ञिश्रुतं तु प्रतिपक्षाभिधानादेव प्रतिपादितं, तदेतदसंज्ञिश्रुतम् ॥ ‘से किं त’ मित्यादि ॥४१- १९१॥ अथ किं तत् सम्यक्श्रुतं?, २ यदिदं प्रणीतमिति सम्बन्धः, तत्राशोकाद्यष्टमहाप्रतिहार-रूपं पूजामर्हन्तीत्यर्हन्तः, तथा चोक्तं-“अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यो ध्वनिश्चामरमासनं च। भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं, सत्प्राति-हार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥ १ ॥” तैरर्हद्भिः, तत्र शुद्धद्रव्यास्तिकनयमतानुसारिभिः अनादिशुद्धा एव मुक्तात्मानोऽभ्युपगम्यन्ते, यथो-क्तम्-“ज्ञानमप्रतिघं यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः। ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च, सहसिद्धं चतुष्टयं ॥१॥” इत्यादि, बहवश्च कैश्चिदिष्यन्ते, तेऽपि संज्ञिश्रुतं ॥ ८० ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः *** श्रुतज्ञानस्य १४ भेद-मध्ये ‘सम्यक्श्रुत’स्य वर्णनं क्रियते

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [४९] / गाथा ८१...
प्रत सूत्रांक [४९] गाथा ८१... दीप अनुक्रम [१३४]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ ८१ ॥ सम्यक्श्रुतं ॥ ८१ ॥ च स्थापनादिद्वारेण पूजाऽर्हत्वादर्हन्तो भवन्त्येव, अतो- भगवद्भिः, भगः खलु समग्रैश्वर्यादिलक्षणः, यथोक्तं—“ऐश्वर्यस्य समग्रस्य, रूपस्य यज्ञसः श्रियः । धर्मस्याथ प्रयत्नस्य, षष्णां भग इतीगता ॥१॥” भगो विद्यते येषां ते भगवन्तः तैर्भगवद्भिः, न चानादि- शुद्धानां समग्र रूपमुपपद्यते, अक्षरीरित्वात्, क्षरीरस्य च रागादिकार्यत्वात् तेषां च तदभावादिति, स्वेच्छानिर्माणतः समग्रक्षरीरसम्भवा- तुल्यतामेवाशङ्क्याह-उत्पन्नज्ञानदर्शनधरैः . न च तेऽनादिशुद्धाः उत्पन्नज्ञानदर्शनधराः ‘ज्ञानमप्रतिषं यस्य’त्यादिवचनविरोधात् , एवं शुद्धद्रव्यास्तिकनयमतानुसारिपरिकल्पितमुक्तव्यवच्छेदार्थोऽयं ग्रन्थः, अधुना पर्यायास्तिकनयमतानुसारिपरिकल्पितमुक्तव्यवच्छे- दार्थमाह-‘त्रैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजितैः’ निरीक्षिताश्च महिताश्च पूजिताश्चेति समासः, त्रैलोक्येन निरीक्षितमहितपूजिता इति विग्रहः, विशेषणसाफल्यं पुनरित्थमवसेयं-त्रैलोक्यग्रहणाद् भवनव्यन्तरनरविद्याधरज्योतिष्कवैमानिकपरिग्रहः, निरीक्षिता भक्तिनर्म्मनो- रथदृष्टिभिर्दृष्टाः, महिता यथाऽवस्थितान्यासाधारणगुणोत्कीर्त्तनलक्षणेन भावस्त्वेन, पूजिताः सुगन्धिपुष्पप्रकरप्रक्षेपादिना द्रव्य- स्तवेनेति, तत्र सुगतादयोऽपि पर्यायास्तिकनयमतानुसारिभिस्त्रैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजिता इष्यन्त एव, आह च स्तुतिकारः— “देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः । मायाविष्वपि दृश्यन्ते, नातस्त्वमसि नो महान् ॥१॥” इत्यादि, अत आह—‘अतीतप्रत्यु- त्पन्नानागतज्ञैः’ न चैकान्तक्षणीकवादिनां यथोक्तविशेषणसम्भवः, अतीतानागताभावात्, तथा चागमः, “ण णिहाणगया भग्मा पुञ्जो णत्थि अणागेते । णिव्वुया णेव चिट्ठन्ति आरग्गे सरिसोवमा ॥१॥” असतां च ग्रहणायोगादित्याद्यत्र बहु वक्तव्यं, न च तदुच्यते, गमनिकामात्रत्वादस्य प्रारम्भस्य, व्यवहारनयमतानुसारिभिस्तु कैश्चिदतीतानागतार्थग्राहिण इष्यन्त एव ऋषयः, यथाऽऽ- हुरेके- “ऋषयः संयतात्मानः, फलमूलानिलाशनाः । तपसैव प्रपश्यन्ति, त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १ ॥ अतीतानागतान् भावान् ,
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः)
प्रत सूत्रांक [४१] गाथा ॥८९...॥ दीप अनुक्रम [१३४]	 मूलं [४१] / गाथा ॥८९...॥ नन्दी- हारिभद्राय वृत्तौ ॥ ८२ ॥ वर्चमानांश्च भारत! । ज्ञानालोकेन पश्यन्ति, त्यक्तसंगा जितेन्द्रिया ॥२॥” इत्यादि, अत आह-‘सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः’ ते तु सर्वज्ञा न भवन्तीत्यभिप्रायः, एवं प्रधानोभयनयमतानुसारिपरिकल्पितमुक्तव्यवच्छेदेनंद नीयते, अन्यथा वाऽविरोधेन नेतव्यामिति, प्रणीतम्-अर्थकथनद्वारेण प्ररूपितं, किं तद्?—द्वादशांगं, श्रुतपरमपुरुषोत्तमस्यांगानीवांगानि द्वादश अंगानि- आचारादीनि यस्मिँ-स्तद् द्वादशांगं, गुणगणोऽस्यास्तीति गणी-आचार्यस्तस्य पिटकं- सर्वस्वं गणिपिटकम् , अथवा गणिशब्दः परिच्छेदवचनः, तथा चोक्तम्-“आधारम्मि अहीए जं णातो होइ समणधम्मो उ। तम्हा आधारधरो भन्नति पढमं गणिट्ठाणं ॥१॥” परिच्छेदस्थानमित्यर्थः, ततश्च परिच्छेदसमूहो गणिपिटकं, तद्यथा-आचार इत्यादि, पाठसिद्धं यावद् दृष्टिवादः । अनङ्गप्राविष्टमावश्यकदादि, ततोऽर्हतप्र-णीतत्वात् वस्तुत उत्तत्वादनुक्तमपि गृह्यते, इदं सर्वमेव द्रव्यास्तिकनयमतेन तदभिधेयपंचास्तिकायभाववन्नित्यं सत् स्वाम्यस-म्बन्धचिन्तायां सूत्रार्थोभयरूपं सम्यक्श्रुतमेव भवति, स्वाभिसम्बन्धचिन्तायां तु भाज्यं, स्वामिपरिणामविशेषात् , कदाचित् सम्यक्श्रुतं कदाचिद्विपर्ययः, तत्र सम्यग्दृष्टेः प्रशमादिसम्यक्परिणामोपेतत्वात् स्वरूपेण प्रतिभासनात् सम्यक्श्रुतं, पित्तोदयान-भिभूतस्य शर्करादिरिवेति, मिथ्यादृष्टेः पुनरप्रशमादिमिथ्यापरिणामोपेतत्वाद्वस्तुनः स्वरूपेणाप्रतिभासनान्मिथ्याश्रुतं, पित्तोदया-भिभूतस्याशर्करादिवदिति, देशतो दृष्टान्तः, अशर्करादित्वं च तं प्रति तत्कार्याकरणात्, तथाऽप्यभ्युपगमे चातिप्रसंगादित्यलं प्रसङ्गेन ॥ श्रुतप्रमाणत एव सम्यक्परिणामनियमनायाह— ‘इच्चवेद’मित्यादि, इत्येतद् द्वादशांगं गणिपिटकं चतुर्दशपूर्विणः सम्यक्श्रुतमेव, तथा अभिन्नदशपूर्विणोऽपि सम्यक्श्रुतमेव, ‘तेण परं भिन्नेसु(दससु)भयण’ ति पञ्चानुपूर्व्या ततः परं भिन्नेषु दशसु भजना-कदाचित् सम्यक्श्रुतं कदाचिन्मिथ्याश्रुतं, सम्यक्श्रुतं ॥ ८२ ॥
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४२-४३] / गाथा ॥८१...॥
प्रत सूत्रांक [४२-४३] गाथा ॥८१...॥ दीप अनुक्रम [१३५- १३६]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ ८१ ॥ परिणामविशेषाद्, एतदुक्तं भवति-आसन्नमध्योऽपि मिथ्यादृष्टिः सम्पूर्णदशपूर्वरत्ननिधानं न प्राप्नोति, मिथ्यात्वपरिणामकलं- कितत्वाद्धारिणिवन्धनपापकलंकांकितपुरुषवर्चितामणिमिति, ‘सेत’मित्यादि तदेतत् सम्यक्श्रुतम् ॥ ‘से किं त’मित्यादि ॥(४२-१९४)॥ अथ किं तन्मिथ्याश्रुतं?, २ यदिदमज्ञानिकैः, तत्राल्पज्ञानभावादधनवदशीलवद्वा सम्य- ग्दृष्टयोऽप्यज्ञानिकाः प्रोच्यन्ते अत आह-मिथ्यादृष्टिभिः, किं? स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितं, इहावग्रहेहे बुद्धिः, अपायधारणे मतिः, स्वच्छन्देन-स्वाभिप्रायेण स्वतः, सर्वज्ञप्रणीतार्थानुभारमन्तरेण बुद्धिमतिभ्यां विकल्पितं स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितं, स्वबु- द्धिकल्पनाशिल्पनिर्मितमित्यर्थः, तद्यथा ‘भारत’मित्यादि सूत्रसिद्धं, यावच्चत्वारश्च वेदास्सांगोपांगाः, एतानि स्वरूपतोऽन्यथाव- स्त्वभिधानान्मिथ्याश्रुतमेव, स्वामिसम्बन्धचिन्तायां तु भाज्यानि, तथा चाह-मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वपरिगृहीतानि विपरीताभिनिवे- शहेतुत्वान्मिथ्याश्रुतं, एतान्येव सम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वपरिगृहीतानि असारतादर्शनेन स्थिरतरसम्यक्त्वपरिणामहेतुत्वात् सम्यक्- श्रुतं, अथवा मिच्छादिद्विस्सवि सम्यक्श्रुतमित्यादि, अथवा मिथ्यादृष्टेरप्येतानि सम्यक्श्रुतं, कस्मात्?, सम्यक्त्वहेतुत्वात्, तथा चाह- ‘जम्हा ते मिच्छादिद्विस्साव’ इत्यादि, यस्मात्ते मिथ्यादृष्टयः ‘तेहिं चैव समयेहिं चोदिता सभाण’ त्ति तैरेव समयैः-सिद्धान्तैः पूर्वापरविरोधद्वारेण यद्यतीन्द्रियार्थदर्शनेन स्यात् कथंचिदर्थप्रतिपत्तिरित्यादिना चोदिताः सन्तः केचन विवेकिनः सत्यकथादय इव, किं?, ‘सपक्खदिट्ठीओ वमेति’ स्वपक्षदृष्टीस्त्यजन्तीत्यर्थः ‘सेत्त’मित्यादि, तदेतत् मिथ्याश्रुतं। ‘से किं त’मित्यादि, सादि सपर्य- वासितं अनाद्यपर्यवासितं चाधिकारवशाद्युपपद्यते, अथ किं तत् सादि?, सह आदिना वर्तत इति सादि इत्येतद् द्वादशांगं गाणि- पिटकं व्यवच्छित्तिप्रतिपादनपरो नयः व्यवच्छित्तिनयः, पर्यायास्तिक इत्यर्थः, तस्यार्थो व्यवच्छित्तिनयार्थः, तद्भावो व्यवच्छित्ति- मिथ्यात्व- श्रुतं ॥ ८२ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४२-४३] / गाथा ॥८१...॥		
प्रत सूत्रांक [४२-४३] गाथा ॥८१...॥ दीप अनुक्रम [१३५- १३६]	नन्दी- हारिमद्रीय वृत्तौ ॥ ८४ ॥	नयार्थता तथा व्यवच्छिन्नित्यर्थभावेन, पर्यायापेक्षेत्यर्थः, किं ? सादि सपर्यवसितं, पर्यवसानं पर्यवसितं, भावे निष्ठाप्रत्ययः, सह पर्यवसानेन सपर्यवसितं, नारकादिभावापेक्षया एव जीव इति, तथा अव्यवच्छिन्नप्रतिपादनपरो नयः अव्यवच्छिन्नित्यर्थः, द्रव्यास्तिकनय इत्यर्थः, तस्यार्थोऽव्यवच्छिन्नित्यर्थस्तद्भावः अव्यवच्छिन्नित्यर्थता तथा अव्यवच्छिन्नित्यर्थभावेन, द्रव्यापेक्षेत्यर्थः, किं?, अनादि अपर्यवसितं, त्रिकालावस्थायित्वात् जीववत् ॥ अधिकृतमेवार्थं द्रव्यादिचतुष्टयमधिकृत्य प्रतिपादयन्नाह-‘तं समासतो’ इत्यादि, तच्छु- ज्ञानं समासतः संक्षेपेण चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतः, तत्र द्रव्यतः णमिति वाक्यालंकारे सम्यक्श्रुतं एकं पुरुषं प्रतीत्य सादिसपर्यवसितं, कथं ? सम्यक्त्वावाप्तौ तत्प्रथमपाठतो वा सादि, पुनर्मिथ्यात्वप्राप्तौ सति वा सम्यक्त्वे प्रमादिरला- निसुरलोकगमनकेवलोत्पत्तिभावात् सपर्यवसितं, बहून् पुरुषान् प्रतीत्य अनाद्यपर्यवसितं, सन्तानेन प्रवृत्तत्वात् पुरुषत्ववत्, तथा क्षेत्रतः पंच भरतानि पंच एरवतानि प्रतीत्य सादि सपर्यवसितं, कथं ? तेषु सुषमदुष्पमादिकाले तीर्थकरधर्मसंघानां तत्प्रथमतयो- त्पत्तेः सादि, एकान्तदुष्पमादिकाले च तदभावे सपर्यवसितं, तथा महाविदेहादि प्रतीत्य प्रवाहरूपेण तीर्थकरादीनामव्यवच्छित्ते- रनाद्यपर्यवसितं, कालतः णमिति वाक्यालंकारे अवसर्पिणीं उत्सर्पिणीं च प्रतीत्य सादि सपर्यवसितं, कथं ? यतोऽवसर्पिण्यां तिसृ- ष्वेव सुषमदुष्पमादुष्पमसुषमादुष्पमास्त्विति, उत्सर्पिण्यां द्वयोः दुष्पमासुषमासुषमदुष्पमयोरिति, न परतः, इत्यतः सादि सपर्यवसितं, अत्र कालचक्रं विंशतिसागरोपमकोटीकोटिपरिमाणं विनेयजनानुग्रहार्थं प्ररूप्यते— चचारि सागरोवमकोडाकोडोऽसंतती ए उ । एगंत ससमा खलु जिणेहिं सच्चेहिं णिदिह्वा ॥१॥ तीए पुरिसाणमायुं तिणिण उ पलियाइं तह पमाणं च । तिन्नेव गाउयाइं आदीए भणंति समयणू ॥ २ ॥ उवभोगपरीभोगा जम्मंतरसुकयवीयजातातो ।	मिथ्यात्व- श्रुते ॥ ८४ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अत्र ‘कालचक्र’स्य स्वरूपम् वर्णयते		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४२-४३] / गाथा ॥८१...॥		
प्रत सूत्रांक [४२-४३] गाथा ॥८१...॥ दीप अनुक्रम [१३५- १३६]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ ८५ ॥	कप्पतरुसमूहाओ होंति किलेसं विणा तेसिं ॥ ३ ॥ ते पुण दसप्पगारा कप्पतरु समणसमयकेतूहिं । धीरेहि विणिहिट्ठा मणोरहापू- रगा एए ॥ ४ ॥ मत्तंगथा १ य भिंगा २ तुडियंगा ३ दीव ४ जोति ५ चित्तंगा ६ । चित्तरसा ७ मणियंगा ८ गेहागारा ९ अणियणा १० य ॥ ५ ॥ मत्तंगएसु मज्जे सुहपेज्जं भायणाणि भिंसेसु । तुडियंगेसु य संगयतुडियाणि बहुप्पगाराणि ॥ ६ ॥ दीवसिहा जोतिसणामया य णिच्चं करिति उज्जोयं । चित्तंगेसु य मल्लं चित्तरसा भोयणट्ठाए ॥ ७ ॥ मणियंगेसु य भूसणवराणि भवणाणि भवणरुक्खेसुं । आयन्नेसु य इच्छियवत्थाणि बहुप्पगाराणि ॥ ८ ॥ एएसु य अन्नेसु य नरनारिगणाण ताणमुवभोगो । मयियपुण्णभववरहिया इय सच्चन्नू जिणा विति ॥ ९ ॥ तो तिन्नि सागरावमकोडाकोडी उ वीयरगेहिं । सुसमत्ति समक्खाया पवाहरूवेण धीरेहिं ॥ १० ॥ तीए पुरिसाणमायुं दोण्णि य पलियाइं तह पमाणं च । दो चेव गाउयाइं आईए भणंति समयन्नू ॥ ११ ॥ उवभोगपरीभोगा तेसिंपि य कप्पपादवेहिंतो । होंति किलेसेण विणा नवरं ऊणाऽणुभावेहिं ॥ १२ ॥ तो सुसमदूसमाए पवाहरूवेण कोडिकोडीओ । अयराण दोण्णि सिट्ठा जिणेहिं जियरागदोसेहिं ॥ १३ ॥ तीए पुरिसाणमाउं एगं पलियं तहा पमाणं च । एगं च गाउयं तीइ आदीए भणंति समयणू ॥ १४ ॥ उवभोगपरीभोगा तेसिंपि य कप्पपादवेहिंतो । होंति किलेसेण विणा पायं ऊणाऽणुभावेहिं ॥ १५ ॥ सुसमदूसमावसेसे पढमजिणो धम्मणायगो भयवं । उप्पन्नो कयपुन्नो सिप्पकलादंसगो उसहो ॥ १६ ॥ तो दुसमसुस्समूणा बायालीसाए वरिससहसेहिं । सागरकोडाकोडी एगेव जिणेहि पणत्ता ॥ १७ ॥ तीए पुरिसाणमायुं पुव्वपमाणेण तह पमाणं च । धणुसंखानिदिट्ठं विसेससुत्ताओ णायव्वं ॥ १८ ॥ उवभोगा परीभोगा पवरोसहिमाइएहिं विण्णेया । जिणचक्किवासुदेवा सच्चे य इमीए वोलीणा ॥ १९ ॥ इगवीससहस्साइं वासाणं दूसमा इमीए य । जेविय माणुवभोगादीया व	कालचक्र- स्वरूपं ॥ ८५ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [४२-४३] / गाथा ॥८१...॥	
प्रत सूत्रांक [४२-४३] गाथा ॥८१...॥ दीप अनुक्रम [१३५- १३६]	नन्दी- हरिभट्टीय वृत्तौ ॥ ८६ ॥ दीसंति हायंता ॥ २० ॥ एचो उ किलिङ्गतरा जीतपमाणादिहं निदिङ्गा । अतिदूसमत्ति घोरा वाससहस्साइं इगवीसं ॥ २१ ॥ ओसपिणीए एसो कालविभागो जिणेहिं निदिङ्गो । एसोच्चिय पडिलोमं विस्सेयुस्सपिणीएवि ॥ २२ ॥ एतं तु कालचक्रं सिस्स- जणानुग्गहट्टया भणिथं । संखेवेण महत्थो विससमुत्ताओ णायब्बो ॥ २३ ॥ ‘णोउस्सपिणी’ मित्यादि, नोउत्सपिणीमवस- पिणीं च प्रतीत्य अनाद्यपर्यवसितं, महाविदेहेष्वेव कालस्यावस्थितत्वादिति भावः, भावतः णमिति पूर्ववत् ‘य’ इत्यनिर्दिष्ट- निर्देशे ये केचन यदा पूर्वाह्णादीं जैनैः प्रज्ञप्ता २ भावाः पदार्थाः ‘आद्यविज्जन्ति’ चि प्राकृतशैल्या आख्यायन्ते, सामान्यविशे- षाभ्यां कथ्यन्ते इत्यर्थः, प्रज्ञाप्यन्ते नामादिभेदाभिधानेन, प्ररूप्यन्ते नामादिस्वरूपकथनेन, यथा ‘पर्यायानभिधेय’ मित्यादि, दर्श्यन्ते उपमानमात्रतः यथा गौस्तथा गवय इत्यादि, निदर्श्यन्ते हेतुदृष्टान्तोपन्यासेन, उपदर्श्यन्ते उपनयनिगमनाभ्यामिति, सकलनयाभिप्रायतो वा तान् भावान् तदा तत्कालापेक्षया प्रतीत्य सादि सपर्यवसितं, एतदुक्तं भवति-प्रज्ञापकोपयोगस्वरप्रयत्ना- सनविशेषतः प्रतिक्षणमन्यथा चान्यथा चावस्थितेः सादि सपर्यवसितं, तथा चोक्तम्- “उपयोगसरपयत्ताआसणभेदादिया य पति- समयं । भिन्ना पन्नवगस्सा सादिसपज्जन्तं तम्हा ॥ १ ॥” अथवा प्रज्ञापनीयभावापेक्षया गतिस्थितिद्वयणुकाद्येकप्रदेशाद्यवगाहै- कादिसमयस्थित्येकवर्णादिप्रतिपादनात् सादिसपर्यवसितं, क्षायोपशमिकभावापेक्षया पुनरनाद्यपर्यवसितं, प्रवाहरूपेण तस्यानाद्य- पर्यवसितत्वात्, अथवाऽत्र चतुर्भंगिका सादि पर्यवसितं १ सादि अपर्यवसितं २ अनादिसपर्यवसितं ३ अनादिअपर्यवसितं ४, तत्र प्रथमभंगकप्रदर्शनायाह- ‘भवसिद्धियस्स’ इत्यादि, भवसिद्धिको-भव्यस्तस्य श्रुतं सम्यक्श्रुतं सादि सपर्यवसितं, उपयोगाद्य- पेक्षया भावितमेव, द्वितीयभंगस्तु शून्यः, प्ररूपणामात्रतो वा अभव्यस्य, वर्तमानकालापेक्षया अनागताद्वामधिकृत्य मिथ्याश्रुत- कालचक्रं- सादिसपर्य- सितादि ॥ ८६ ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४२-४३] / गाथा ८१...
प्रत सूत्रांक [४२-४३] गाथा ८१... दीप अनुक्रम [१३५- १३६]	नन्दी- हरिभद्रजीय वृत्तौ ॥ ८७ ॥ मिति, तृतीयभंगस्तु सम्बन्धत्वात् भव्यस्य मिथ्याश्रुतं, चतुर्थं भंगं पुनरुपदर्शयन्नाह--‘अभव’ इत्यादि, अभवसिद्धिका-अभव्यस्तस्य श्रुतं मिथ्याश्रुतं अनाद्यपर्यवसितं, तस्य सदैव संसारवर्चित्वात् । इह च श्रुतस्योपक्रान्तत्वात् तृतीयचतुर्थभंगकद्वये अनादिश्रुतभाव उक्तो- ऽन्यथा मतेरप्ययमेव द्रष्टव्यः, मतिश्रुतयोरन्योऽन्यानुगतत्वात्, अत्राह-सोऽनादिज्ञानभावः किं जघन्य उत विमध्यम आहोशिवदु- त्कृष्ट इति, अत्रोच्यते, जघन्यो विमध्यमो वा, न तूत्कृष्टः, कथं?, यतस्तस्येदं प्रमाणं ‘संज्ञागासपदेसग्न’ मित्यादि, सर्वं च तदाकाशं च सर्वाकाशं, लोकालोकाकाशमित्यर्थः, तस्य प्रदेशाः, प्रकृष्टा देशाः प्रदेशा निर्विभागा भागा इत्यर्थः, तेषामग्रं-परिमाणं सर्वाकाशप्रदे- शाग्रं, सर्वाकाशप्रदेशैः, किं?, अनन्तगुणितं अनन्तशो गुणितं अनन्तगुणितं, एकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशे अनन्तागुरुलघुपर्यायभावात्, पर्यायाक्षरं-पर्यायपरिमाणाक्षरं निष्पद्यते, सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणमिति भावार्थः, स्तोकत्वाच्चेह धर्मास्तिकायादयो नोक्ताः, अर्थ- तस्तु गृहीता एव, इह च ज्ञानमक्षरं गृह्यते, तथा तज्ज्ञेयं, तथा अकारादि च, सर्वथाऽप्यविरोध इति, अस्य च सर्वजीवानामपि चाक्षरस्यानन्तभागो नित्योद्घाटितः, सदाऽप्रावृत्त इत्यर्थः, स पुनरनन्तभागोऽप्यनेकविधः, तत्र सर्वजघन्यश्चैतन्यमात्रं, तत्पुनर्न कदाचिदुत्कृष्टावरणस्याप्याव्रियते, जीवस्वाभाव्याद्, आह-च ग्रन्थकारः ‘जइ पुण’ इत्यादि, यदि पुनः सोऽपि आव्रियेत, ततः किं?, तेन जीवः अजीवतां प्राप्नुयात्, तेनाष्टतेन जीवः-चैतन्यलक्षणः स्वलक्षणपरित्यागादजीवतां प्राप्नुयात्, नचैतद् दृष्टमिष्टं वा, सर्वस्य सर्वथा स्वभावातिरस्काराद्, अत्रैव दृष्टान्तमाह- ‘सुदुटुवी’ त्यादि, मेघसमुदये चन्द्रसूर्यप्रभाजालतिरस्कारिणे सति भवति प्रभा चन्द्रसूर्ययोः, सर्वस्य सर्वथा स्वभावातिरस्कारादिति । अत्राह- ‘सञ्ज्ञागासपदेसग्नं सञ्ज्ञागासपदेसेहि अणंतगुणियं पञ्चव- ग्गाक्खरं निष्फज्जती’ त्यत्राविशेषितमेवाक्षरमुक्तम्, अविशेषाभिधानाच्चेदं केवलमिति गम्यते, इह तु श्रुताधिकारादकारादि प्रकृतं यतस्तत् सादिसपर्य- वसितादि ॥ ८७ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४२-४३] / गाथा ८१...
प्रत सूत्रांक [४२-४३] गाथा ८१... दीप अनुक्रम [१३५- १३६]	नन्दी- हारिभद्रा वृत्ति ८८ कथं केवलपर्यायपरिमाणतुल्यं भवेद्?, उच्यते, नन्वत्राप्यपर्यवसितश्रुताधिकारादकाराद्येव गम्यते, अथ मतिः- ‘सच्चजीवाणंपिय णं अक्खरस्स अणंतभागो णिच्चुग्घाडिओ’त्ति सर्वजीवग्रहणान्न तच्छ्रुतं, यतः समस्तद्वादशांगविदां तत् समस्तमिति, यद्येवं केवलस्यापि न सर्वजीवानामेवानन्तभागोऽवतिष्ठते, सर्वज्ञसद्भावात्, अतो न तत् केवलाक्षरमपि, कस्यासावनन्तभागोऽस्तु?, तथा अविशेषण सर्वजीवग्रहणे सत्यपि प्रकरणादपिशब्दाद्वा केवलिनो विहायान्येषां अनन्तभागो गम्यते, अत एव किं न श्रुतात्मकमक्षरमंगीकृत्य समस्तद्वादशांगविदो विहायान्येषां अनन्तभागो गम्यते, तस्मात् स्वपरपर्यायभेदादुभयमप्यविरुद्धमिति, तथाऽप्यत्रापर्यवसितश्रुताधिकारादकाराद्येव न्यायानुपाति, तत् पुनरनन्तपर्यायम्, इह अ अ अ इत्यकार उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितः, स सानुनासिको निरनुनासिकश्च, एवं दीर्घः प्लुतः, एवं तावदष्टादशप्रभेदं अवर्णं ब्रूते, एवं यावत् केवल एवाकारो लभते सानुनासिकादीन् तथाऽन्यवर्णसहितो वा तेऽप्यस्य स्वपर्यायाः, ते चानन्ताः, कथम्?, अभिलाष्यवाह्यनिमित्तभेदात्, तस्य च परमाणुअणुकादिभेदेनानन्तत्वात्, ध्वनेश्च तथा तथाभिधायकत्वपरिणामे सति तत्तदर्थप्रतिपादकत्वादिति, सांकेतिकशब्दार्थसम्बन्धवादिमतमप्याधश्यके नयनाधिकारे विचारयिष्यामः, ततश्चैते स्वपर्यायाः, शेषास्तु सर्वे एव घटादिपर्यायाः परपर्याया इति, ते पुनः स्वपर्यायेभ्योऽनन्तगुणाः, आह-स्वपर्यायाणां तावत्पर्यायता युक्ता, घटादिपर्यायास्तु विभिन्नवत्वाश्रितत्वात् कथं तस्येति व्यपदिश्यन्ते?, उच्यते, स्वपर्यायविशेषणोपयोगात्, इह ये यस्य स्वपर्यायविशेषणतयोपयुज्यन्ते ते तस्य पर्यायतया व्यपदिश्यन्ते, यथा घटस्य रूपादयः, उपयुज्यन्ते चाकारस्वपर्यायाणां विशेषणतया घटादिपर्यायाः, तानन्तरेण स्वपर्यायव्यपदेशाभावात्, तथा वस्तुस्थित्याऽपि च घटादिपर्यायाः अभावरूपेणाकारस्य व्यवस्थितत्वाद् घटादिपर्यायाणां अकारपर्यायतायामविरोध इति, इयमत्र भावना-घटादिपर्यायाणामनन्तत्वा- सादिसपर्य- वसितादि ८८
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [४४] / गाथा ॥८१...॥	
प्रत सूत्रांक [४४] गाथा ॥८१...॥ दीप अनुक्रम [१३७]	नन्दी- हरिभद्राय वृत्तौ ॥ ९० ॥ मूर्ध्वेनाहृतप्रणीतत्वे च आधान्यख्यापनार्थमिति, तत्र ‘पाददुगं २ जङ्घो २ रुर मातदुयगं च २ दो य बाहूओ २ । गीष्वा १ सिरं च १ पुरिसो बारसअंगो सुयविसिङ्घो ॥१॥’ श्रुतपुरुषस्याङ्गेषु प्रविष्टं, अंगभावव्यवस्थितमित्यर्थः, अथवा ‘गणधरक्यमंगगथं जं कत थरेहिं बाहिरं तं तु । नियतं अंगपविष्टं अणिययसुय बाहिरं मणियं ॥१॥’ तत्राल्पतरवक्तव्यत्वादंगबाह्यमधिकृत्य प्रश्नसूत्रमाह—‘से किं त’ मित्यादि, अथ किं तदंगबाह्यं ? श्रुतपुरुषात् व्यतिरिक्तं अंगबाह्यं द्विविधं परोक्षं, तद्यथा-आवश्यकं च आवश्यकव्यतिरिक्तं च, ‘से किं त’ मित्यादि, अथ किं तदावश्यकम् ?, अवश्यक्रियानुष्ठानादावश्यकं, गुणानां वा अभिविधिना वक्ष्यमात्मानं करोतीत्यावश्यकम्, पञ्चविधं प्रज्ञसम्, तद्यथा-सामायिकमित्यादि, “सावज्जजोगविरती १ उक्कित्तण २ गुणवओ य पडिवत्ती ३ । खलियस्स णिंदणा ४ वणतिगिच्छ ५ गुणधारणा ६ चेव ॥ १ ॥” अधिकारगाथा, एतदनुसारेण आवश्यकपिण्डार्थो वक्तव्यः, ‘से त’ मित्यादि, तदेतदावश्यकम् ॥ ‘से किं त’ मित्यादि, अथ किं तदावश्यकव्यतिरिक्तं?, २ द्विविधं प्रज्ञसं, तद्यथा-कालिकं चोत्कालिकं च, तत्राल्पतरवक्तव्यत्वादुत्कालिकमधिकृत्य प्रश्नसूत्रमाह—‘से किं त’ मित्यादि, अथ किं तदुत्कालिकम् ?, उत्कालिकमनेकविधं प्रज्ञसं, तद्यथा-दशैककालिकं प्रतीतं, कल्पाकल्पप्रतिपादकं कल्पाकल्पं, तथा कल्पनं कल्पः—स्थविरकल्पादिः तत्प्रतिपादकं श्रुतं २, तत् पुनः द्विभेद—चुल्लकप्पसुयं महाकप्पसुयं, एकमल्पग्रन्थमल्पार्थं च, द्वितीयं महाग्रन्थं महार्थं च, शेषभेदाः प्रायो निगदसिद्धास्तथापि लेशतोऽप्रसिद्धतरान् व्याख्यास्यामः, जीवादीनां प्रज्ञापनं प्रज्ञापना बृहत्तरा महाप्रज्ञापना, प्रमादाप्रमादस्वरूपभेदफलविपाकप्रतिपादकमध्ययनं प्रमादाप्रमादं, प्रमादस्वरूपं महाकर्मेन्धनप्रभवाविध्यांतदुःखानलज्वालाकलापपरीतमशेषमेव संसारवासगृहं पश्यंस्तन्मध्यवर्त्यपि सति तन्निर्गमनोपाये वीतरागप्रणीतधर्मचिन्तामणौ यतो विचि- उत्कालिक श्रुतं ॥ ९० ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अत्र श्रुतपुरुषस्य द्वादश-अङ्गानां स्पष्टीकरणं दीयते । *** अथ अंगबाह्य-सूत्राणां भेदाः प्रदर्शयते तन्मध्ये कालिक-उत्कालिक सूत्राणां वर्णनं	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४४] / गाथा ८१... 		
प्रत सूत्रांक [४४] गाथा ८१... दीप अनुक्रम [१३७]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ ९२ ॥	तदध्ययनं मण्डलप्रवेश इति । विद्याचरणविनिश्चयः विद्येति ज्ञानं तच्च दर्शनसहचारितम्, अन्यथाऽभावात्, चरणं चारित्रं एतेषां फलविनिश्चयप्रतिपादको ग्रन्थः विद्याचरणविनिश्चय इति । गणिविद्या गुणगणोऽस्यास्तीति गणी, स चाचार्यः, तस्य विद्या—ज्ञानं गणिविद्या, तत्राविशेषेऽप्ययं विशेषः—‘जोतिसणिमित्तणाणं गणिणो पव्वावणादिकज्जेसु । उवयुज्जइ तिहिकरणादिजाणण-त्थञ्जहा दोसो ॥ १ ॥’ ध्यानविभक्तिः—ध्यानानि—आर्त्तध्यानादीनि तेषां विभजनं यस्यां ग्रन्थपद्धतौ सा ध्यानविभक्तिः, मरणानि प्राणत्यागलक्षणानि अनुसमयादीनि वर्तन्ते, यथोक्तम्—‘अणुसमयं संतरं चे’त्यादि, एतेषां विभजनं यस्यां सा मरणविभक्तिः । आत्मनो-जीवस्यालोचनाप्रायश्चित्तप्रतिपत्त्यादिप्रकारेण विशुद्धिः कर्मविगमलक्षणा प्रतिपाद्यते यत्र तदध्ययनं आत्म-विशुद्धिः । वीतरागश्रुतं सरागव्यपोहेन वीतरागस्वरूपं प्रतिपाद्यते यत्राध्ययने तद्वीतरागश्रुतं, संलेखनाश्रुतं द्रव्यभावसंलेखना प्रतिपाद्यते यत्र तदध्ययनं संलेखनाश्रुतं, तत्र द्रव्यसंलेखनोत्सर्गतः—‘चत्तारि विचित्ताइं विगतीणिज्जूहियाइं चत्तारि । संवच्छरे य दोन्नि उ एगंतरियं च आयामं ॥ १ ॥ नातिविगिहो य तवो छम्मासे परिमियं च आयामं । अन्नेऽवि य छम्मासे होति विगिहं तवोक्कम्मं ॥ २ ॥ वासं कोडीसहिअं आयामं काउमाणुपुव्वीए । गिरिकंदरं तु गंतुं पादवगमणं अह करेति ॥ ३ ॥’ भावसंलेखना तु क्रोधादिकषायप्रतिपक्षाभ्यास इति । विहारकल्पः विहरणं विहारः तस्य कल्पो—व्यवस्था स्थाविरकल्पादीनामुच्यते यत्र ग्रन्थेऽसौ विहारकल्पः । चरणाविधिः चरणं व्रतादि, तथा चोक्तम्—वयसमणधम्मं गाहा, एतत्प्रतिपादकमध्ययनं चरणाविधिः । आतुरप्रत्याख्यानं आतुरः—क्रियास्तीतो ग्लानस्तस्य प्रत्याख्यानं, एत्थ विधी—गिलाणं किरियातीतं णाउं गीय-त्था पच्चक्खावेति दिणे २ दव्वहासं करेन्ता सन्तः अंते य सव्वदव्वदायणाए भत्ते वेरगं जणेत्ता भत्ते णित्तण्हस्स भवचरिमप-	उत्कालिक श्रुतं ॥ ९२ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४४] / गाथा ८१...
प्रत सूत्रांक [४४] गाथा ८१... दीप अनुक्रम [१३७]	नन्दी- हरिभद्रा वृत्तौ ॥ ९३ ॥ चक्षुषाणं कारेति, एयं जत्थ अज्झयणे सवित्थरं वणिज्जति तदज्झयणं आउरपच्चक्खणं, महाप्रत्याख्यानं महच्च तत् प्रत्या- ख्यानं चेति समासः, एसित्थ भावत्थो-थेरकप्पेण जिणकप्पेण वा विहरेत्ता अंत थेरकप्पिया वारसवासे संलेहं करेत्ता जिणकप्पिया पुण विहारेणेव संलीढा तहावि जहाजुत्तं संलेहं करेत्ता निव्वाधात्तं सचेट्ठा चेव भवचरिमं पच्चक्खंति, एयं सवित्थरं जत्थअज्झयणे वणिज्जहं तमज्झयणं महापच्चक्खणं । एयाणि अज्झयणाणि जहा अभिधाणत्थाणि तहा वणियाणि, ‘सित्त’ मित्यादि निग- मनं, तदेतदुत्कालिकं, उपलक्षणं चैतदित्युक्तमुत्कालिकं ॥ ‘सि किं तं’मित्यादि, अथ किं तत् कालिकं?, कालिकमनेकाविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-उत्तराध्ययनानि उत्तराणि-प्रधानानि रूढ्या चोत्तराध्ययनानि, ‘देशे’ त्यादि प्रायो निगदसिद्धं, निशीथवन्निशीथं इदं प्रतीतमेव, अस्मादेव ग्रन्थार्थाभ्यां महत्तरं महानिशीथं, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः, इहावलिकाप्रविष्टेतरविमानप्रविभजनं यत्राध्ययने तद्विमानप्रविभक्तिः, तच्चैकमल्पग्रन्थार्थं तथाऽन्यन्महाग्रन्थार्थं, अतः क्षुल्लिका विमानप्रविभक्तिर्महती विमानप्रविभक्तिरि- ति । अङ्गचूलिका अंगस्य-आचारादेऽचूलिका अंगचूलिका, यथाऽऽचारस्यानेकविधा इहोक्तानुक्तार्थसंगहात्मिका चूलिका वर्ग- चूलिका, इह वर्गोऽध्ययनादिसमूहः, यथाऽन्तकृद्दशास्वष्ट वर्गा इत्यादि, तेषां चूलिका २, व्याख्या-भगवतीत्यस्याऽचूलिका २, अरुणोपपातः, इहारुणो नाम देवस्तत्समयनिबद्धो ग्रन्थस्तदुपपातहेतुः अरुणोपपातः, जाहे तमज्झयणं उवउत्ते समाणे समणे परियट्ठेति ताहे से अरुणे देवे ससमयनिबद्धत्तणाओ चालियासणे सभमुन्मन्तलोयणे पउत्तावही वियाणिय हट्टपहट्टे चलचवलकुंडल- धरे दिव्वाए जुत्तीए दिव्वाए विभूईए दिव्वाए गतीए जेणामेव से भगवं समणे तेणामेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता भत्तिमरोण- यवयणे विमुक्कवरकुसुमवासे ओवयति, ओवतिच्चा ताहे से समणस्स पुरतो ठिच्चा अंतधिए कयंजलिए उवउत्ते संवेगविसुज्झमा- कालिकश्रुतं ॥ ९३ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [४४] / गाथा [८१...]	
प्रत सूत्रांक [४४] गाथा [८१...] दीप अनुक्रम [१३७]	नन्दी- हरिभद्राचार्य वृत्तौ ॥ ९४ ॥ णज्जवसाणे सुणेमाणे चिद्धइ, समत्ते य भणइ-सुसज्जाइयं २, वरं वरेहिति, ततो से इहलोगणिपिवासे समतिणमणिमुत्तलेट्टुकंचणे सिद्धिवधूणिभरणुरायचित्ते समणे पडिभणइ-ण मे वरेण अट्ठोत्ति, ततो से अरुणदेवे अधिगतरजातसंवेगे पयाहिणं करेत्ता वंदि-त्ता णमंसित्ता पडिगच्छइ, एवं वरुणोववायादिसुवि भाणियव्वं, उत्थानश्रुतं अध्ययनं तं पुण सिंगणाइयकज्जेसु जस्सेगकु-लस्स वा गामस्स वा जाव रायहाणीए वा सच्चेव समणे कयसंकप्पे आसुरुत्ते अप्पसक्के अप्पसक्कलेसे विसमासणत्थे उवउत्ते समा-णे उट्ठाणसुअज्झयणं परियट्ठेति एकं दो तिन्नि वा वारे, ताहे से कुले वा गामे वा जाव रायहाणी वा ओहयमणसंकप्पे विलवंते दुयं २ पहावंते उट्ठेति, उव्वसत्तिच्चि वुत्तं भवति, तथा समुत्थानश्रुतं अध्ययनं तं पुण समत्तकज्जे तस्सेव कुलस्स वा गामस्स वा जाव रायहाणीए वा सच्चेव समणे कयसंकप्पे तुट्ठे पसण्णे पसण्णलेसे समसुहासणत्थे उवउत्ते समाणे समुट्ठाणसुतज्झयणं परियट्ठेति एकं दो तिन्नि वा वारे, ताहे से कुले वा जाव रायहाणीए वा पहट्ठचित्ते पसन्नमणे कलयलं कुणमाणे मंदाए गतीए सललियं आगच्छइ २ चा समुट्ठेति, आवासेत्तिच्चि वुत्तं भवतीत्यर्थः, एवं कयसंकप्पस्स परियट्ठित्तस्स पुव्वुट्ठितं समुट्ठेति । णागपरिया-वणियाओ नागपरिज्ञा, नागस्सि-नागकुमाराः तस्समयणिवद्धमज्झयणं, से जया समणे उवउत्ते परियट्ठेति तदाऽकयसंकप्पस्सवि ते णागकुमारा तत्थत्था चेव तं समणं परियाणंति वंदंति नमंसंति बहुमाणं च करंति, सिंगणादियकज्जेसु य वरदा भवन्तीत्यर्थः, णिरयावलिया जासु आवलियपविट्ठेत्तरे य णिरया तग्गामिणो य णरतिरिया पसंगओ वन्निज्जंति । कप्पियाउत्ति सौधर्मादिक-ल्पगतवक्तव्यतागोचरा ग्रन्थपद्धतयः कल्पिका उच्यन्ते । एवं कल्पपावतंसिकाः सोधर्मासाणकप्पेसु जाणि कप्पविमाणाणि ताणि कप्पवडिसयाणि, तेसु य देवीओ जा जेण तवोविसेसेण उवक्खा इड्ढिं च पत्ता एवं वन्निज्जंति जासु ताओ कप्पवडंसियाओ बु- कालिकश्रुतं ॥ ९४ ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४५-४६] / गाथा ८१... 	
प्रत सूत्रांक [४५-४६] गाथा ८१... दीप अनुक्रम [१३८- १३९]	नन्दी- हरिभट्टीय वृत्तौ ॥ ९६ ॥ पमाणभूयसुत्तणिज्जहणसमत्था अन्नकालिगावि ते एत्थ अहिगया, एए ते सुप्पसिद्धप्पइन्नगणिज्जहगा चेव दड्ढवा, यत्त आह— ‘अथवेत्यादि, अथवेति प्रकारान्तरप्रदर्शनं, यस्य ऋषभादेस्तीर्थकृतः यावन्तः शिष्या औत्पत्तिकया वैनयिकया कर्मजया पारि- णाभिकया च चतुर्विधया बुद्ध्या उपपेताः—समन्विताः तस्य तावन्त्येव प्रकीर्णकसहस्राणि, प्रत्येकबुद्धा अपि तावन्त एव, अत्रै- के व्याचक्षते—किल प्रत्येकबुद्धदृष्टवान्येव तान्यवगन्तव्यानि, प्रकीर्णकप्रमाणेन प्रत्येकबुद्धप्रमाणप्रतिपादनात्, स्यादेतत्—प्रत्येकबु- द्धानां शिष्यभावो विरुध्यत इति, एतदप्यसत्, तेषां प्रत्येकबुद्धत्वादाचार्यमेवाधिकृत्य शिष्यभावस्य निषिद्धत्वात्, तीर्थकरप्रणीतशास- नप्रतिपक्षत्वेन तु तच्छिष्यभावो न विरुध्यत इति, अन्ये पुनरित्थमभिदधति—सामान्येनेह प्रकीर्णकैस्तुल्यत्वात् प्रत्येकबुद्धानामत्रा- भिधानं, न तु नियोगतः प्रत्येकबुद्धदृष्टवानि प्रकीर्णकाणीत्यलं विस्तरेण । ‘सेत’ मित्यादि, तदेतत् कालिकं, तदेतदावश्यकव्य- तिरिक्तं, तदेतदनंगप्रविष्टमिति ॥ ‘से किं त’ मित्यादि ॥(४५-२०९)॥ अथ किं तदंगप्रविष्टम्?, अंगप्रविष्टं द्वादशविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-आचारः सूत्रकृतमित्यादि । ‘से किं त’ मित्यादि ॥(४६-२०९)॥ अथ किं तदाचारवस्तु?, यद्वा अथ कोऽप्यमाचारः?, आचरणमाचारः आचर्यत इति वा आचारः शिष्टाचरितो ज्ञानाद्यासेवनविधिरिति भावार्थः, तत्प्रतिपादको ग्रन्थोऽप्याचार एवोच्यते, अनेन चाचारेण करणभूतेन श्रमणानामाचारादि आख्यायत इति योगः, अथवा आचारे णमिति वाक्यालंकारे श्रमणानां प्राणनिरूपितशब्दार्थानां निर्ग्र- न्थानां बाह्याभ्यन्तरग्रन्थरहितानां, आह-श्रमणा निर्ग्रन्था एव भवन्ति, विशेषणं किमर्थं?, उच्यते, शाक्यादिव्यवच्छेदार्थं, उक्तं च- “निगंथं सक तावस गेरुय आजीव पंचहा समणा” तत्राचारो ज्ञानाद्यनेकभेदभिन्नो गोचरो-भिक्षाग्रहणाविधिलक्षणः विनयो ज्ञानादि आचारांगं ॥ ९६ ॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अथ अंगप्रविष्ट-सूत्राणां वर्णनं आरभ्यते, तदन्तर्गत ‘आचार’ सूत्रस्य वर्णनं ।	

आगम (४४)	[भाग-7] "नन्दी"- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [४५-४६] / गाथा ॥८१...॥		
प्रत सूत्रांक [४५-४६] गाथा ॥८१...॥ दीप अनुक्रम [१३८- १३९]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥ ९८ ॥	पान्निर्गुक्तिरिति, एताश्च निक्षेपनिर्गुक्त्याद्याः संख्येया इति, संख्येज्जाओ पडिवत्तीओ द्रव्यादिपदार्थाभ्युपगमाः प्रतिपत्तयः, प्रति- वाद्यभिग्रहविशेषा वा 'से ण' मित्यादि, स आचारः णमिति वाक्यालंकारे अंगार्थतया अंगार्थत्वेन, अर्थग्रहणं परलोकचिन्तां प्रति सूत्रादर्थस्य गरीयस्त्वख्यापनार्थं, सूत्रार्थोभयरूपो वाऽयमिति ख्यापनार्थं, प्रथमसंगं स्थापनामधिकृत्याद्यमंगमित्यर्थः, द्वौ श्रुतस्कन्धौ अध्ययनसमुदायलक्षणौ, पंचविंशतिरध्ययनानि, तद्यथा- सत्थपरिभा १ लोगविजयो २ सीतोसणिज्ज ३ सम्मत्तं ४। आवेत्ति ५ धुअ ६ विमोहो ७ महापरिभा ८ वहाणसुयं ९ ॥ १० ॥ पढमो सुयसंधो । पिडेसण १ सेज्जि २ रिया ३ भासज्जाया य ४ वत्थ ५ पाएसा ६ । उग्गहपडिमा ७ सत्त य सत्तिकया ७ भावण १५ विमुत्ती १६ ॥ २ ॥ एवमेतानि निशीथवार्जानि पंचविंशतिरध्ययनानि, तथा पंचाशीत्युद्देशनकालाः, कथं ? उच्यते, अंगस्य श्रुतस्कन्धस्याध्ययनस्योद्देशकस्य च एतेषां चतुर्णा- मप्येक एव, एवं सत्थपरिभाए सत्त उद्देसणकाला, लोगविजयस्स छ सीओसणिज्जस्स चउरो संमत्तस्स चउरो लोगसारस्स छ धुतस्स पंच एवं विमोहज्झयणस्स अट्ठ, महापरिभाए सत्त उवहाणसुत्तस्स चउरो, पिडेसणाए एक्कारस ११ सेज्जाए तिन्नि ३ इरियाए तिन्नि ३ भासज्जाए दोन्नि २ वत्थेसणाए दो २ पाएसणाए दो २ उग्गहपडिमाए दोन्नि २ सत्तिकयाए सत्त ७ भावणाए एक्को १ विमुत्तीए एक्को १, एवमेव संपिडिया पंचासीई भवन्ति, एत्थ संगहमाहा-सत्त य छच्चउ चउरो छ पंच अट्ठेव सत्त चउरो य । एक्कार ति तिय दो दो दो सत्तेक् एक्को य ॥ १ ॥ एवं समुद्देशनकालावि भाणियव्वा । अष्टादश पदसहस्राणि पदाग्रेण, इह यत्रार्थोपलब्धिस्तत् पदं, चोदक आह- यदि दो सुतवसंधा पणुवीसं अज्झयणाणि अट्ठारस पदसहस्राणि पदगणेण भवन्ति तो जं भाणियं 'णववंभेचरमइओ अट्ठारसपदसहसिसओ वेउ'त्ति एयं विरुज्झइ, आचार्य आह-णणु एत्थवि भाणियं 'हवइ य सपंचचूलो	आचारांगं ॥ ९८ ॥
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः			

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४५-४६] / गाथा ॥८१...॥		
प्रत सूत्रांक [४५-४६] गाथा ॥८१...॥ दीप अनुक्रम [१३८- १३९]	नन्दी- हरिभट्टीय वृत्तौ ॥ ९९ ॥	बहुबहुअयरो पयग्गेणं'ति, इह सुत्तालावयपदेहिं सहितो बहु बहुयरो य वक्तव्य इत्यर्थः, अथवा दो सुयखंधा पणुवीसं अज्झस- णाणि एयं आयारग्गसहितस्स आयारस्स पमाणं भाणियं, अट्टारसपयसहस्साणि पुण पढमसुयकखंधस्स णववंभचेरमतियस्स पमाणं, विचित्तत्थयद्वाणि य सुत्ताणि गुरुवदेसतो तेसि अत्थो जाणियव्वो, संखेज्जा अक्खरा संखेयान्यक्षराणि, वेदादीनां संखेयत्वात्, अणन्ता गमाः इह गमा अर्थगमा गृह्यन्ते, अर्थपरिच्छेदा इत्यर्थः, ते चानन्ताः, एकस्मादेव सूत्रात्तत्तद्धर्मविशिष्टानन्तधर्मात्मक- वस्तुप्रतिपत्तेः, अन्ये तु व्याचक्षते-अभिधानाभिधेयवशतो गमा इति, ते चानन्ताः, ते पुनरनेन विधिना अवसेयास्तद्यथा- सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया आउसंतेणं भगवया सुयं मे आउसंवदा, सुयं मे आउसं तहिं, सुयं मे आउसं, आउसं सुयं मे, आसुयं मया तं सुयं मया, आ तथा सुयं मया, आ तहिं सुयं मया आ, एवमादिभिर्भण्यमानं किलानन्तगममिति, अणन्ता पज्जया स्वपरभेदभिन्ना, अक्षरार्थपर्याया इत्यर्थः, परिच्छा तसा व्यस्यन्तीति त्रसा-द्वीन्द्रियादयस्ते च परिच्छा, अणन्ता थावरा वनस्पतिका- यसहिताः परिगृह्यन्ते सासयकडणिबद्धाणि काइयत्ति शाश्वता द्रव्यार्थतयाऽविच्छेदेन प्रवृत्तेः कृताः पर्यायाऽर्थतया प्रतिसमयम- न्यथात्वावाप्ता निबद्धाः सूत्र एव निकाचिता निर्युक्तसंग्रहाणिहेतूदाहरणादिभिः जिणपन्नत्ता जिनेः प्रज्ञप्ता भावाः पदार्थाः, आथविज्जंतित्यादि धुवगण्डिका पूर्ववत् । साम्प्रतमाचारांगग्रहणफलप्रतिपादनायाह-‘से एव’ मित्यादि, स इत्याचारांगग्राहकोऽ- भिसम्बध्यते, एवं आयत्ति अस्मिन् भावतः सम्यग्धीते सति एवमात्मा भवति, तदुक्तक्रियापरिणामात्मान्यतिरेकात् स एव भवतीत्यर्थः, एवं क्रियासारमेव ज्ञानमिति ख्यापनार्थं क्रियापरिणाममभिधायाधुना ज्ञानमधिकृत्याह- ‘एवं णाय’ति इदमधीत्य एवं ज्ञाता भवति यथैवेहोक्तमिति, एवं विज्ञायत्ति एवं विविधो विशिष्टो वा ज्ञाता विज्ञाता एवं विज्ञाता भवति, तन्त्रान्तरीय-	सूत्रकृतांगं ॥ ९९ ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अत्र मूल संपादने सूत्रकृतांग इति मुद्रितं, तत् मुद्रण स्थलना मात्र, एते पृष्ठे ‘आचार’ सूत्र परिचय एव वर्तते		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [४७] / गाथा [८१].....	
प्रत सूत्रांक [४५-४६] गाथा [८१].. दीप अनुक्रम [१३८- १३९]	नन्दी- हरिभद्राय वृत्तौ ॥१००॥ ज्ञातृभ्यः प्रधानतर इत्यर्थः, एवं चरणकरणपरूषणया आघविज्जतीत्यादि, निगमनवाक्यं भावितार्थमेव ॥ ‘से किं तं सूयगडे’ ॥ (४७-२१२) ॥ ‘सूच सूचार्था’ सूचनात् सूत्रं सूत्रेण कृतं सूत्रकृतं, तत्र लोक्यते अनेन वाऽस्मिन् वा लोकः सूच्यत इत्यादि निगदसिद्धं यावत् ‘आसीतस्स किरियावादिस्तस्स’ अशीत्यधिकस्य क्रियावादिशतस्य, व्यूहं कृत्वा स्वसमयः स्थाप्यत इति योगः, एवं शेषपदेष्वपि क्रिया योजनीयेति, तत्र न कर्तारं विना क्रियासम्भव इति तामात्मसमवा- यिनीं वदन्ति तच्छीलाश्च ये ते क्रियावादिनः, ते पुनरात्माद्यस्तित्वप्रतिपत्तिलक्षणाः अमुनोपायेनाशीत्यधिकशतसङ्ख्या विज्ञेयाः, जीवाजीवाश्रयबन्धसंवरनिर्जरापुण्यपापमोक्षाख्यान् नव पदार्थान् विरचय्य परिपाठ्या जीवपदार्थस्याधः स्वपरभेदावुपन्यसनीयौ, तयोरधो नित्यानित्यभेदौ, तयोरप्यधः कालेश्वरात्मनियतित्वभावभेदाः पञ्च न्यसनीयाः, पुनश्चैवं विकल्पाः कर्तव्याः अस्ति जीवः स्वतो नित्यः कालत इत्येको विकल्पः, विकल्पार्थश्चायं विद्यते खल्वात्मा स्वेन रूपेण नित्यश्च कालवादिनः, उक्तैर्नैवाभिलापेन द्वितीयो विकल्प ईश्वरकारणिनः, तृतीयो विकल्पः आत्मवादिनः ‘पुरुष एवेदं सर्व’ मित्यादि, नियतिवादिनश्चतुर्थविकल्पः, पञ्च- मविकल्पः स्वभाववादिनः, एवं स्वत इत्यजहता लब्धाः पञ्च विकल्पाः, एवमनित्यत्वेनापि दर्शय, एते विंशतिर्जावपदार्थेन लब्धाः, अजीवादिष्वप्यष्टस्वेवमेव प्रतिपदं विंशतिर्विकल्पानाम्, अतो विंशतिर्नवगुणा शतमशीत्युत्तरं क्रियावादिनामिति । ‘चउरासीते अकिरियावादीणं’ चतुरशीतेरक्रियावादिनां, क्रिया पूर्ववत्, न हि कस्यचिदव्यवस्थितस्य पदार्थस्य क्रिया समास्ति, तद्भावे चावस्थितेरभावादित्येवंवादिनोऽक्रियावादिनः, तथा चाहुरेके-“क्षणिकाः सर्वसंस्काराः, अस्थितानां कुतः क्रियाः। भूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यत ॥ १ ॥” इत्यादि, एते चात्मादिनास्तित्वप्रतिपत्तिलक्षणा अमुनोपायेन चतुरशीतिर्द्रष्ट- सूत्रकृतांगं ॥१००॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अथ अंगप्रविष्ट-सूत्राणां वर्णनं आरभ्यते, तदन्तर्गत ‘सूत्रकृत’ सूत्रस्य वर्णनं ।	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४७] / गाथा ८१...
प्रत सूत्रांक [४७] गाथा ८१... दीप अनुक्रम [१४०]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ १०१ व्याः, एतेषां हि पुण्यापुण्यविवर्जितपदार्थसप्तकन्यासस्तथैव जीवस्याधः स्वपरविकल्पभेदद्वयोपन्यासः, असत्त्वादात्मनो नित्या- नित्यभेदौ न स्तः, कालादीनां तु पञ्चानां षष्ठी यदृच्छा न्यस्यते, पञ्चाद्विकल्पाभिलापः नास्ति जीवः स्वतः कालत इत्यादयः षडेव विकल्पाः, एकत्र द्वादश, एवमजीवादिष्वपि षट्सु प्रतिपदं द्वादश विकल्पाः, एवं द्वादश सप्तगुणाश्चतुरशीतिविकल्पा नास्तिका- नामिति । ‘सत्तट्टीए अन्नाणियवादीणं’ ति सप्तषष्टिरज्ञानिकवादिनां, क्रिया प्राग्वत्, तत्र कुत्सितं ज्ञानमज्ञानं तदेषामस्तीत्य- ज्ञानिकाः, नचैवं लघुत्वात् प्रक्रमस्य प्राग् बहुव्रीहिणा भवितव्यं, ततश्चाज्ञाना इति स्यात्, नैष दोषः, ज्ञानान्तरमेवाज्ञानं, मिथ्या- दर्शनसहचरित्वात्, ततश्च जातिशब्दत्वात् गौरस्वरवदरण्यमित्यादिवदज्ञानिकत्वमिति, अथवा अज्ञानेन चरन्ति तत्प्रयोजना वा अज्ञानिकाः, असंचित्यकृतबन्धवैफल्यादिप्रतिपत्तिलक्षणाः, ते च अमुनोपायेन सप्तषष्टिर्ज्ञातव्याः, तत्र जीवादीन् नव पदार्थान् पूर्ववद् व्यवस्थाप्य पर्यन्ते चोत्पत्तिमुपन्यस्याधः सप्त सदादयः उपन्यसनीयाः, सत्त्वमसत्त्वं सदसत्त्वं अवाच्यत्वं सदवाच्यत्वं असदवाच्य- त्वं सदसदवाच्यत्वमिति च, एकैकस्य जीवादेः सप्त सप्त विकल्पाः, त एते नव सप्तकाः त्रिषष्टिः, उत्पत्तेस्तु चत्वार एवाद्या विकल्पाः, तद्यथा-सत्त्वमसत्त्वं सदसत्त्वं अवाच्यत्वं चेति, त्रिषष्टिमध्ये प्रक्षिप्ताः सप्तषष्टिर्भवन्ति, को जानाति जीवः सन्नित्येको विकल्पः, ज्ञातेन वा किं ?, एवं असदादयोऽपि वाच्याः, उत्पत्तिरपि किं सतोऽसतो सदसतोऽवाच्यस्येति वा को जानातीत्येतत् ?, न काश्चि- दपीत्यभिप्रायः । ‘बत्तीसाए वेणइयवादीणं’ द्वात्रिंशतो वैनयिकवादिनां, क्रिया पूर्ववत्, तत्र विनयेन चरन्ति विनयो वा प्रयो- जनमेषामिति वैनयिकाः, एते चानववृत्तलिङ्गाचारशास्त्रा विनयप्रतिपत्तिलक्षणा अमुनोपायेन द्वात्रिंशदवगन्तव्याः-सुरनृपतिज्ञा- तियतिस्थविराधममातृपितृणां प्रत्येकं कायेन वाचा मनसा दानेन च देशकालोपपन्नेन विनयः कार्यः इत्येते चत्वारो भेदाः सुरा- सूत्रकृतांगं स्थानांगं च १०१
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अत्र मूल संपादने सूत्रकृतांग-स्थानांग इति मुद्रितं, तत् मुद्रण स्खलना मात्र, एते पृष्ठे ‘सूत्रकृतांग’ सूत्र परिचय एव वर्तते

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४७-४९] / गाथा ८१... 		
प्रत सूत्रांक [४७-४९] गाथा ८१... दीप अनुक्रम [१४०- १४२]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥१०२॥	दिष्वष्टसु स्थानेषु, एकत्र मेलिता द्वात्रिंशदिति । सर्वसङ्ख्यां प्रतिपादयन्नाह-‘तिष्ठं तेसङ्ख्या’ मित्यादि, त्रयाणां त्रिषष्ट्याधिकानां प्रावादुकशतानां, विचित्रैकैकनयमतावलम्बिनां प्रवादिकशतानामित्यर्थः, व्यूहं-प्रतिशेषं कृत्वा स्वसमयः स्वसिद्धान्तः स्थाप्यते, शेषं किञ्चिद् व्याख्यातं किञ्चित् सुगममिति यावत् ‘सितं सूयगडे’ ति कण्ठम् ॥ ‘से किं त’मित्यादि ॥(४८-२३८)॥ अथ किं तत् स्थानं ?, तिष्ठन्त्यस्मिन् प्रतिपाद्यतया जीवादय इति स्थानं, तथा चाह-‘ठाणे ण’ मित्यादि, स्थानेन स्थाने वा जीवाः स्थाप्यन्ते, व्यवस्थितस्वरूपप्रतिपादनायेति हृदयं, शेषं प्रायो निगदसिद्धमेव, नवरं ‘टंक’ति छिन्नतडं टङ्कं ‘कूडं’ति पञ्चतोवरिं, जहा वेयङ्गुस्सोवरिं नव सिद्धाययणादिया कूडा, ‘सेल’ति हिमवंतादिया सेला, ‘सिहरिणो’ति सिहरेण सिहरिणोत्ति, ते यं वेयङ्गुहया ‘पम्भार’ति जं कूडं उवरिं अत्रखज्जुयं तं पम्भारं, जं वा पञ्चयस्स उवरिभागे हरिथकुंभागिती कुडुहं णिगयं तं पम्भारं भन्नाह ‘कुंड’ति गंगादीणि कुंडानि ‘गुह’ति तिमिसादिया गुहा ‘आगरा’ रूपसुवन्नरयणादिउप्पत्तिट्ठणा आगरा ‘दह’ति पोंडरीयादीया दहाणदीउ’ति गंगासिंधुमादीओ, शेषं क्षुण्णार्थं यावन्निगमनमिति । ‘से किं त’मित्यादि ॥(४९-२२९)॥ अथ कोऽयं समवायः?, सम् अव अयः समवायः, सम्यगधिकपरिच्छेद इत्यर्थः, तद्धेतुकश्च ग्रन्थोऽपि समवायः, तथा चाह-समवायेन समवाये वा जीवाः समाश्रीयन्ते, अविपरीतस्वरूपगुणभूषिता बुद्ध्या अंगीक्रियन्त इत्यर्थः, अथवा जीवाः समस्यन्ते- कुप्ररूपणाभ्यः सम्यक्प्ररूपणायां क्षिप्यन्ते, शेषं निगदसिद्धमानिगमनम् । नवरं ‘एगादियाण’-मित्यादि, अत्रैकाद्येकोत्तरं स्थानशतं भवति, यथा ‘एगे आया’ इत्यादि, शेषं सत्रसिद्धं यावन्निगमनमिति ।	समवाया- दयः ॥१०२॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अथ अंगप्रविष्ट-सूत्राणां वर्णनं आरभ्यते, तदन्तर्गत ‘स्थान एवं समवाय’ सूत्रयोः वर्णनं ।		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [५२-५३] / गाथा ८९... 		
प्रत सूत्रांक [५२-५३] गाथा ८९... 	नन्दी- हरिभद्रजीय वृत्तौ १०४ 	कुडं इमाओ रासीओ वेगलाणं तु । पुणरुत्तवज्जियाणं पमाणमित्थं विणिहिद्वं ॥ २ ॥ सोधिए य समाणे अद्हुट्टाओ कहाणयको- डीओ चेव हवंति, अत एवाह-एवमेव सपुब्बावरेणं भणियपगारेणं, गुणणसोहेणे कतेचि बुत्तं भवसि, अधुट्टाओ कहाणयकोडीओ भवन्तीतिमक्खायं, प्रकटार्थमित्येवं गुरवो व्याचक्षते, अन्ये पुनरन्यथा, तदभिप्रायं पुनर्वैयमतिगम्भीरत्वाभावावगच्छामः, परमार्थं त्वन्न विशिष्टश्रुतविदो विदन्तीत्यलं प्रसंगेन, शेषं सुगमं यावत् ‘संखेज्जा पदसयसहस्सा पदग्गेणं, ते य किल पंच लक्खा छाव- त्तरिं च सहस्सा पदग्गेणं, अहवा सुत्तालावयपयग्गेणं संखेज्जा पदसहस्सा भवन्ति, एवं सच्चत्थ भावेयत्वं, शेषं सूत्रसिद्धं यावन्नि- गमनमिति ॥ ‘से किं त’ मित्यादि॥(५२-३१)॥उपासकाः-श्रावकाः तद्गतक्रियाकलापनिबद्धा दशाः दशाध्ययनोपलक्षिताः उपासकदशाः, तथा चाह-‘उवासगदसासु’ णं इत्यादि सूत्रसिद्धं यावत् ‘संखेज्जा पदस(यस)हस्सा पदग्गेणं, ते च किल एकारस लक्खा वावणं पयग्गेणं’ ति, शेषं कण्ठ्यमानिगमनमिति । ‘से किं त’ मित्यादि (५३-२३२) अन्तो विनाशः स च कर्मणस्तत्फलभूतस्य वा संसारस्य कृतो येस्तेऽन्तकृतस्ते च तीर्थकरादयस्तेषां दशाः प्रथमवर्गे दशाध्ययनानीति तत्संख्यया अन्तकृद्दशा इति, तथा चाह—‘अंतकडदसासु णं’ मित्यादि, पाठासिद्धं यावत् ‘अंतकिरियाओ’ चि भवापेक्षया अन्त्याश्च ताः क्रियाश्चेति समासः, ताश्च शैलेश्यवस्थाद्या गृह्यन्ते, शेषं प्रक- टार्थं यावत् ‘अद्हु वग्गा’ एत्थ ‘वग्गो’ चि समूहो, सो य अंतगडाणं अज्झयणाणं वा, सच्चाणि अज्झयणाणि जुगवं उद्दिंसन्ति,	अन्तकृता- दयः
दीप अनुक्रम [१४५- १४६]			 १०४
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः			
*** अथ अंगप्रविष्ट-सूत्राणां वर्णनं आरभ्यते, तदन्तर्गत ‘उपासकदशा एवं ‘अंतकृद्दशा सूत्रयोः वर्णनं ।			

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [५४-५६] / गाथा ॥८१...॥	
प्रत सूत्रांक [५४-५६] गाथा ॥८१...॥ दीप अनुक्रम [१४७- १४९]	नन्दी- हारिभट्टीय वृत्तौ ॥१०५॥ अतो भण्णिणं—अट्ट उद्देशणकाला, इच्चादि, संखेज्जा पदसहस्सा पदग्गेणं, ते य किल एवतिथा-त्तेधीसं लक्खा चउरो य सहस्सा पदग्गेणं'ति, शेषं सूत्रसिद्धं यावन्निगमनमिति । 'से किं त'मित्यादि ॥ (५४-२३३) ॥ उत्तरः-प्रधानः, नास्योत्तरो विद्यत इति अनुत्तरः उपपत्तनमुपपातः जन्मेत्यर्थः, अनुत्तरः प्रधानः संसारेज्यस्य तथाविधस्याभावात् उपपातो येषामिति समासः, तद्वक्तव्यताप्रतिबद्धा दशाः दशाध्ययनोप- लक्षिता अनुत्तरोपपातिकदशाः, तथा चाह- 'अणुत्तरोववाइयदसासु ण'मित्यादि सूत्रसिद्धं यावत् तिन्नि 'वग्ग'त्ति इहाध्य- नसमूहो वर्गः, वर्गे २ दशाध्ययनानि, वर्गश्च युगपदेवोद्दिश्यत इत्यत आह- 'तिन्नि उद्देशणकाला' इत्यादि, 'संखेज्जा पदसहस्सा पदग्गेणं, ते य किल छायालीसं लक्खा अट्ट य सहस्सत्ति, शेषं प्रकटार्थं यावन्निगमनमिति । 'से किं त'मित्यादि ॥ (५५-२३४) ॥ प्रश्नः प्रतीतस्तन्निर्वचनं व्याकरणं, बहुत्वाद्वहुवचनं, प्रश्नव्याकरणेषु 'अट्टोत्तरं पसिणसय्यं' इत्यादि, अंगुट्टवाहुपसिणादियाओ पसिणाओ, जे पुण विज्जामंता विधीए जविज्जमाणा अपुच्छिया चेव सुभासुमं कहंति एता अपसिणातो, तहा अंगुट्टपसिणभावं च पडुच्च साधेति जा विज्जाओ ताओ पसिणापसिणाओत्ति, अथवा अणंतरं जा कहंति ता पसिणा परंपरं पसिणापसिणात्ति, तं पुण विज्जाकहितं तस्स परंपरं भवति, अन्ने य दिव्वा विचित्ता विज्जातिसया, शेषं निगदसिद्धं यावत् 'संखेज्जा पदसयसहस्सा पदग्गेणं, ते य किल बाणउतिलक्खा सोलस य सहस्सत्ति, शेषं गतार्थं यावदन्त इति । 'से किं त'मित्यादि ॥ (५६-२३४) ॥ विपचनं विपाकः, शुभाशुभकर्मपरिणाम इत्यर्थः, तत्प्रतिपादकं श्रुतं विपाकश्रुतं, शेषमानिगमनं सूत्रसिद्धमेव, नवरं 'संखेज्जा पदसहस्सा पदग्गेणं, एते य एगा पदकोडी चुलसीइं च लक्खा वत्तीसं च सहस्सत्ति । विपाक- दृष्टिवादौ ॥१०५॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभट्टसूरिजीरचिता वृत्तिः *** अथ अंगप्रविष्ट-सूत्राणां वर्णनं आरभ्यते, तदन्तर्गत 'अनुत्तरोपपातिक, प्रश्नव्याकरण एवं विपाकश्रुत' सूत्राणां वर्णनं ।	

[illegible]

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [५७] / गाथा [८२-८४]
प्रत सूत्रांक [५७] गाथा [८२- ८४] दीप अनुक्रम [१५०- १५४]	नन्दी- हरिभद्रा वृत्तौ ॥१०९॥ विशालात्ति सभेया संजमकिरियाओ बंधकिरियाविहाणा य, तस्सवि पयपरिमाणं णव कोडीओ । चोइसमं लोगबिंदुसारं, तं च इमम्मि लोए सुअलोए वा बिंदुमिव अक्खरस्स सव्वुत्तमं सव्वक्खरसभिवायपरितत्तणओ लोगबिन्दुसारं भाणियं, तस्स य पयपरिमाणं अद्वत्तेरसपयकोडीओ । से तं पुव्वगते ॥ ‘से किं त’मित्यादि, अनुरूपः अनुकूलो वा योगोऽनुयोगः, सूत्रस्य निजेनाभिधेयेन सार्द्धमनुरूपः संबंध इत्यर्थः, स च द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा-मूलप्रथमानुयोगश्च गण्डिकानुयोगश्च, ‘से किं त’मित्यादि, इहैकवक्तव्यताप्रणयनान्मूलं तावत्तीर्थकरास्तेषां प्रथमः-सम्यक्त्वाप्तिलक्षणपूर्वभवादिगोचरोऽनुयोगो मूलप्रथमानुयोगः, तथा चाह-‘मूलपदमाणुयोगे ण’मित्यादि, सूत्रसिद्धं यावत् ‘से तं मूलपदमाणुयोगे ’ । ‘से किं त’मित्यादि, इहैकवक्तव्यतार्थाधिकारानुगता गण्डिका उच्यन्ते तासामनुयोगः-अर्थ-कथनविधिः गण्डिकानुयोगः, तथा चाह-‘गण्डियाणुयोगे ण’मित्यादि, तत्थ कुलगरगण्डियासु कुलगराणं विमलवाहणादीणं पुव्वज-म्मणामादि कहिज्जइ, एवं सेसासुवि अभिधानवसतो भावेयव्वं जाव चित्तंतरगण्डियाओ, चित्राः-अनेकार्थी अन्तरे-ऋषभाजिततीर्थ-करान्तरे गण्डिका-एकवक्तव्यताधिकारानुगताः, एतदुक्तं भवति-ऋषभाजिततीर्थकरान्तरे तद्वंशजभूपतीनां शेषगतिगमनव्युदासेन शिवगतिगमनानुत्तरोपपातप्राप्तिप्रतिपादिकाश्चित्रान्तरगण्डिका इति । एयासिं परूवणे पुव्वायरिण्हिं इमो विही दिट्ठो— आदिच्चजसाईणं उसमस्स पउप्पए णरवतीणं । सगरसुताण सुबुद्धी इणमो संखं परिकहेइ ॥१॥ चोइस लक्खा सिद्धा णिव-तीणिको य होति सव्वट्ठे । एकिकट्ठाणे पुण पुरिसजुगा होंत्तज्जंखेज्जा ॥२॥ पुणरवि चोइसलक्खा सिद्धा णिवतीण दोभि सव्वट्ठे । गण्डिकानु- योगे चित्रान्तर- गण्डिकाः ॥१०९॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [५७] / गाथा ॥८२-८४॥	
प्रत सूत्रांक [५७] गाथा ॥८२- ८४॥ दीप अनुक्रम [१५०- १५४]	नन्दी- हारिभद्रोय वृत्ती ॥११०॥ दुग्गठाणेवि असंखा पुरिसजुगा होंति णायव्वा ॥ ३ ॥ जाव य लक्खा चोइस सिद्धा पन्नास होंति सव्वट्ठे । पन्नासट्ठाणेऽवि तु पुरिसजुगा होंतिऽसंखेज्जा ॥ ४ ॥ एगुत्तरा उ ठाणा सव्वट्ठाणे य जाव पन्नासा । एवेकेकगठाणे पुरिसजुगा होंतऽसंखेज्जा ॥ ५ ॥ विवरीयं सव्वट्ठे चोइसलक्खा उ णिवुत्तो एगो । सच्चेव य परिवाडी पन्नासं जाव सिद्धीए ॥ ६ ॥ तेणं परं तु लक्खा दो दो ठाणा य समग वच्चंति । सिवगतिसव्वट्ठेहिं इणमो तेसिं विही होइ ॥ ७ ॥ दो लक्खा सिद्धीए दो लक्खा नरवतीण सव्वट्ठे । एवं तिलक्ख चउपंच जाव लक्खा असंखेज्जा ॥ ८ ॥ सिवगतिसव्वट्ठेहिं चित्ततरगंडिया ततो चउरो । एगा एगुत्तरिया एगादि- बिउत्तरा वितिया ॥ ९ ॥ ततिएगादितिउत्तरा तिगमादिबिउत्तरा चउत्थेयं । पढमाए सिद्धिको दोन्नि य सव्वट्ठसिद्धिम्मि ॥ १० ॥ तचो तिन्नि नरिंदा सिद्धा चत्तारि होंति सव्वट्ठे । इय जाव असंखेज्जा सिवगतिसव्वट्ठसिद्धेहिं ॥ ११ ॥ ताहे बिउत्तराए सिद्धिको तिन्नि होंति सव्वट्ठे । एवं पंच य सत्त य जाव असंखेज्ज दोन्निचि ॥ १२ ॥ एग चउ सत्त दसगं जाव असंखेज्ज होंति दोन्नि- च्चि । सिवगतिसव्वट्ठेहिं तिउत्तराए मुणेयव्वा ॥ १३ ॥ ताहे-तियगाइ बिउत्तराए अउणत्तीसं तु तितग ठावेतुं । पढमे णत्थि क्खेवो सेसेसु इमो भवे खेवो ॥ १४ ॥ दुग पण णवगं तेरस सत्तरस दुवीस छच्च अट्ठव । बारस चोदस तह अट्ठवीस छव्वीस पणुवीसा ॥ १५ ॥ एकारस तेवीसा सीयाला सत्तरि सत्तहत्तरी तह य । इग दुग सत्तासीई एगुत्तरिमेव बावडी ॥ १६ ॥ अउणत्तरि चउवीसा छायाल सयं तहेव छव्वीसा । एए रासीक्खेवा तिगअंतंता जहाकमसो ॥ १७ ॥ सिवगतिसव्वट्ठेहिं दो दो ठाण विसमु- च्चरा णेया । जाउणतीसट्ठाणे उणतीसं पुण छवीसाए ॥ १८ ॥ विसमुत्तरा य पढमा एवमसंख विसमुत्तरा णेया । सव्वत्थवि अंतिल्लं अन्नाए आदिमं ठाणं ॥ १९ ॥ अउणत्तीसं वारे ठावेउं णत्थि पढमाए खेवो । सेसेसुऽडवीसाए सव्वत्थ दुगादिओ खेवो ॥ २० ॥ गंडिकानु- योगे चित्रान्तर- गंडिकाः ॥११०॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम
(४४)

[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

..... मूलं [५७] / गाथा ||८२-८४||

प्रत
सूत्रांक
[५७]
गाथा
||८२-
८४||

दीप
अनुक्रम
[१५०-
१५४]

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्तौ
॥१११॥

सिवगतिपदमादीए चितियाए तह य होति सव्वड्डे । ह्य एगंतरियाई सिवगइसव्वड्डुठाणाई ॥ २१ ॥ एवमसंखेज्जाओ चितंतर-
गंडियाओ नेयव्वा । जाव जियसत्तुराया अजियजिणपिया सड्डुप्पन्नो ॥ २२ ॥ एवं गाहाहि चितंतरगंडियाओ समत्ताओ । इमा
य एयासि ठवणा—

एत्तिया लक्खा सिद्धिगया
एत्तिया सव्वड्डु गया,

१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	५०	

एवं जाव असंखा पुरिसजुगा सिद्धा एसा पढमा, अओ परं

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	५०
१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४

सव्वड्डुपि गया एत्तिआ लक्खा
सिद्धा एत्तिया लक्खा ॥ एवंपि असंखेज्जा पुरिसजुगा सिद्धा,
एसा वीया, अओ परं

सव्वड्डेवि गया एत्तिया लक्खा,
सिद्धा एत्तिया लक्खा

२	३	४	५	६	७
२	३	४	५	६	७

एवं जाव असंखेज्जा आवलिया,

गंडिकाजु-
योगे
चित्रान्तर-
गंडिकाः

॥१११॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

..... मूलं [५७] / गाथा ॥८२-८४॥

प्रत
सूत्रांक
[५७]
गाथा
॥८२-
८४॥

दीप
अनुक्रम
[१५०-
१५४]

नन्दी-
हारिमद्रीय
वृत्तौ
॥११२॥

दुग्गाहएगुत्तरा दोवि गच्छन्ति

१	२	५	८	९
२	४	६	८	१०

આવલિયા દૂરગમણઓ પંચાસીદમે ઠાળે ચિહ્નિતિ તદ્દયા મેડિયા,

अतः परं चतस्रो गण्डिका एकात्तरिकादिकाः प्रदर्श्यन्ते-शिवगतौ सर्वार्थे च एवं असंख्येज्जा चित्ततरंगण्डिया, एनाइ एगुत्तरिया

१	५	९
३	७	११

बित्तिया

पठमा जेया, सिद्धा एत्तिथा सव्वट्ठे एत्तिथा चेव, एवं जाव असंखेज्जा, एगादिभिउत्तरा

चिचत्तर गण्डिया, सिद्धा एत्तिया सन्वहे एत्तिया चेव, एवं जाव असंखेज्जा चिचत्तरगण्डिया, एगादितुत्तरा

୧	୭	୧୩
୪	୧୦	୧୬

तइया तवश्चतुर्थी व्यादिका द्वयादिविषमोत्तरप्रक्षेपा एकोनत्रिंशत्त्रिदंकां संस्थाप्य निदर्शयते,

एतिया सव्वद्वे
शिवगतौ सिद्धा

३	८	१६	२५	११	१७	२९	१४	५०	८०	५	७४	७२	४९	२९
५	१२	२०	९	१५	३१	२८	२६	७३	४	९०	६५	२८	१०३	०

गंडिकानु-
योगे
चित्रान्तर
गंडिकाः

॥११२॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दिसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः)
..... मूलं [५७] / गाथा ||८२-८४||

प्रत सूत्रांक [५७] गाथा ८२- ८४ दीप अनुक्रम [१५०- १५४]	नन्दी- हरिभद्राचार्य वृत्तिः ११३ एचिया पुणोवि सिखगता सव्वडुसिद्धौ तु प्रश्नाशदादौ कृत्वा एकोनत्रिंशत् स्थानानि संस्थाप्य द्वादिप्रक्षेपकेन यावत् पश्चिमस्थाने एकाशीतिर्भवति २९ ३४ ४२ ५१ ३७ ४३ ५५ ४० ७६ १०६ ३१ १०० ९८ ७१ ५५ ३१ ३८ ४६ ३५ ४१ ५७ ५४ ५२ ९९ ३० ११६ ९१ ५३ १२५ ० एवं पुनः पुनः पञ्च- अनेन उत्तरा असंख्येयाश्चित्रान्तरग- ५५ ६० ६८ ७७ ६३ ७९ ८१ ६६ १०२ १३२ ५७ १२६ १२४ १०१ ८१ ५७ ५४ ७२ ६१ ६७ ८३ ८० ७८ १२५ ५६ १४२ ११७ ७९ १५५ ० ण्डिका मेया, सेसं गाहाणुसारेणं नेयव्वं जाव असंखेज्जा, शेषं निगदसिद्धं यावत् ‘से तं अणुओणे’ ‘से किं तं’मित्यादि ॥ चूडा इव चूडा, इह दृष्टिवादे परिकर्मसूत्रपूर्वानुयोगोक्तानुक्तार्थसंग्रहपरा ग्रन्थपद्धतयश्चूडा इति, एताश्चानां चतुर्णामेव पूर्वाणां भवन्ति, न शेषाणामिति, अत एवाह—‘आदिह्लाण’ मित्यादि, संख्याताः । सम्प्रति पूर्वा- णामियं यथासंख्यं “चउ बारसट्ठ दस या हवन्ति चूडा चउण्ह पुव्वाणं । एए य चूलवत्थु सव्वुवरिं किल पढिज्जन्ति ॥ १ ॥” शेषमानिगमनं सूत्रसिद्धमेव, नवरं ‘संखेज्जा वत्थु’ति पणुवीसुत्तराणि दो सयाणि, ‘संखेज्जा चूलवत्थु’ चि चउदीसं ॥ साम्म- तमोघतो द्वादशंगविषयमेव दर्शयन्नाह—	गंडिकालु- योमे चित्रान्तर- गंडिकाः ११३
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [५८] / गाथा [८५]		
प्रत सूत्रांक [५८] गाथा [८५] दीप अनुक्रम [१५५- १५७]	नन्दी- हारिभद्राय वृत्तिः [११४]	‘इच्छेय’ मित्यादि ॥ (५८-२४७) ॥ इत्येतस्मिन् द्वादशाङ्गे गणिपिटक इति पूर्ववत्, अनन्ता भावाः प्रज्ञप्ता इति योगः, तत्र भवन्तीति भावाः जीवादयः पदार्थाः, एते च जीवपुद्गलानन्तत्वात् अनन्ता इति, तथा अनन्ता अभावाः, सर्वभावानामेव पररूपेणासत्त्वात् त एवानन्ता अभावा इति. स्वपरसत्ताभावोभयोभ्याधीनत्वात् वस्तुतत्त्वस्य, तथाहि-जीवो जीवात्मना भावोऽजीवात्मना चाभावोऽन्यथाऽजीवत्वप्रसंगाद्, अत्र बहु वक्तव्यं तत्तु नोच्यते गमनिकामात्रत्वात् आरम्भस्य, अन्ये तु धर्मापेक्षया अनन्ता भावाः अनन्ता अभावाः प्रतिवस्त्वस्तित्वनास्तित्वाभ्यां प्रतिबद्धा इति व्याचक्षते, तथाऽनन्ता हेतवः, तत्र हिनोति-गमयति जिज्ञासितधर्मविशिष्टानर्थानिति हेतुः, ते चानन्ता वस्तुनोऽनन्तधर्मात्मकत्वात् तत्प्रतिबद्धधर्मविशिष्टवस्तुगमकत्वाच्च हेतोः, स्रत्रस्य चानन्तगमपर्यायात्मकत्वादिति. यथोक्तहेतुप्रतिपक्षतोऽनन्ता अहेतवः, तथाऽनन्तानि कारणानि मृत्पिण्डतन्त्वादीनि घटपटादिनिर्वर्तकानि. तथाऽनन्तान्यकारणानि, सर्वकारणानामेव कार्यान्तराकारणत्वात्, न हि मृत्पिण्डः पटं निर्वर्तयतीति, एवं भावाभावाः हेत्वहेतवः कारणाकारणानि, जीवाः प्राणिनस्तथा अजीवा-द्रव्यणुकादयः, तथा भव्याः-अनादिपारिणामिकभव्यभावयुक्ताः, एतेऽनन्ताः प्रज्ञप्ताः, तथा अभव्याः-अनादिपारिणामिकाभव्यभावयुक्ताः, एतेऽनन्ताः प्रज्ञप्ताः इति योगः, तथा सिद्धा अनन्ताः, तथा अनन्ता असिद्धाः प्रज्ञप्ता इति, इह भव्याभव्यानामानन्त्येऽभिहिते अनन्ता असिद्धा इति यत् पुनरभिधानं तत् सिद्धेभ्योऽनन्तगुणत्वख्यापनार्थमिति ॥ साम्प्रतं द्वादशांगविराधनाराधनानिष्पन्नं त्रैकालिकं फलमुपदर्शयन्नाह-‘इच्छेय’ मित्यादि, इत्येतद् द्वादशांगं गणिपिटकं अतीतकाले अनन्ता जीवा आज्ञया विराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं ‘अणुपरियर्द्धिसु’ चि अनुपरावृत्तिमन्त आसन्, इदं हि द्वादशांगं सूत्रार्थोभयभेदेन त्रिविधं, ततश्चाज्ञया-सूत्राज्ञयाऽभिनिवेशतोऽन्यथापाठादिलक्षणया विराध्य	चूलाः द्वादशांग- आराधना- विराधना- फलं [११४]
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः *** द्वादशांगे: आराधन-विराधनाया: फलम्		

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [५८] / गाथा [८५]
प्रत सूत्रांक [५८] गाथा [८५] दीप अनुक्रम [१५५- १५७]	नन्दी- हारिभद्राचार्य- वृत्तिः ॥११५॥ अतीतकाले अनन्ता जीवाश्चतुरन्तं संसारकान्तारं-नारकतिर्यङ्मरामरविधिध्वक्षजालदुस्तरं भवाटवीगहनमित्यर्थः, अनुपरावृत्ता- आसन् जमालिचत्, अर्थाज्ञया पुनरभिनिवेशतोऽन्यथाग्ररूपणादिलक्षणया गोष्ठामाहिलवत्, उभयाज्ञया पुनः पंचविधाचार परिज्ञानकरणोद्यतगुवादेशादिलक्षणया गुरुप्रत्यनीकद्रव्यलिङ्गधार्यनेकश्रमणवत्, अथवा द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षयाऽऽगमोक्तानुष्ठा- नमेवाज्ञा, एतद्विराधनयैवानुपरावृत्ता आसन्, उक्तं च-“सच्चाओवि गतीओ अविरहिया गाणदंसणधरेहि” इत्यादि, ‘इच्छेय’- मित्यादि, गतार्थमेव, नवरं ‘परित्ता जीवा’ इति संख्येया जीवाः, वर्त्तमानविशिष्टविराधकमनुष्यजीवानां संख्येयत्वात्, ‘अणुपरियट्टंति’ चि अनुपरावर्त्तन्ते, भ्रमन्तीत्यर्थः, ‘इच्छेत्’मित्यादि, इदमपि भावितार्थमेव, नवरं ‘अणुपरियट्टिस्संति’ चि अनुपरावर्त्तिष्यन्ते, पर्यटिष्यन्ति इत्यर्थः ॥ ‘इच्छेत्’ मित्यादि, इत्येतद् द्वादशांगं गणिपिटकं अतीतकालेऽनन्ता जीवा आराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं ‘वीतिवइंस्वि’ ति व्यतिक्रान्तवन्तश्चतुर्गतिकसंसारोल्लंघनेन मुक्तिमवाप्ता इत्यर्थः, ‘इच्छेय’ मित्यादि, गतार्थ नवरं ‘वीडिचपंति’ चि व्युत्क्रामन्ति, ‘इच्छेद्’ मित्यादि गतार्थमेव, नवरं ‘वितीवयिस्संति’ चि व्युत्क्रामिष्यन्ते, एतत्प्रभा- वात् सेत्स्यन्तीत्यर्थः । यदिदमनिष्टेतरभेदभिन्नं फलं प्रतिपादितमेतत् सदाऽवस्थायित्वे सति द्वादशांगस्योपजायत इत्यत आह- ‘इच्छेय’ मित्यादि, इत्येतद् द्वादशांगं गणिपिटकं न कदाचिन्नासीद् अनादित्वात्, न कदाचिन्न भवति सदैव भावात्, न कदाचि- न्न भविष्यति, अपर्यवसितत्वात्, किं तर्हि? ‘भुविं चे’ त्यादि, भुवत्वादेव निश्चतं, पश्चास्तिकायेषु लोकवचनवत्, नियतत्वादेव शा- श्वतं, समयावलिकादिषु कालवत्, शाश्वतत्वादेव वाचनादिप्रदानेऽप्यक्षयं, गंगासिन्धुप्रवाहेऽपि पौण्डरीकहृदवत्, अक्षयत्वादेवाव्ययं, मानुषोत्तराद् बहिःसमुद्रवत्, अव्ययत्वादेव स्वप्रमाणेऽवस्थितं, जम्बूद्वीपादिवत्, अवस्थितत्वादेव नित्यमाकाशवत्, साम्प्रतं दृष्टा- द्वादशांग्य- आराधना- विराधना- फलं ॥११५॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूल+वृत्तिः) मूलं [५८] / गाथा [८५-८७]	
प्रत सूत्रांक [५८] गाथा [८५- ८७] दीप अनुक्रम [१५८- १६०]	नन्दी- हारिमद्रूपीय वृत्तौ ॥११६॥ न्तमाह-‘से जहा णामे’त्यादि, तद्यथा नाम पंचास्तिकायाः-धर्मास्तिकायादयः न कदाचिन्नासन् न कदाचिन्न सन्ति न कदाचिन्न भविष्यन्ति, अभूवन् भवन्ति भविष्यन्ति च, ध्रुवा इत्यादि पूर्ववत्, ‘एवामेवे’ त्यादि निगमनं निगदसिद्धमेव । ‘से समासओ’ इत्यादि, तद् द्वादशांगं समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तं इत्यादि, प्रायो गतार्थमेव, नवरं द्रव्यतः श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सन् सर्वद्रव्याणि जानाति पश्यतीत्यत्राभिन्नदशपूर्वधरादिः श्रुतकेवली परिगृह्यते, तदारतो मज्जना, सा पुनर्मलविशेषतो ज्ञातव्येति, अत्राह-ननु पश्यतीति कथं?, सकलगोचरदर्शनायोगाद्, अत्रोच्यते, प्रज्ञापनायां श्रुतज्ञानपश्यतायाः प्रतिपादितत्वादनुत्तरविमानादीनां चालेख्यकरणात् सर्वथा चादृष्टस्यालेख्यकरणानुपपत्तेः, एवं क्षेत्रादिष्वपि भावनीयमिति, अन्ये तु न पश्यतीत्यभिदधति ॥ साम्प्रतं संग्रहमाथामाह— ‘अक्षर सन्नी’ त्यादि ॥(*८६-२४९)॥ इयं गतार्थैव, नवरं सप्ताप्येते सप्रतिपक्षाः, ते चैवं-अक्षरश्रुतमनक्षरश्रुतमित्यादि, इदं पुनः श्रुतज्ञानं सर्वातिशयरत्नसमुद्रकल्पं, तथा प्रायो गुर्वीयत्तत्वात् पराधीनं, अतो विनेयानुग्रहार्थं यो यथा चास्य लाभस्तथा दर्शयन्नाह— ‘आगम०’ गाथा॥(*८७-२८९)॥ आगमनमागमः, आह अभिविधिमर्यादार्थत्वात् अभिविधिना मर्यादया वा गमः-परिच्छेद आगमः, स च केवलमत्यवाधिलक्षणोऽपि भवति अतस्तद्व्यवच्छिन्न्यर्थमाह— शास्यतेऽनेनेति शास्त्रं-श्रुतं, आगमग्रहणं तु षष्टि-तन्नादिकुशास्त्रव्यवच्छेदार्थं, तेषामनागमत्वात्, सम्यक्परिच्छेदात्मकत्वाभावादित्यर्थः, शास्त्रतया च रूढत्वात्, तत आगम- श्रुतस्य- विषयःभेदा लाभश्च ॥११६॥	
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [५८...] / गाथा [८७-८९]		
प्रत सूत्रांक [५८] गाथा [८७- ८९] दीप अनुक्रम [१६०- १६२]	नन्दी- हारिभद्रा वृत्तौ ॥११७॥	आसौ शास्त्रं च आगमशास्त्रं तस्य ग्रहणमिति समासः, गृहीतिर्ग्रहणं, यद् बुद्धेर्गुणैर्विषयमाणलक्षणैः करणभूतैरष्टभिर्दृष्टं तद् भुवते श्रुतज्ञानस्य लाभः श्रुतज्ञानलाभस्तं तदेव ग्रहणं भुवते, के ?-पूर्वेषु विशारदा-विपश्चितो धीराः, व्रतानुपालने स्थिरा इत्यर्थः, अयं गाथार्थः ॥ बुद्धिगुणैरष्टभिरित्युक्तं ते चामी— ‘सुस्सूतसति०’ गाथा ॥(*८८-२४९)॥ विनययुक्तो गुरुमुखात् श्रोतुमिच्छति शुश्रूषते, पुनः पृच्छति प्रतिपृच्छति, तत् श्रुतमशंकितं करोतीति भावार्थः, पुनः कथितं सच्छृणोति, श्रुत्वा गृह्णाति, गृहीत्वा चेहते-पर्यालोचयति, किमिदमित्थमुतान्यथेति, च-शब्दः समुच्चयार्थः, अपिशब्दात् पर्यालोचयन् किञ्चित् स्वबुद्ध्याऽप्युत्प्रेक्षते, ततस्तदनन्तरमपोहते च, एवमेतद्यदादिष्टमाचार्येणेति, पुनस्तमर्थमागृहीतं धारयति करोति च सम्यक् तदुक्तमनुष्ठानमिति, तदुक्तानुष्ठानमपि च श्रुतप्राप्तिहेतुर्भवति, तदावरणक्षयोपशमादिनिमित्तत्वात्तस्येति, अथवा यद्यदाज्ञापयति गुरुस्तत् सम्यगनुग्रहं मन्यमानः श्रोतुमिच्छतीति, पूर्वसन्दिष्टश्च सर्वकार्याणि कुर्वन् पुनः पृच्छति प्रतिपृच्छति पुनरादिष्टः सन् सम्यक् शृणोति, शेषं पूर्ववत् ॥ बुद्धिगुणा व्याख्यातास्तत्र शुश्रूषतीत्युक्तं, इदानीं श्रवणविधिप्रतिपादनायाह— ‘मूअं०’ गाथा ॥(*८९-२४९)॥ मूकमिति मूकं शृणुयात्, एतदुक्तं भवति—प्रथमश्रवणे संयतगात्रस्तूष्णीं खल्वासीत्, तथा द्वितीये हुंकारं च, ईषद्वन्दनं कुर्यादित्यर्थः, तृतीये बाढकारं कुर्यात्-बाढमेवमेतन्नान्यथेति, चतुर्थश्रवणे गृहीतपूर्वापरसूत्राभिप्रायो मनाक् प्रतिपृच्छां कुर्यात्, कथमेतादिति, पंचमे तु मीमांसां कुर्यात्, मातुमिच्छा मीमांसा ग्रंमाणजिज्ञासेतियावत्, ततः षष्ठे	बुद्धिगुणाः श्रवण- विधिः ॥११७॥
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः			

आगम (४४)	[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [५९] / गाथा [९०]		
प्रत सूत्रांक [५९] गाथा [९०] दीप अनुक्रम [१६२- १६३]	नन्दी- हारिभद्राया वृत्तिः [११८] 	श्रवणे तदुत्तरोत्तरगुणप्रसंगपारगमनं चास्य भवति, परिनिष्ठा सप्तमे श्रवणे भवति, एतदुक्तं भवति-गुरुवदनुभाषत एव सप्तमे श्रवणे इति ॥ एवं तावत् श्रवणविधिरुक्तः, इदानीं व्याख्यानविधिमभिधित्सुराह— ‘सुत्तत्थो’ गाथा ॥(५९-२४९)॥ सूत्रार्थमात्रप्रतिपादनपरः सूत्रार्थः, अनुयोग इति गम्यते, खलुशब्दस्त्वेवकारार्थः, स चावधारणे, एतदुक्तं भवति-गुरुणा सूत्रार्थमात्राभिधानलक्षण एव प्रथमोऽनुयोगः कार्यः, मा भूत् प्राथमिकविनेयानां मतिमोहः, द्वितीयोऽनुयोगः सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिमिश्रः कार्य इत्येवंभूतो भणितो जिनैश्चतुर्दशपूर्वधैर्यैश्च, तृतीयश्च निरवशेषः, प्रसक्तानुप्रसक्तमप्युच्येत एवंलक्षणो निस्त्वशेषः कार्य इति ‘एष’ उक्तलक्षणो विधानं विधिः प्रकार इत्यर्थो ‘भणितः’ प्रतिपादितो जिनादिभिः, क्व ? सूत्रस्य निजेनाभिधेयेन सार्धमनुकूलो योगोऽनुयोगः सूत्रान्वाख्यानमित्यर्थः, तस्मिन्ननुयोग इति गाथार्थः, आह-परिनिष्ठा सप्तम इत्युक्तं, त्रयश्चानुयोगप्रकाराः, तदेतत् कथमिति, अत्रोच्यते, विनेयमणं विज्ञाय त्रयाणामन्यतमप्रकारेण सप्तवारकरणादविरोधादित्योषविनेयविषयं तावत् सूत्रं, न पुनः स एव नियमविधिः, उद्धृष्टतज्जविनेयानां सकृत् श्रवण एवाशेषग्रहणदर्शनादलं विस्तरेण ॥ ‘सित’मित्यादि ॥(५९-२५९)॥ तदेतत् श्रुतज्ञानमिति निगमनं, ‘सित’मित्यादि, तत् परोक्षमिति निगमनमेव। नन्वध्य- नविवरणं समाप्तम् ॥ यदिहोत्सन्नमज्ञानाद् , व्याख्यातं तद् बहुश्रतैः । क्षन्तव्यं कस्य सम्मोहश्छन्नस्थस्य न जायते ? ॥ १ ॥ नन्वध्ययनविवरणं कृत्वा यदवाप्तमिह मया पुण्यम् । तेन खलु जीवलोको लभतां जिनशासने नन्दीम् ॥ २ ॥ कृतिः सिताम्बराचार्यजिनभट्टपादसेवकस्याचार्यश्रीहरिभद्रस्येति । नमः श्रुतदेवतायै भगवत्यै । समाप्ता नन्दिटीका ॥ ग्रन्थाग्रं २३३६ ॥	श्रवणव्या- ख्यान विधिः उपसंहारश्च [११८]
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः मुनिश्री दीपरत्नसागरेण पुनः संपादितः (आगमसूत्र ४४) “नन्दीसूत्र” (हारिभद्रिया-वृत्तिः) परिसमाप्तं		

नमो नमो निम्मलदंसणस्स
पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरुभ्यो नमः

भाग-7

पूज्य आगमोधधारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधितः संपादितश्च
“नन्दी-चूलिकासूत्र” [हरिभद्रसूरिजी-रचिता वृत्तिः]

(किंचित् वैशिष्ट्यं समर्पितेन सह)
मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलितः
“नन्दीसूत्र” मूलं एवं वृत्तिः” नामेण परिसमाप्तः

‘संवृत्तिक-आगम-सूत्राणि-2’ श्रेणि, भाग-7

अत्र नन्दीसूत्रं परिसमाप्तं

अथ अनुयोगद्वारं आरभ्यते

[४५] श्री अनुयोगद्वार सूत्रम्

नमो नमो निम्मलदसणस्स
पूज्य श्रीआनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरुभ्यो नमः

“अनुयोगद्वार” मूलं एवं वृत्तिः
[हरिभद्रसूरिजी रचिता वृत्तिः]

[आद्य संपादकः - पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनन्दसागर सूरेश्वरजी म. सा.]
(किञ्चित् वैशिष्ट्यं सम्मितेन सह)

पुनः संकलनकर्ता → **मुनि दीपरत्नसागर** (M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५

संवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि-२-श्रेणी भाग-7

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा [-]
प्रत सूत्रांक [-] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [-]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनुयोगद्वाराणां श्रीहरिभद्राचार्यकृता वृत्तिः प्रसिद्धताकारिणी—रतलाम श्रीऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेतांबरसंस्था. कालीयावाडीवास्तव्यश्रेष्ठिरायचंद्रदुर्लभदासभगनलालनेमचन्द्राभ्यां, श्रीमद्विजयकमलसूरिकृतोपदेशात् दत्तसाहाय्येन. मुद्रणकृत—इन्दौर पीपलीबजार श्रीजैनबन्धुयन्त्रालयाधिपः शाः जुहारमल मिश्रीलाल पालरेचा. वीर संवत् २४५४ विक्रम संवत् १९८४ काइस्ट १९२८ प्रतयः ५०० पृथं २-०-०
	*** ‘अनुयोगद्वार’ हरिभद्रिया-वृत्ते: मूल टाईटल-पृष्ठ

[अनुयोगद्वार- मूलं एवं वृत्तिः] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले “अनुयोगद्वार सूत्र” के नामसे सन १९२८ (विक्रम संवत् १९८४) में ऋषभदेवजी केशरिमलजी श्वेताम्बर संस्था द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब । ये वृत्ति एक छोटी वृत्ति है, इस के अलावा श्री मल्लधारी हेमचन्द्राचार्यजी की रचित एक बड़ी वृत्ति भी है, जो हमारी ‘आगम-सुत्ताणि-सटीक’ श्रेणिमें हमने मुद्रित करवाई है । इस के अलावा ‘अनुयोगद्वार चूर्णि’ भी है, जो हमारे चूर्णि-साहित्य के प्रकाशनोमें प्रकाशित हुई है ।

✦ हमारा ये प्रयास क्यों? ✦ आगम की सेवा करने के हमें तो बहुत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमें १२५०० से ज्यादा पृष्ठोंमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्यश्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरूप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमें बीचमें पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमें आगम का नाम, फिर सूत्र आदि के नंबर लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा सूत्र आदि चल रहे है उसका सरलतासे ज्ञान हो सके । बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ ‘दीप अनुक्रम’ भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर सके ।

✦ हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढ़ते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए हैं, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए हैं और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची या ‘गाथा’ शब्द लिखा है। हर पृष्ठ के नीचे विशिष्ट फूटनोट दी है ।

✦ शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री ----- की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये ‘संवृत्तिक_आगम_सूत्राणि_२_भाग-७ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते हैं ।

..मुनि दीपरत्नसागर.....

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१] / गाथा [-]
प्रत सूत्रांक [१] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः हरिभद्राचार्यकृता अनुयोगद्वारटीका. जेनवरेन्द्रं त्रिदशेन्द्रनेन्द्रपूजितं वीरम् । अनुयोगद्वाराणां प्रकटार्थां विवृतिमाभिधास्ये ॥ १ ॥ प्रकान्तोऽयमहं- दप्राप्तिहेतुस्वाच्छेयोभूतो वर्त्तते, श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति, तथा चोक्तम्-“श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ती” त्यादि विघ्नविनायोपशान्तये मङ्गलाधिकारे नन्दिः प्रतिपादितः, साम्प्रतमनुयोगद्वाराध्ययनमारभ्यते, अथास्यानुयोग- इति, उच्यते, इहाहं चैतानुयोगस्य मकान्तत्वात्तस्य चानुयोगद्वारमन्तरेण प्रतिपादयितुमशक्यत्वादनुयोगद्वाराणां च साकल्यताऽपि प्रायः प्रत्यध्ययनमुपयोगित्वान्नन्वध्ययनमप्युक्त्या न समनन्तरमेवानुयोगद्वाराध्ययनावकाश इत्यमभिसंबंधः, तदनेन सम्बन्धेनाऽ- ऽयातमिदमनुयोगद्वाराध्ययनं, अस्य चाध्ययनान्तरत्वात् साकल्यतोऽपि प्रायः सकलाध्ययनक्यापकत्वान्महार्थत्वाच्चादावेव मङ्गलशब्दभिधान- पूर्वकमुपन्यासमुपदर्शयता ग्रन्थकारेणेदमभ्यधायि ‘णाणं पंचविहं पण्णत्त’ मित्यादि, (१-१) अत्राह-इह मङ्गलाधिकारे नन्दिः प्रतिपादित एव, ततश्चानर्थक एव अस्य सूत्रस्योपन्यास इति, अत्रोच्यते, नैतदेवं, अस्याक्षेपस्य चाध्ययनान्तरत्वादित्यादिनैवानवकाशत्वात्, अनियमप्रदर्शनार्थत्वाच्च तथाहि-नायं नियमो नन्वध्ययनानुयोगमन्तरेणास्यानुयोगो न कर्त्तव्य इति, यदां यदा च क्रियत तदा सार्थक एव इति, यथोक्तोपन्यासस्तु प्राबोवृत्त्यपेक्षयाऽनवद्य एव, अन्ये तु व्याचक्षते-कश्चिदाचार्यं देशजातिपद्विंशद्गुणालंकृतं कश्चिद्विनेयः सवित्तयमुक्तवान्-भगवन् ! अनुयोगद्वार- प्ररूपणया मे क्रियतामनुग्रहः, ततस्तमस्रवाचार्यो योग्यमधिगम्य अव्यवच्छिन्नयेऽनुयोगद्वारप्ररूपणायां प्रवर्त्तमानो विघ्नविनायकोपशान्तये नन्दी व्याख्याना नियमः उद्देशादि विधिः ॥ १ ॥
	*** ज्ञानस्य पंच-भेदानाम् उल्लेखः

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२] / गाथा [-]
प्रत सूत्रांक [२] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ २ ॥ भावसङ्गलाधिकारे इहमुपबन्धस्तवान्-‘णाण’ मित्यादि, अस्य सूत्रस्य समुदायार्थोऽवयवार्थश्च नन्वभ्ययनटीकायां प्रपञ्चतः प्रतिपादित एवेति नेह प्रतिपाद्यव इति । ‘तत्स्थ’ इत्यादि, (२-३) तत्र-तस्मिन् ज्ञानपञ्चके चत्वारि ज्ञानानि-मत्यवधिमतःपर्यायकेवलान्यानि, किं ? व्यवहारनयाभिप्रायतः साक्षादसंव्यवहार्यत्वात्स्थाप्यानीव स्थाप्यानि, यतश्चैवमतः स्थापनीयानि, तिष्ठतु तावत् न तैरिहाधिकारः, अथवा स्वरूपप्रतिपादनेऽप्यसमर्थत्वात्स्थाप्यानि, इह चानुयोगद्वारप्रक्रमेऽनुपयोगित्वात्स्थापनीयानि, अथवा स्थाप्यानि सांन्यासिकानि, न तेनामिहानुयोगः, पुनर्विवृणोति-स्थापनीयानीत्यर्थः, यतश्चैवमतः ‘नो उद्दिश्यन्ती’ त्यादि, नो उद्दिश्यन्ते नो समुद्दिश्यन्ते नो अनुज्ञायन्ते, तत्र त्वय्येवमभ्ययनं पठितव्यमित्युद्देशः १ तदेवाहीनादिलक्षणोपेतं पठित्वा गुरोर्निवेदयति, तत्रैवंविधं स्थिरपरिचितं कुर्विति समनुज्ञा समुद्देशः २ तथा कृत्वा गुरोर्निवेदिते ग्रन्थधारणं शिष्याध्यापनं च कुर्विति अनुज्ञा ३ ‘सुयणाणस्ते’ त्यादि, इह श्रुतज्ञानस्य स्वपरप्रकाशकत्वाद् गुर्वादिशयत्तत्वाच्च किन्तुद्देशः समुद्देशः अनुज्ञा अनुयोगश्च प्रवर्तत इति, संक्षेपेणोद्देशादीनामर्थः कथित एव । अधुना शिष्यजनानुप्रहार्यं विस्तरेण कथ्यते-तस्य आचारादिर्भगस्स उत्तरउक्तयणादिकालियसुयस्वधस्स य उववाइयादिउक्तालियवराज्जयणस्स य इमो उद्देशणविही, पुण्वं सज्झायं पट्टवेत्ता ततो सुयगाही विण्णत्तिं करेइ-इच्छाकारेण भुगं मे सुयमुद्दिह, ततो गुरु इच्छामोत्ति भणति, ततो सुयगाही वंदणयं देइ, पढमं १, ततो गुरु उट्ठिचा चेइए वंदइ, ततो वंदियपरुत्तुट्ठियसुयगाही वामपासे ठवेत्ता जोगुक्खेवुस्सगं सगवीसुस्सासकालियं करेइ, ततो उस्सरित-कट्ठितचडवीसत्थओ तहट्ठिओ चेव पंचनमोक्कारं तिण्णि वारं उक्कारेत्ता ‘णाणं पंचविहं पण्णत्त’ मित्यादि उद्देशनन्दीं कट्ठइ, तीसे य अत्ते भणादि-इमं पुण पट्टवणं पडुव इमस्स साधुस्स इमं अंगं सुयस्वधं अज्झयणं वा उद्दिस्सामि, अहंकारवज्जणत्थं भण्णदि-खमास-मण्णत्थं इत्थेणं सुत्तेणं अत्थेणं तदुभयं च उद्दिहं, नंतरं सीसो इच्छामोत्ति भणित्ता वंदणं देइ, वितियं, ततो उट्ठितो भणादि-संदिहइ किं नन्दी व्याख्याना नियमः उद्देशादि विधिः ॥ २ ॥
	*** सूत्राणां उद्देशादि-विधिः

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२] / गाथा [-]
प्रत सूत्रांक [२] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ३ ॥ अणामो १, ततो गुरु भणादि-वंदित्ता पवेयसुत्ति, ततो सीसो इच्छामोत्ति भणित्ता वंदणं देइ, तइयं, सीसो पुण उट्ठितो भणादि-सुम्हेहिं मे अमुगं सुयसुत्तिं इच्छामि अणुसट्ठिं, ततो गुरु भणति-जोगं करेहिं, एवं संदिट्ठो इच्छामोत्ति भणित्ता वंदणं देइ चउत्थयं, एत्थंतरे णमोकार-परो गुरुं पदक्खिणेइ, पदक्खिणित्ता पुरओ ठिच्चा भणादि-सुम्हेहिं मे अमुगं सुयसुत्तिं, ततो गुरुणा जोगं करेहिं संदिट्ठो तओ इच्छामोत्ति भणित्ता वंदित्ता य पदक्खिणं करेइ, एवं तइयवारंपि, एते य ततोऽपि वंदणा एकं वेव वंदणट्ठानं, तइयपदक्खिणंते य गुरुस्स पुरओ चिट्ठइ, ताहे गुरु निसीदति, निसण्णयस्स य गुरुणो पुरओ अट्ठावणयकाओ भणति-नुब्भं पवेदितं संदिसह साहूणं पवेदामि-सि, ततो गुरु भणाति-पवेदिहिं, ततो इच्छामोत्ति भणित्ता पंचमं वंदणं देइ, वंदियपच्छुट्ठितो य कयपंचणमोकारो छट्ठं वंदणं देइ, पुणो य वंदियपच्छुट्ठितो तुब्भं पवेदितं साहूणं पवेदितं संदिसह करेमि उस्सगं, ततोणं गुरु भणति-करेहि, ताहे वंदणं देइ सत्तमं । एते च सुतपच्छया सत्त वंदणगा । ततो वंदियपच्छुट्ठितो भणति-अमुगस्स सुयस्स उदिसावणं करेमि उस्सगं अत्थ उस्सिएणं जाव वोसि-सामित्ति, ततो सत्तावीसुस्सासकालं ठिच्चा लोगस्स उज्जोअगरं चित्तिता उस्सारित्ता भणादि-णमो अरहंताणंति, लोयस्सउज्जोअगरं कट्ठित्ता सुयसमत्तउदेसकिरियत्तणओ अत्थे फेहावंदणं देइ, अं पुण वंदणं वेति तं न सुतपच्छतं, गुरुवकारित्ति विणयपडिबत्तिओ अट्ठमं वंदणं देति । एवं अंगादिसुं समुदेसेऽपि, णवरं पवेदिते गुरु भणति-थिरपरिजितं करेहिं, णंदी य ण कट्ठिज्जति, जोगुक्खेवुस्सगो य ण कीरइ, ण य पदक्खिणं तओ वारे करिज्जति, जेण गिसण्णो गुरु समुदिसति, एवं अंगादिसुं अणुण्णाए जहा उदेसे तहा सत्तं कज्जति, णवरं पवेदिते गुरु भणति-सम्भं धारय अण्णेहिं च पवेयसुत्ति, जोगुक्खेवुस्सगो ण य भवति, एवं आवस्सगादिसुं पइण्णगेसु य तंदुलवेयालियादिसुं एसेव विही, णवरं सज्झाओ ण पट्ठविज्जइ, जोगुक्खेवुस्सगो ण कीरइ, एवं सामादियादिसुं अज्झयणेसु उदेसएसु य उदिसमाणेसु चिइवंदणपद- उद्देशादि विधिः ॥ ३ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२] / गाथा [-]
प्रत सूत्रांक [२] गाथा ॥-॥ दीप अनुक्रम [२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्री अनु- हारिवृत्तौ ॥ ४ ॥ विस्वणादिविसेसकिरियावज्जिया सत्त चेव वंदणगा पुण्वकम्मेणेव भवन्ति, जया पुण अणुओगो अणुण्णाविज्जति तदा इमो विही-पसत्थेसु तिहीकरणमुहुत्तणक्खत्तेसु पसत्थे य खेत्ते जिणाययणादौ भूमो पमज्जित्ता दो णिसिज्जाओ कीरन्ति, एक्का गुरुणो वित्तिया अक्खणन्ति, तओ चरिमकाले पवेदिते णिसज्जाए णिमण्णा गुरू अहज्जाउवगरणोड्डिओ सीसो ततो दोव्वे ते गुरू सीसो य सुहपोच्चियं पडिलेहिन्ति, तओ सीसो बारसावत्तगं वंदणगं दाउं भणति-संदिसह सज्जायं पट्टवेमि, तओ दुययावि सज्जायं पट्टवेति, तओ पट्टविते गुरू णिसीदति, ततो सीसो बारसा-वत्तेण वंदति, ततो दोवि उट्टेत्ता अणुओगं पट्टवेति, ततो पट्टविते गुरू णिसीदति, ततो सीसो बारसावत्तेण वंदति, वंदिते गुरुणा अक्खामंतणे कत्ते गुरू निसेज्जाओ उट्टेति, ततो निसेज्जं पुरओ काउं अधीयसुयं सीसं वामपासे ठवेत्ता चेतिए वंदति, समत्ते चेइयवंदणे गुरू ठितो चेव णमोक्कारं कट्ठित्ता णंदि कट्ठति, तीसे य अन्ते भणति-इमस्स साहुस्स अणुओगं अणुजाणामि खम्मसमण्णाणं हत्थेणं दव्वगुणपज्जवेहिं अणुण्णाओ, ततो सीसो वंदणगं देइ, उट्टितो भणति-संदिसह किं भणामो?, तओ गुरू भणति-वंदणं दाउं पवेदेह, ततो वंदति, वंदित्ता उट्टितो भणति तुव्वेहिं मे अणुओगो अणुण्णाओ, इच्छामो अणुसट्ठि, ततो गुरू भणति-सम्मं धारय अण्णेसिं च पवेदय, ततो वंदति, वंदित्ता गुरू पदक्खिणेति, एवं ततो वारे, ताहे गुरू निसेज्जाए णिसीयति, ताहे सीसो पुरओ ठितो भणति-तुव्वं पवेदितं संदिसह साहुणं पवेदयामि, एवं शेषं प्राग्वत् । ततो उस्सग्गस्संते वंदित्ता सीसो गुशं सह निसेज्जाए पदक्खिणीकरेति, वंदेइ य, एवं ततो वारा, ताहे उट्टेत्ता गुरूस्स दाहिणभुया-सण्णे णिसीदति, ततो से गुरू गुरुपरंपरागए मंतपए कहेति ततो वारा, ततो वण्णुत्तियातो ततो अक्खमुट्ठीतो गंधसहियातो देति, ताहे गुरू निसेज्जाओ उट्टेइ, सीसो तत्थ निसीदति, ताहे सह गुरुणा अहासणिहाता साहु वंदणं देति, ताहे सोऽवि निसेज्जाठिओ अणुओगी ‘णणं पंचविहं पण्णत्त’ मित्यादि सुत्तं कट्ठति, कट्ठित्ता जहासत्तिं वक्खानं करेति, वक्खाने य कत्ते साहुणं वंदणं देति, ताहे सो उट्टेइ, णिमे- उद्देशादि विधिः ॥ ४ ॥

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [७-९] / गाथा [१]
प्रत सूत्रांक [७-९] गाथा ॥१॥ दीप अनुक्रम [७-१०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ६ ॥ इहाधिकृतानुयोगविषयीकृतशास्त्रनाम आवश्यकश्रुतस्मृतिध्यायनानि, नाम च यथार्थादिभेदात् त्रिविधं, तद्यथा-यथार्थमयथार्थमर्थशून्यं च, तत्र यथार्थं प्रदीपादि अयथार्थं पलाशादि अर्थशून्यं वित्यादि, तत्र यथार्थं शास्त्राभिधानमिष्यते, तत्रैव समुदायार्थपरिसमाप्तेः, यत एवमतस्तन्निरूपयन्नाह-‘तस्मा आवस्सयं’ इत्यादि, (७-१०) तस्मादावश्यकं निक्षेपस्यामीत्यादि उपन्याससूत्रं प्रकटार्थमेव, चोदकस्त्वाह-‘खंधो नियमज्ज्ञयणा अज्ज्ञयणावि य ण खंधवहरिणा । तस्मा ण दोवि गेज्झा अण्णतरं गेण्ह चोदेति ॥ १ ॥’ आचार्यस्त्वाह-‘खंधोत्ति सत्थनामं तस्स य सत्थस्स भेद अज्ज्ञयणा । फुड भिण्णत्था एवं दोण्ह गेहे भणति तो सूरि ॥ १ ॥’ साम्प्रतं यदुक्तं ‘आवश्यकं निक्षेपस्यामी’ त्यादि, तत्र जघन्यतो निक्षेपभेदनियमनायाह-‘जत्थ’ गाहा (१-१०) व्याख्या-यत्र जीवादौ वस्तुनि यं जानीयात्, कं ?-निक्षेपं, न्यासमित्यर्थः, यत्तदोर्नित्याभिसंबंधात् तन्निक्षेपेत् निरवशेषं-समग्रं, यत्रापि च न जानीयात्समग्रं निक्षेपजालं ‘चतुष्कं’ नामादि भावान्तं निक्षेपेत् तत्र, यस्माद् व्यापकं नामादिचतुष्टयमिति गार्थार्थः। ‘से किं त’ मित्यादि (८-१०) प्रश्नसूत्रं, अत्र ‘से’ शब्दो मागधदेशीप्रसिद्धः अथशब्दार्थे वर्त्तते, अथ-शब्दश्च वाक्योपन्यासार्थः- तथा चोक्तं ‘अथ प्रक्रियाप्रश्नानन्तर्यमङ्गलोपन्यासार्थप्रतिवचनसमुच्चयेषु, किमिति परिप्रश्ने, तदिति सर्वनाम पूर्वप्रक्रान्तावमर्शि, अतोऽयं समुदायार्थः-अथ किं तदावश्यकं ? , एवं प्रश्ने सति आचार्यः शिष्यवचनानुरोधेनादराधानार्थं प्रत्युच्चार्य निर्दिशति-अवश्यकत्तव्यमावश्यकं, अथवा गुणानामावश्यमात्मानं करोतीत्यावश्यकं यथा अंतं करोतीत्यंतकः, प्राकृतशैल्या वा ‘वस निवास’ इति गुणशून्यमात्मानमावासायति गुणैरित्यावासकं, चतुर्विधं प्रज्ञप्तं-चतस्रो विधा अस्थेति चतुर्विधं प्रज्ञप्तं-प्ररूपितं अर्थतस्तीर्थकृद्भिः सूत्रतो गणधरैः, तद्यथा-नामावश्यकमित्यादि, ‘से किं त’ मित्यादि (९-११) तत्र नाम अभिधानं नाम च तदावश्यकं च नामावश्यकं, आवश्यकमभिधानमित्यर्थः, इह नाम्न इदं लक्षणं ‘यद्वस्तुतोऽभिधानं स्थितमन्यार्थे तदर्थनिरपेक्षम् । पर्यायानभिधेयं च नाम यादृच्छिकं च तथा ॥ १ ॥ यस्य वस्तुनः ‘ण’मिति आवश्यक- निक्षेपाः ॥ ६ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०] / गाथा [१...]
प्रत सूत्रांक [१०] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [११]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ७ ॥ वाक्यालङ्कारे जीवस्य वा यावत्तदुभयानां चावश्यकमिति नाम क्रियते 'सेत्त' मित्यादि, तदेतन्नामावश्यकमिति समुदायार्थः, अवयवार्थ- स्वयं-‘आवस्सयंति नामं कोई कासति जहिच्छिन्ना कुण्ति । दीसइ लोए एवं जह साहिग देवत्ताथी ॥ १ ॥ अज्जीवेसुवि केसुवि आवासं भणति एगद्वं तु । जह अस्सित्तदुममिणं भणति सप्पस्स आवासं ॥ २ ॥ जीवाण बहूण जहा भणति अगणिं तु मूसगावासं । अज्जीवा- विहु बहवो जह आवासं तु सउणिस्स ॥ ३ ॥ उभयं जीवाजीवा तण्णिप्फणं भणति आवासं । जह राईणावासं देवावासं विमाणं वा ॥ ४ ॥ समुदाएणुभयाणं कप्पावासं भणति इदस्स । नगरनिवासावासं गामावासं च इच्चदि ॥ ५ ॥ ‘से किं’ तमित्यादि (१०-१२) तत्र स्थाप्यत इति स्थापना स्थापना चावश्यकं चेति स्थापनावश्यकं, आवश्यकवतः स्थापनेत्यर्थः, स्थापनालक्षणं चेदं-‘यत्तु तदर्थवियुक्तं तदभिप्रायेण यच्च तत्करणः। लेप्यादि कर्म तत्स्थापनेति क्रियतेऽल्पकालं च ॥ १ ॥, यत् ‘ण’ मिति वाक्यालङ्कारे काष्ठकर्मणि वा यावदावश्यकमिति स्थापना स्थाप्यते, ‘सेत्त’ मित्यादि, तदेतत्स्थापनाऽऽवश्यकमिति समुदायार्थः, अवयवार्थस्वयं-‘आवस्सयं करेन्तो ठवणाए जं ठविज्जए साह । तं तह ठवणा- वासं भणति साहेज्जिमेहिं तु ॥ १ ॥’ काष्ठ कर्म काष्ठकर्म तच्च कुट्टिमं तस्मिन्, चित्रकर्म प्रतीतं, पुस्तकर्म धीवल्लिकादि वस्त्रपल्लव- समुत्थं वा संपुटकं मध्यवर्तिकालेख्यं वा पत्रच्छेदनिष्फणं वा, उक्तं च-‘धीवल्लिकादि वेल्लियकम्मदिनिव्वत्तियं च जाणाहि । संपुडगवात्ति- लिहियं पत्तच्छेज्जे य पोत्थंति ॥ १ ॥’ लेप्यकर्म प्रतीतं, ग्रन्थिसमुदायजं पुष्पमालावत् जालिकावद्वा, निर्वर्तयन्ति च केचिदतिशयनेपुण्या- न्वितास्तत्राप्यावश्यकवन्तं साधुमित्येवं वेष्टिमादिष्वपि भावनीयं, तत्र वेष्टिमं वेष्टनकसंभवमानन्दपुरे पूरकवत्, कलाकुशलभावतो वा काश्चिद् वस्त्रवेष्टनेन चावश्यकक्रियायुक्तं यतिमवस्थापयति पुरिमं-भरिमं सगर्भरीतिकदिभृतप्रतिमादिवत्, संघातिमं कंचुकवत्, अक्षः-चन्दनकः बराटकः-कपर्दकः, एतेषु एको वा आवश्यकक्रियावान् अनेके वा तद्वतः सद्भावस्थापनाया वा असद्भावस्थापनया वा, तत्र तदाकारवती सद्भाव- आवश्यक- निक्षेपाः ॥ ७ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [११-१३] / गाथा [१....]
प्रत सूत्रांक [११-१३] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [१२-१४]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ८ ॥ स्थापना अतदाकारवती चासद्भावस्थापनेति, उक्तं च-“अकले वराहए वा कट्टे पोत्ये व चित्तकम्मे वा । सवभाबमसम्भावं ठवणाकायं वियाणाहि ॥ १ ॥ लेपगह्थी हत्थिचि एस सवभाविआ भवे ठवणा । होइ असम्भावे पुण हत्थिचि निराकिती अक्खो ॥ २ ॥’ आवश्यकमिति क्रियाक्रियावतोरभेदात्तद्वानत्र गृह्यते, स्थापना स्थाप्यते-स्थापना क्रियते ‘से त’ मित्यादि, तदेतत्स्थापनाऽऽवश्यकं । साम्प्रतं नामस्थापनयोरभेदांशकापोहोयं सूत्रं ‘नामठवणाण’ मित्यादि, (११-१५) कः प्रतिविशेषो नामस्थापनयोरिति समासार्थः । आक्षेपपरिहारलक्षणो विस्तरार्थस्त्वयं-‘भावरहितमिदं द्रव्यं नामठवणाओ दोवि अविसिद्धा । इतरेतरं पडुवा किह व विसेसो भवे तासि ? ॥ १ ॥ कालकतोऽथ विसेसो नामं ता धरति जाव तं द्रव्यं । ठवणा दुहा य इतरा यावकहा इतरा इणमो ॥ २ ॥ इह जो ठवणिदकओ अक्खो सो पुण ठविज्जए राया । एवित्तर आवकहा कलसादी जा विमाणेसु ॥ ३ ॥ अहव विसेसो भण्णति अभिधानं वत्थुणो गिरागारं । ठवणाओ आगारो सोवि य नामस्स गिरवेक्खो ॥ ४ ॥’ ‘से किं त’ मित्यादि, (१२-१४) तत्र द्रवति-गच्छति तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यं, द्रव्यं च तदावश्यकं च द्रव्यावश्यकं, भावावश्यककारणमित्यर्थः, द्रव्यलक्षणं चेदं-‘भूतस्य भावितो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके । तद्रव्यं तत्त्वज्ञैः सचेतनाचेतनं कथितम् ॥ १ ॥’ इह चावश्यकशब्देन प्रशस्तभावाधिष्ठिता देहादय एवोच्यन्ते, तद्विकलास्तु त एव द्रव्यावश्यकमिति, उक्तं च-“देहागमकिरियाओ द्वावासां भण्णति सव्वण्णू । भावाभावत्तणओ द्वावजितं भावरहितं वा ॥ १ ॥’ विवक्षया विवक्षितभाव-रहित एव देहो गृह्यते, जावो न सामान्यतो, भावशून्यत्वानुपपत्तेरलं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुतः, द्रव्यावश्यकं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-आगमतः-आगममाश्रित्य नोआगमतश्च, नोशब्दार्थः यथाऽवसरमेव वक्ष्यामः, चशब्दौ द्वयोरपि तुल्यपक्षतोद्भावनायौ । ‘से किं त’ मित्यादि, (१३-१४) आगमतो द्रव्यावश्यकं ‘जस्स ण’ मित्यादि, यस्य कस्यचित् ‘ण’ मिति वाक्यालङ्कारे आवश्यकमित्येतत्पदं, इह चाधिकृत- आवश्यक- निक्षेपाः ॥ ८ ॥
	*** आवश्यकस्य द्रव्य-निक्षेप अधिकारः

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [११-१३] / गाथा [१....]
प्रत सूत्रांक [११-१३] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [१२-१४]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ११ ॥ साइरेगट्टवासो जाओत्ति, ताहे रण्णा सयमेव लेहो लिहिओ जहाऽहीयतु कुमारो, कुमारस्स य मादीसव्वकीए रण्णा पासट्टियाए तत्थ पच्छण्णो बिन्दू पाडिओ, रण्णा अवाइय मुद्धिता उज्जेणी पेसिओ, वाइओ, वायगा पुच्छिया-किं लिहियं?, ते पेच्छंति कहिउं, ताहे कुमारेण सयमेव वाइओ, चितियं चऽणेण-अम्हं मोरियवंसियाणं अपडिहया आणाओ, कहमहं अप्पणो पिडणो आणं भंजामि?, तओ अणेण तत्तसला-गाए अच्छीणि अंजियाणि, ताहे रण्णा णायं, परितपित्ता उज्जेणी अण्णस्स कुमारस्स दिण्णा, तत्सवि कुमारस्स अण्णो गामो दिण्णो, अण्णया तस्स कुणालस्स अंधयस्स पुत्तो जाओ, णामं च से कयं संपती, सो अंधयो कुणालो गंधव्वे अतीवकुशलो, अण्णया य अण्णायो उज्जेणीए गायतो हिंडइ, तत्थ रण्णो निवेदियं जहा एरिसो सो गंधव्वि जो अंधलओत्ति, तओ रण्णा भणियं-आणेहत्ति, ताहे आणिओ जवणियं-तरिओ गायति, जाहे अतीव असोगो अक्खित्तो, ताहे मणति-किं ते देमि ?, तओ एत्थ कुणालेण गीतं-‘वंदगुत्तपवोत्तो उ, बिंदुसारस्स णत्तुओ । असोगसिरिणो पुत्तो, अंधो जायति कागिणि ॥ १ ॥ ताहे रण्णा पुच्छितं-को एस तुमं?, तेण कहितं-तुम्भं चेव पुत्तो, ततो जव-भियं अवसारेवं कंठे पवेत्तुं अनुपातो कओ, भणियं च-किं देमि ?, तेण भणियं-कागणि मे देहि, रण्णा भणियं-किं कागिणिए व तुमं करि-हिसि जं कागणि जायसि, ततो अमक्खेहिं भणियं-सामि! रायपुत्ताणं रज्जं कागणि मण्णति, रण्णा भणियं-किं तुमं काहिसि रज्जेण ?, कुणा-लेण भणियं-मम पुत्तो अत्थि संपतीणाम कुमारो, तओ से दिण्णं रज्जं, सो चेव उवणओ णवरमहियक्खरेणंति अभिलावो कायव्वो, अहवा भावाहिए लोकीयं इमं अक्खणयं-कामियसरस्स तीरे य वंजुलरुक्खो महतिमहालओ, तत्थ किर रुक्खे अवलंगिउं जो सरे पडति सो जइ तिरिक्खजोणिओ तो मणुस्सो होति, अह मणुस्सो पडति ततो देवो होति, अहो पुणो कीयं वारं पडति तो पुण सोचेव य होइ, तत्थ ऋणरो सपत्तिओ ओयरति पतिदिणं पाणितं पातुं, अण्णया पाणिवियणट्टाए आगतो संतो वंजुलरुक्खाओ मणुस्सिस्सिम्मिहु- द्रव्यावश्य- काधिकारः ॥ ११ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१५-१६] / गाथा [१...]
प्रत सूत्रांक [१५-१६] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [१६-१७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
	श्रीअनु० हरि.वृत्तौ ॥ १३ ॥ एकः अनुपयुक्तो देवदत्तः आगमत एकं द्रव्यावश्यकमित्यादि, अस्य व्यवहारनिष्ठत्वान् व्यवहारस्य च विशेषायत्तत्वान् विशेषव्यतिरेकेण च सामान्यासिद्धेः, विशेषाभ्युपगमस्याद्यादितिशेषैर्वाधिकृतनयमत्राभिधानलक्षणेष्टार्थसिद्धेरलोच्यते नैगमनयमतोपन्यासानन्तरं व्यवहारनयमतोपन्यास इति । ‘संगहस्से’ त्यादि, संग्रहस्यैको वाऽनेके वाऽनुपयुक्तो वा अनुपयुक्ता वा आगमतो द्रव्यावश्यकं वा द्रव्यावश्यकानि वा ‘से एग’ त्ति तदेकं द्रव्यावश्यकं, सामान्यापेक्षया, द्रव्यावश्यकसामान्यमात्रप्रतिपादनपरत्वादस्य, सामान्यव्यतिरेकेण विशेषासिद्धेः, ‘उज्जुमुत्तस्से’ -त्यादि, ऋजुसूत्रस्यैको वाऽनुपयुक्तो देवदत्तः आगमतश्च एकं द्रव्यावश्यकं, पृथक्त्वं नेच्छति, अयमत्र भावार्थः- वर्तमानकालभावि आत्मीयं चच्छति, तस्यैवार्थक्रियासमर्थत्वान् स्वधनवान्, अतीतानागतपरकीयानि तु नेच्छति, अतीतानागतयोर्विनष्टानुपपन्नत्वात् परकीयस्य च स्वकार्यप्रसाधकत्वादिति । ‘ तिण्हं सहणयाण ’ मित्यादि, त्रयाणां शब्दनयानां शब्दसमभिरुदैवंभूतानां ज्ञः अनुपयुक्तः अवस्तु, अभाव इत्यर्थः, ‘ कस्मादि’ति कस्मात्कारणान्, यदि ज्ञः अनुपयुक्तो न भवति, कुत एतद् ? , उपयोगरूपत्वात् ज्ञानस्य, ततश्च होऽनुपयुक्तश्चेत्यसंभव एव, ‘सेत’मित्यादि, तदागमतो द्रव्यावश्यकं, आह-कोऽयमागमो नाम इति, उच्यते, ज्ञानं, कथमस्य द्रव्यत्वं, भारूपत्वात् ज्ञानस्येति, सत्यमेतत्, किंत्वागमस्य कारणमात्मा देहः शब्दश्च, द्रव्यं च कारणमुक्तमतस्तत्कारणत्वादागम इति, कारणे कार्योपचारात् । ‘ से किं तं नोआगमतो इत्यादि (१५-१९) अथ किं तन्नोआगमतो द्रव्यावश्यकं ?, नोआगमतो इत्यत्र आगमसंबन्धिसेहे नोसहो अहव देसपाडिसेहे । सव्वे जह गसरिरं भवस्स य आगमाभावा ॥ १ ॥ किरियागमुच्चरंतो आवासं कुणति भावसुण्णोत्ति । किरियाऽऽगमो ण होई तस्स निसेहो भवे देसे ॥ २ ॥ नोआगमतो द्रव्यावश्यकं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—ज्ञशरीरद्रव्यावश्यकं भव्यशरीरद्रव्यावश्यकं ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं च द्रव्यावश्यकं । ‘ से किं त ’ मित्यादि (१६-१९) प्रश्नसूत्रं, ज्ञातवानिति ज्ञः तस्य शरीरं उत्पादकालादारभ्य प्रतिक्षणं शीर्यत इति शरीरं द्रव्ये नयाः ॥ १३ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)
	 मूलं [१५-१६] / गाथा [१...]
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [१७] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [१८]	श्रीअनु० हारिवृत्तौ ॥ १४ ॥ नोआगम द्रव्ये भेदाः ॥ १४ ॥ तदेवानुभूतभावत्वात् द्रव्यावश्यकं ज्ञशरीरद्रव्यावश्यकं । आवस्सएत्तिपदस्थाधिकारजाणगसेत्यादि, आवश्यकमिति यत्पदं भव्यशरीर- द्रव्यावश्यकं, अस्यार्थ एवार्थाधिकारः तद्वत्ता अर्धाधिकारा वा गृह्णाते तस्य तेषां वा ज्ञानुः यच्छरीरकं, संज्ञायां कन्, किंभूतं ?- व्यपगत- च्युतच्यावितत्यक्तदेहं, व्यपगतम्-ओघतश्चेतनापर्योयादचेतनत्वं प्राप्तं च्युतं-देवादिभ्यो भ्रष्टं च्यावितं-तेभ्य एवायुःक्षयेण अंशितं त्यक्ते देह-जीव- संसर्गे समुत्थञ्चित्तजनिता हारादि परिणामप्रभवपारित्यक्तोपचयं, तत्र व्यपगतं सर्वगताऽऽत्मनः प्राकृतमपि भवति तद्विच्छित्तये च्युतं, इदमपि स्वभावेन एव कैश्चिदिष्यते तद्रूपपोहाय च्यावितं, इत्थं त्यक्तोपचयमिति चैतज्जीवशरीरयोर्विशिष्टसम्बन्धज्ञापनार्थमिति, उक्तं च बृद्धैः— ‘ पञ्चायंतरपत्तं स्वीरंव क्रमेण जह दधिचेणं । तह चेतणपञ्जायादचेयणत्तं ववगतंति ॥ १ ॥ चुतमिह ठाणट्टभट्टं देवोब्ब जहा विमाणवा- साओ । इय जीवितचेयणादिकिरियाभट्टं चुतं भणिमो ॥ २ ॥ चइयंमि चावितं जं जह कप्पा संगमो सुरिदिणं । तह चावियमिति जीवा पल्लिण्याउक्खएणंति ॥ ३ ॥ आहारसत्तिजणिताऽऽहारसुपरिणामजोवचयसुण्णं । भण्णइ हु चत्तदेहं देहीवरओत्ति एग्ढा ॥ ४ ॥ ’ एवमुक्तेन विधिना जीवेन-आत्मना विविधमनेकधा प्रकर्षेण मुक्तं जीवविप्रमुक्तं, तथा चान्यैरप्युक्तं- ‘बंधणेलेदत्तणओ आउक्खयउठव जीवविप्प- जडे । विजडंति पंगारेणं जीवनभावहितो जीवो ॥ १ ॥ ’ ततश्चेदं व्यपगतादिविशेषणकलापयुक्तं यावज्जीवविप्रमुक्तं ज्ञशरीरद्रव्यावश्यक- मिति गम्येत, कथं ?, यस्मादिदं शय्यागतं वा संस्तारगतं वा सिद्धशिलातलग्नं वा द्यूटा कश्चिदाह-अहो ! अनेन शरीरसमुच्छ्रयेण जिन्हटेन भावेन आवश्यकमित्येतत्पदमारुपातमित्यादि, तस्मादतीतकालनयानुवृत्त्याऽतीतां वृत्तिमपेक्ष्य द्रव्यावश्यकमित्युच्यत इति क्रिया, यथा को दृष्टान्त इति ?, प्रश्नानिर्वचनमाह-अयं मधुकुम्भ आसीद्यं घृतकुम्भ आसीदित्यादि अक्षरगमनिका, भावार्थ उच्यते-तत्र शय्यासंस्तारकौ प्रतीतौ, सिद्धशिलातलं तु यत्र शिलातले साधवस्तपःपरिकर्मितशरीराः स्वयमेव गत्वा भक्तपरिक्षाजनशनं प्रतिपन्नपूर्वाः प्रतिपद्यन्ते प्रतिपत्त्यन्ते

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१७-१८] / गाथा [१....]
प्रत सूत्रांक [१७-१८] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [१८-१९]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हरिःवृत्तौ ॥ १५ ॥ चेति, क्षेत्रगुणतश्च तत्र यथाभद्रिकदेवतागुणादाराधना सिद्धिमासादयतीति, अन्ये तु व्याचक्षते-यस्मिन् शिलातले सिद्धः कश्चिदिति, गतं स्थित-मित्यनर्थान्तरं, अहो दैन्यविस्मयामंत्रणेषु त्रिष्वपि युज्यते, तत्रानित्यं शरीरमिति दैन्ये, आवश्यकं ज्ञातमिति विस्मये, अन्यं पार्श्वस्थमामंत्रयत आमंत्रणमिति, अनेन प्रत्यक्षेण उत्पत्तिकालादारभ्य प्रतिसमयं शीर्यत इति शरीरं तदेव पुद्गलसंघातनरूपत्वात् समुच्छ्रयस्तेन जिनदृष्टेन भावेन भूतपूर्वगत्या जीवितशरीरयोः कथञ्चिदभेदात् आवश्यकमित्येतत्पदमाख्यातं सामान्यविशेषरूपेण, अन्ये तु व्याचक्षते-‘आववियं’ ति प्राकृत-शैल्या छान्दसत्वाच्च गुरोः संकाशादागृहीतं, प्रज्ञापितं सामान्यतो विनेयेभ्यः, प्ररूपितं प्रतिसूत्रमर्थकथनेन, दर्शितं प्रत्युपेक्षणादिदर्शनेन, इयं क्रिया पार्श्वक्षरैरुपात्ता इत्यर्थं च क्रियत इति भावना, निदर्शितं कथञ्चिदगृह्यतः परयाऽनुकम्पया निश्चयेन पुनः पुनर्दर्शितं, उपदर्शितं सकलनययुक्तिभिः, अन्ये त्वन्यथापि व्याचक्षते, तदलं तदुपन्यासलक्षणेन प्रयासेनेति, अतः द्रव्यावश्यकमभिधीयते, आह-आगमक्रियातीतमचेतनमिदं कथं द्रव्यावश्यकमभिधीयते ?, अत्रोच्यते, अतीतकालनयानुवृत्त्या, यथा को दृष्टान्तः!, तत्र दृष्टमर्थमन्तं नयतीति दृष्टान्तः, लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्त इत्यन्ये, अयं मधुकुम्भ आसीदित्यादि, अतीतमधुघृतघटवदिति भावना । ‘से त’ मित्यादि निगमनं । ‘से किं त’-मित्यादि (१७-२१) भव्यो योग्यो दलं पात्रमिति पर्यायाः, तस्य शरीरं तदेव भाविभावाऽऽवश्यककारणत्वात् द्रव्यावश्यकं भव्यशरीर-द्रव्यावश्यकं, ‘जो जीवो’ त्यादि, यो जीवो योन्या-अवाच्यदेशलक्षणया जन्मत्वेन सकलनिर्वृत्तिलक्षणेन, अनेनामगर्भव्यवच्छेदमाह, निष्क्रान्तो-निर्गतोऽनेनैव शरीरसमुच्छ्रयेणेति पूर्ववत्, आदत्तेन-गृहीतेन, अन्ये त्वभिदधति- ‘अत्तएणं’ ति आत्मीयेन, जिनदृष्टेन भावेनेत्यादि पूर्ववत्, अथवा तदावरणक्षयोपशमलक्षणेन ‘सेयकाले’ ति छान्दसत्वादागामिनि काले शिक्षिष्यते, न तावच्छिक्षते, तदेतद्भाविनीं वृत्तिमंगीकृत्य भव्यशरीरद्रव्यावश्यकमित्युच्यते, यथा को दृष्टान्त इत्यादि भावितार्थं यावत् ‘से त’ मित्यादि । ‘से किं त’ मित्यादि (१८-२२) शरीर- रोभव्य शरीराव० ॥ १५ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूल [१९] / गाथा [१...]
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूल एवं हरिभद्रसूरजीरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१९] गाथा १.. दीप अनुक्रम [२०]	श्रीअनु० हारि.वृत्तो १६ भव्यशरीराभ्यां व्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकमिति निरूपितशब्दार्थमेव त्रिविधं प्रह्लादं, तथा-लौकिकं कुप्रावचनिकं लोकोत्तरं, ‘से किं त’मित्यादि (१९-२२) एते राजेश्वरादयः मुखधावन्नादि कृत्वा ततः पश्चाद्वाङ्कुलादौ गच्छीति तदेतल्लौकिकं द्रव्यावश्यकमिति क्रिया, तत्र राज्ञा-चक्रवर्त्यादिर्महामाण्डालिकान्तः ईश्वरो-युवरारा माण्डलिकोऽमात्यश्च, अन्ये तु व्याचक्षते-अणिमाद्यष्टविधैश्वर्ययुक्ता ईश्वर इति, तलवारः-परितुष्ट-नरपतिप्रदत्तपट्टबन्धभूषितः माडम्बिकः-छिन्नमंडलाधिपः कोटुम्बिकः-कतिपयकुटुम्बप्रभुः इभ्यः-अर्थवान्, स च किल यस्य पुञ्जीकृतस्त्वराश्यन्तरितो हस्त्यपि नोपलभ्यत इत्येतावताऽर्थनेति, श्रीदेवताध्यासितसौवर्णपट्टभूषितोत्तमाङ्गः पुरज्येष्ठो षष्ठी, सेनापतिः- नरपतिनिरूपितोऽष्ट-हस्त्यश्वरथपदातिसमुदायलक्षणायः सेनायाः प्रभुरित्यर्थः, सार्थनायकः-‘गणिमं धरिमं मेज्जं परिच्छेज्जं व द्वजाये तु । घेषूणां लाभद्धी वच्च जो अण्णदेसं तु ॥ १ ॥ निव्वहुमओ एसिद्धो दीणाणाहाण बच्छलो पंधे । सो सत्थबाहन्तामं धणोव्व लेए समुव्वहति ॥ २ ॥ प्रभृतिग्रहेणे प्राकृतजनपरिग्रहः, ‘कल्लं पादुप्पभाताए ’इत्यादि, कल्लमिति श्वः प्रज्ञापकापेक्षेतत्, यतः प्रज्ञापको द्वितीयायामेव प्रज्ञापयति, प्रादुः प्रकाशन इत्यर्थे धातुः, ततश्च प्रकाशप्रभातायां रजन्यां सुविमलायामित्यादिनोत्तरोत्तरकालभावित्वा विशेषणकलापेनाऽत्यंतोद्यम-वता मानवानां समावेशककालमाह, ‘फुल्लोत्पलकमलकोमलोन्मीलिते ’ इहोत्पलं पद्ममुच्यते कमलस्त्वारण्यः पशुविशेषः ततश्च फुल्लोत्पल-कमलयोः-विक्षिप्तपद्मकमलयोः कोमलं—अकठोरं उन्मीलितं यस्मिन्निति समासः, अनेनाकर्णोद्यावस्थामाह, ‘अहांपांदुरे पहाए ’ अथ आनन्दार्थे, तथा ‘रक्षासोगे ’ त्यादि, रक्षाशोकप्रकाशकिंशुकशुमुखगुंजादर्गरागसदृशे, आरक्त इत्यर्थः, तथा ‘कमलाकरनलीनीखण्ड-बांधके’ कमलाकरो-हृदादिजलाश्रयस्तास्मिन्नालेनीखण्डं तद्वधक इत्यनेन स्थलनालिनवियच्छेदमाह, यद्वा कमलाकरणलीनीखण्डयोर्भेदेनैव ग्रहणं, ‘उत्थिते’ उत्तरे सूर्ये सहस्ररश्मौ-सहस्रकिरणे दिनकरे-आदित्ये तेजसा ज्वलति सति, विशेषणश्रुत्वं महत्त्वाशयशुद्धयर्थं कर्तव्यमितिख्यापनार्थं,
--	--

 लौकिकं द्रव्याव. || १६ || |

*** लौकिक-द्रव्य-आवश्यकस्य अधिकारः वर्णयते

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२०-२१] / गाथा [१....]
प्रत सूत्रांक [२०-२१] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [२१-२२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ १७ ॥ यत्रैते सर्वे एव विशेषाः सन्ति तस्मिन्नुदिते, अज्ञातज्ञापनार्थं वा विशेषकलाप इति, ‘मुहधोवणे’ त्यादि, निगमनान्तं प्रायो निगदसिद्धमेव, नवरं पुष्प- माल्ययोरयं विशेषः-अग्रथितानि पुष्पाणि प्रथितं माल्यं, विकशितानि वा पुष्पाण्यविकशितानि माल्यं. आरामोद्यानयोरप्ययं विशेषः-विविधपुष्प- जात्युपशोभितः आरामः चम्पकवनाद्युपशोभितमुद्यानं । ‘से किं त’ मित्यादि (२०-२४) यदेते चरकादयः इडाज्यादेरुपलेपनादि कुर्वन्ति तदेतत्कु- प्रावचनिकं द्रव्यावश्यकमिति क्रिया, तत्र चरकाः-धादिभिक्षाचराः चीरिका-रण्यापलितचीरपरिधानाश्चीरोपकरणा इत्यन्ये, चर्मखण्डिकाः- चर्मपरिधानाश्चर्मोपकरणा इति चान्ये, भिक्षोण्डाः- भिक्षामोजिनः सुगतशासनस्था इत्यन्ये, पादुरङ्गाः- भौताः गौतमाः-लघुतराक्षमालाचर्चित- विविधपादपतनदिशिक्ताकलापवद्वृषभकोपायतः कणभिक्षाग्राहिणः, गोवृत्तिकाः-गोश्रयानुकारिणः, उक्तं च-‘गावीहिं समं निग्गमपवेस- ठाणासणाइ य करेति । भुंजंति य जह गावी तिरिक्खवासं विभावेन्ता ॥ १ ॥ गृहधर्माः- गृहस्थ एव श्रेयानित्यभिसंधाय तद्यथोक्तकारिणः धर्ममहितापरिज्ञानवतः सभासदः, अविरुद्धाः- वैतयिका, उक्तं च- ‘अविरुद्धविणयकारी देवादीणं पराए भत्तीए । जह वेसियायणसुओ एवं अण्णेवि नायव्वा ॥ १ ॥ विरुद्धा—अक्रियावादिनः, परलोकानभ्युपगमात्मवैवादिभ्य एव विरुद्धा इति, वृद्धाः-तापसाः प्रथमसमुत्पन्नत्वात् प्रायो वृद्धकाल एव दीक्षाप्रतिपत्तेः श्रादका धिग्वर्णाः, अन्ये तु वृद्धश्रावका इति व्याचक्षते धिग्वर्णा एव, प्रभृतिग्रहणात् पत्राजकादिपरिग्रहः, पाखण्डस्थाः ‘कल्ल’ मित्यादि पूर्ववत् ‘इदं सिधे’त्यादि, इन्द्रः प्रतीतः स्कन्दः- कार्तिकेयः रुद्रः-प्रतीतः शिवो-महादेवः वैश्रवणो-यक्षनायकः देवः-सामान्यः नागो-भवनवासिभेदः यक्षो-व्यन्तरः भूतः-स एव मुकुन्दो-बलदेवः आर्यो-प्रशान्तरूपा दुर्गा कोटिक्रिया-सैव महिषासुराढा, उपलेपसम्मार्जनावर्षणधूपपुष्पगन्धमाल्यादीनि द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति, तत्रोपलेपनं-छगणादिना प्रतीतमेव सम्मार्जनं दण्डपुच्छादिना आवर्षणं गन्धोदकादिनेति ‘से-त’ मित्यादि । ‘जे इमे’ ति (२१-२६) ये एते ‘समणगुणमुक्कजोगिन्ति’ श्रमणाः-साधवस्तेषां गुणाः- द्रव्या- वश्यकं ॥ १७ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२०-२१] / गाथा [१....]
प्रत सूत्रांक [२०-२१] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [२१-२२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ १८ ॥ मूलोत्तराख्याः प्राणातिपातादिविनिवृत्त्यादयः विण्डविशुद्धपादयश्च, योजनं योगः आसेवनमित्यर्थः श्रमणगुणेषु मुक्तो योगो यैस्ते तथा- विधाः, शेषाः अवयवाः यावत् घट्टति अवयवावयविनोरभेदोपचारात् जङ्घे फेनकादिना घृष्टे येषां ते घृष्टाः, तथा ‘मृष्टा’ तैलोदकादिना मृष्टाः मत्तुप्लोपाद्वा मृष्टवन्तो मृष्टाः ‘तुप्पोट्ट’ ति तुप्रं—स्निग्धं तुष्टा ओष्टाः समवन्ता वा येषां ते तुष्टौष्टाः, शेषं कण्ठ्यं, यावदुभयका- लभावश्यकस्येत्येवावश्यकाय, छट्टीविभत्तीह भण्णह चउत्थीति लक्षणात्, प्रतिक्रमणायोपतिष्ठन्ते तदेतत् द्रव्यावश्यकं, भावशून्यत्वादभिप्रेतफलाभावाच्च, एत्थ उदाहरणं— ‘वसंतउरं नगरं, तत्थ गच्छो अगीयत्थसंविग्गो भविय विहरति, तत्थ य एगो संविग्गो समणगुणमुक्कजोगी, सो दिवसदेवसियं उदउल्लादियाओ अणेसणाओ पडिगाहेत्ता महता संवेगेण पडिक्कमणकाले आलोएत्ति, तस्स पुण सो गच्छगणी अगीयत्थत्तणओ पायच्छित्तं देतो भणति-अहो इमो धम्मसङ्घिओ साहु, सुहं पाडसेवितुं दुक्खं आलोएवं, एवं नाम एसो आलोएत्ति अगूहंत्ते असदत्तओ सुद्धोत्ति, एवं च दट्ठणं अण्णे अगीयत्थसमणा पसंसंति, धित्तेति य-णवरं आलोएयव्वंति, णत्थि किंचि पडिसेवितेणंति, तत्थ अण्णया कयादी गीयत्थो संविग्गो विहरमाणो आगओ, सो दिवसदेवसियं आविहिं दट्ठणं उदाहरणं दाएत्ति—गिरिणगरे वाणियओ रत्तरयणाणं घरं भरेऊण वरिसे २ संपलीवेइ, एवं च दट्ठणं सव्वलोगो अविवेगत्तओ पसंसंति-अहो! इमो धण्णो जो भगवंतं अग्गि तप्पेति, तत्थऽण्णया पलीविचं गिहं वाओ य पबलो जाओ सव्वं नगरं दट्ठुं, ततो सो पच्छा रण्णा पडिहओ, णिण्णारो य कओ, अण्णहिं नगरे एवं चेव करेइ, सो राइणा सुतो जहा कोवि वाणिओ एवं करेइत्ति, सो तेण सव्वस्सहरणो काऊण विसज्जिओ, अडवीए किं न पलीवेसि?, तो जहा तेण वाणिएण अवसेसावि दट्ठा एवं तुमं पि एवं पसंसंतो एते साट्ठणो कुप्रावच- निक लौकिक- द्रव्या- वश्यके ॥ १८ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२२-२७] / गाथा [१....]
प्रत सूत्रांक [२२-२७] गाथा ॥१..॥ दीप अनुक्रम [२३-२८]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हरि-वृत्तौ ॥ १९ ॥ सर्व्वेवि परिचयसि, ताहे जाहे सो न ठाई ताहे तेण साहुणो भाणिता-एस महानिद्धम्मो अगीयत्थो, ता अलं एयस्स आणाए, जइ एयस्स मि- ग्गहो ण कीरइ तओ अण्णेवि विणस्संतित्ति । ‘सेत’ मित्यादि निगमनत्रयं निगदसिद्धं । ‘से किं त’ मित्यादि (२२-२८) अवश्यक्रियानुष्ठा- नादावश्यकं गुणानां च आवश्यकमात्मानं करोत्यावश्यकं, उपयोगाद्यात्मकत्वाद्भावश्चासावावश्यकं चेति समासः, भावप्रधानं वाऽऽवश्यकं भावावश्यकं, भावावश्यकं द्विविधं प्रकृतं, तथा— आगमतो नोआगमतश्च, ‘से किं त’ मित्यादि, (२३-२८) ज उपयुक्तः, अयमत्र भावार्थः- आवश्यकपदार्थद्वयजनितसंवेगेन विशुद्धयमानपरिणामस्तत्रैवोपयुक्तस्तदुपयोगानन्यत्वादागमतो भावावश्यकमिति, तथा चाह— ‘सेत’- मित्यादि निगमनं । ‘से किं त’ मित्यादि, (२४-२८) नोआगमतो भावावश्यकं ज्ञानक्रियोभयपरिणामो, मिश्रवचनत्वाभ्योराशब्दस्य, त्रिविधं प्रकृतं, तथा-लौकिकमित्यादि, ‘से किं त’ मित्यादि (२५-२८) पूर्वाह्णे भारतमपराह्णे रामायणं, तद्वचनश्रोतॄणां पत्रकपरावर्त्तन- संयतगात्रादिक्रियायोगे सति तदुपयोगभावतो ज्ञानक्रियोभयपरिणामसद्भावादित्यभिप्रायः, ‘से त’ मित्यादि निगमनं, ‘से किं त’ मित्यादि (२६-२९) गतार्थं यावदिज्जंजलीत्यादि, इज्जंजलिहोमजपाणुरुचनमस्कारादीनि श्रद्धानुभावयुक्तत्वात्, भावावश्यकानि कुर्वन्ति, तत्र इज्ज्या- श्रलियोगांजलिरुच्यते, स च यागदेवताविषयः मातुर्वाञ्जलिरिज्जाञ्जलिमातृनमस्कारविधाविधिभावः होमाभिः—हवनक्रिया जपो- मंत्रादिन्यासः उडुरुक्खं(क्) ति देशविचनं वृषभगर्जितकरणादर्थ इति, अन्ये तु व्याचक्षते-उंटुं-मुखं तेण रुक्खं(क्)ति-सहकरणं तं पि वसभ- लेक्कियादि चेव वेप्पति, नमस्कारः प्रतीतो, यथा- नमो भगवते दिवसनाथाय, आदिशब्दात् स्तवादिपरिग्रहः, ‘से त’ मित्यादि, निगमनं, ‘से किं त’ मित्यादि, (२७-३०) यदित्यावश्यकमभिसंबद्धयते, श्रमणो वेत्यादि सुगमं, यावत्तच्चित्त्यादि, सामान्यतस्तस्मिन् आवश्यकं चित्तं-भावमनोऽस्येति तच्चित्तः, तथा तन्मनो द्रव्यमनः प्रतीत्य विशेषोपयोगं वा, तथा तल्लेश्यः- तत्स्थशुभपरिणामविशेष इति भावना, भावा- वश्यकम् ॥ १९ ॥
	*** अथ भाव-आवश्यक-अधिकारः वर्णयते

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२८] / गाथा [२]
प्रत सूत्रांक [२८] गाथा ॥२॥ दीप अनुक्रम [३१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि-वृत्तौ ॥ २० ॥ उक्तं च- ‘कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्परिणामो य आत्मनः । स्फटिकस्येव तत्रायं, लेश्याशब्दः प्रयुज्यते ॥ १ ॥ तथा ‘तदध्यवसितः’ इहाध्यव- सायोऽध्यवसितं-तच्चित्तादिभावयुक्तस्य सतः तस्मिन्नावश्यक एवाध्यवसितं क्रियासंपादनविषयमस्येति तदध्यवसितः, तथा तत्तीव्राध्यव- सायः इह प्रारम्भकालादारभ्य संतानक्रियाप्रवृत्तस्य तस्मिन्नेव तीव्रमध्यवसायं प्रयत्नविशेषलक्षणमस्येति समासः, तथा तदर्थोपयुक्तः- तस्यार्थस्तदर्थस्तस्मिन्नुपयुक्तः, प्रशस्ततरसंवेगविशुध्यमानस्याऽऽवश्यक एव प्रतिसूत्रं प्रत्यर्थं प्रतिक्रियं चोपयुक्त इति भावार्थः, तथा तदर्थितकरणः इह उपकरणानि-रजोहरणमुखवस्त्रिकादीनि तस्मिन्नावश्यके यथोचितव्यापारनियोगेनार्थितानि--न्यस्तानि करणानि येन स त- थाविधः, द्रव्यतः सम्यक् स्वस्थानन्यस्तोपकरण इत्यर्थः. तथा तद्भावनाभावितः, असकृदनुष्ठानात्पूर्वभावनाऽपरिच्छेदत एव, पुनः २ प्रति- पत्तेरिति हृदयं, असकृदनुष्ठानेऽपि प्रतिपत्तिसमयभावनाअविच्छेदादिति, उपसंहरन्नाह- अन्यत्र-प्रस्तुतव्यतिरेकेण कुत्रचित्कार्योन्तरे मनः अकुर्वन्, मनोग्रहणं कायवागुपलक्षणं, अन्यत्र कुत्रचिन्मनोवाक्कायान्तकुर्वन्नित्यर्थः, उभयकालं--उभयसन्ध्यमावश्यकं-प्रागुक्तिरूपितशब्दार्थं करोति-निर्वर्त्तयति स ग्लवावश्यकपरिणामानन्यत्वादावश्यकमिति क्रिया, ‘मेत’ मित्यादि निगमनं, उक्तं भावावश्यकं ॥ अस्यैवेदानी- मसंमोहाय पर्यायनामानि प्रतिपाद्यन्नाह ‘तस्मिन् णं इमे’ इत्यादि (२८-३०) तस्यावश्यकस्य ‘ण’ निति वाक्यालङ्कारे अमुनि वक्ष्यमाणानि एकार्थिकानि- तन्वत एकार्थविषयाणि नानाप्रोपाणि—नानाव्यञ्जनानि नामधेयानि भवन्ति, इह घोषा उदात्तादयः कादीनि व्यञ्जनानि । तथा-- ‘आवस्मरं’ गाथा (३२-३०) व्याख्या-अवश्यक्रियाऽनुष्ठानादावश्यकं, गुणानां वा वक्ष्यमात्मानं करोतीत्यावश्यकं, अवश्य- करणीयमिति मोक्षार्थिना नियमानुष्ठेयमिति, भुवनिग्रह इत्यत्रानादित्वात्प्रायोऽन्तत्वाच्च भुवं- कर्म तत्कलमूलो वा भावस्तस्य निग्रहो भुव- निग्रहः, निग्रहेहेतुत्वान्निग्रहः, तथा कर्ममलिनस्याऽऽत्मनो विशुद्धिहेतुत्वाद्दिशुद्धिः, अध्ययनपट्कवर्गः-- सामायिकादिपडध्ययनसमुदायः नोआगम भावा- वश्यकं श्रुतनिक्षे- पाश्च ॥ २० ॥
	*** अथ ‘श्रुत’ शब्दस्य निक्षेपाः वर्णयते

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२९-३७] / गाथा [३]
प्रत सूत्रांक [२९-३७] गाथा ॥३॥ दीप अनुक्रम [४१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्ती ॥ २१ ॥ सम्यग् जीवकर्मसंबन्धव्यवहारापनयनान्न्यायः मोक्षाराधनानिबन्धनत्वादायाधना मार्गः—पन्थाः शिवस्येति गार्थार्थः- । ‘ समणेण ’ गाहा (३३-३१) निगदसिद्धैव, नवरं अन्त इति मध्ये, ‘सेत’ मित्यादि निगमनं ॥ ‘से किं त’ मित्यादि (२९-३१) श्रुतं प्रागुक्तिरूपितशब्दार्थमेव, चतुर्विधं प्रज्ञप्तमित्याद्यावश्यकविवरणानुसारतो भावनीयं, यावत् ‘ पचयपोत्थयलीहंत (३७-३४) इह पत्रकाणि तललात्यादिसंबन्धीनि तत्संचालनिष्पन्नास्तु पुस्तकाः, वस्त्रनिष्फण्णे इत्यन्ये, इयमत्र भावना- पत्रकपुस्तकलिखितमपि भावश्रुतनिबन्धनत्वात् द्रव्यश्रुतमिति । साम्प्रतं प्राकृतशैल्या तुल्यशब्दाभिधेयत्वात् ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यश्रुताधिकार एव निर्होषत्वादिक्यापनप्रसंगोपयोगितया सूत्रनिरूपणायाह-‘ अह वे त्यादि ’ अथवेति प्रकारान्तरप्रदर्शनार्थः सूत्रं पञ्चविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा- ‘ अंडज ’ मित्यादि ‘ से किं त ’ मित्यादि अंडाज्जातमुण्डजं हंसगर्भादि, कारणे कार्योपचारात्, हंसः किल पतङ्गः तस्य गर्भः २ कोशिकारकः, आदिशब्दः स्वभेदप्रकाशकः कौशिकार-प्रभवं चटकसूत्रमित्यर्थः, पञ्चेन्द्रियहंसगर्भजमित्यादि केचित्, ‘ से त ’ मित्यादि निगमनं, एवं शेषेष्वपि प्रश्ननिगमने वाच्ये, पोण्डात् जातं पोण्डजं फलिहमादिति-कर्प्पासफलादि कारणे कार्योपचारादेवेति भावना, कीटाज्जातं कीटजं पञ्चविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा- ‘ पट्टे ’ त्यादि, पट्टित्ति-पट्टसूत्रं मलय-अंशुकं चीणांशुकं-कुमिरागादि, अत्र वृद्धा व्याचक्षते- किल जंमि विसए पट्टो उप्पज्जति तत्थ अरण्णे वण-णिगुंजट्ठाणे मंस चीणं वा आमिसं पुञ्जपुंजेहि ठविज्जइ, ततो तेसिं पुंजाण पासओ णिप्पुण्ण्या अंतरा बहवे खीलिया भूमिए उट्ठा निहोडिज्जंति, तत्थ वणंतराओ पर्यंगकीडा आगच्छंति, ते मंसचीणादियमामिसं चरंत इतो ततो य कीलंतरेसु संचरंता लाग्र मुयंति, एस पट्टेत्ति, एस य मलयवज्जेसु भणितो, एवं चेव मलयविसउप्पण्णे मलएत्ति भण्णइ, एवं चेव चीणविसयवहिमुप्पण्णे असुए, चीणविस-युप्पण्णे चीणंसुएत्ति, एवमेतोसिं खेत्तविससओ कीडविससो कीडविससतो य पट्टसुत्तविससतो भवति, एवं मणुयादिक्हिरं घेत्तुं केणापि जोएण जुत्तं व्यतिरिक्तं श्रुतं ॥ २१ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [३८-४३] / गाथा [४]	
प्रत सूत्रांक [२८-४३] गाथा ॥४॥ दीप अनुक्रम [४२-४९]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारिवृत्तौ ॥ २२ ॥ भायणत्वं ठविज्जति, तो तत्थ किमी उप्पज्जंति, ते वायाभिलासिणो छिहेण णिग्गता इतो ततो आसन्नं भमंति, तेसिं णीहारलाला किमिराग- सुत्तं भण्णइ, तं सपरिणामरंगरंगियं चेव भवइ, अन्ने भणंति-जाहे कहिरुप्पन्ना किमिमे तत्थेव मलित्ता कसवट्टं उत्तारित्ता तत्थ रसेहिं जोगं पक्खिवित्ता पट्टसुत्तं रयंति तं किमिरागं भण्णइ, अण्णुग्गाली, वालयं पंचविधं ‘ उण्णिय ’ मित्यादि उण्णादिया पसिद्धा, मिण्हितो लहुतरा मृगाकृतयः बृहत्पिच्छाः तेसिं लोमा मियलोमा, कुतवो उंदररोमेसु, एतेसिं चेव उण्णियादीणं उवहारो किट्ठिसं, अहवा एतेसिं दुग्गादि- संजेगेण किट्ठिसं, अहवा जे अण्णे सणमादिया रोमा ते सव्वे किट्ठिसं भण्णंति, ‘से तं वालज’ मिति निगमनं । ‘से किं तं वागज’ मित्यादि, सनिगमनं निगदसिद्धमेवेति, ‘से किं त’ मित्यादि, (३८-३५) इदमप्यावश्यकविवरणानुसारतो भावनीयं, प्रायस्तुल्यवक्तव्यत्वात्, नवर- भागमतो भावश्रुतं तज्ज्ञस्तदुपयुक्तस्तदुपयोगानन्यत्वात्, नोआगमतस्तु लौकिकादि, अत्राह-नोआगमतो भावश्रुतमेव न युज्यते, तथाहि-यदि नोशब्दः प्रतिषेधवचनः कथमागमः?, अथ न प्रतिषेधवचनः कथं तर्हि नोआगमत इति, अत्रोच्यते, नोशब्दस्य देशप्रतिषेधवचनत्वात् चरण- गुणसमन्वितश्रुतस्य विवक्षितत्वात् चरणस्य च नोआगमत्वादिति । ‘ जं इमं अरहंतेही ’ (४२-३७) त्यादि, नन्दीविशेषविवरणा- नुसारतोऽन्यथा बोधन्यस्तविशेषणकलापयुक्तमपि स्वबुद्ध्या नेयमिति, शेषं प्रकटार्थं यावन्निगमनमिति । ‘ तस्स णं इमे ’ इत्यादि पूर्ववत् ‘ सुतसुत्त ’ गाथा (*४-३८) व्याख्या-श्रूयते इति श्रुतं, सूचनात्सूत्रं, विप्रकीर्णार्थग्रन्थनाद् ग्रन्थः, सिद्धमर्थमन्तं नयतीति सिद्धान्तः, मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकपाययोगप्रवृत्तजयिशासनान् शासनं, पाठांतरं वा प्रवचनं, तत्रापि प्रगतं प्रशस्तं प्रधानमादौ वा वचनं प्रवचनं, मोक्षयाज्ञप्यन्ते प्राणिनोऽनयेत्याज्ञा, उक्तिर्वचनं बाग्योग इत्यर्थः, हितोपदेशरूपत्वादुपदेशनमुपदेशः, यथावास्थितजीवादिपदार्थ- प्रज्ञापनात् प्रज्ञापनेति, आचार्यपारम्पर्येणागच्छतीत्यागमः, आप्तवचनं आगम इति, एकार्थपर्यायाः सूत्र इति गार्थार्थः । ‘ से त ’ मित्यादि नोआगम भावश्रुतं स्कन्धनिक्षे- पाथ ॥ २२ ॥	
	*** अथ ‘स्कन्ध’ शब्दस्य निक्षेपाः वर्णयते	

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४४-५१] / गाथा [४....]
प्रत सूत्रांक [४४-५१] गाथा ॥४॥ दीप अनुक्रम [५०-५५]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि-वृत्तौ ॥ २३ ॥ निगमनं। ‘से किं त’ मित्यादि (४४-३८) वस्तुतो भावितार्थमेव, यावज्जशरीरभ्रव्यशरीरव्यतिरिक्तस्त्रिविधः प्रज्ञप्रस्तथया, ‘सच्चित्ते’ त्यादि प्रश्नसूत्रं (४७-३९) चित्तं मनोऽर्थविज्ञानमिति पर्यायाः सह चित्तेन वर्त्तत इति सचित्तः सचित्तश्चासौ द्रव्यस्कन्धश्चेति समासः, इह विशिष्टैकपरिणामपरिणतः आत्मप्रदेशपरमाण्वादिसमूहः स्कन्धः अनेकविधः—अनेकप्रकारः व्यक्तिभेदेन प्रज्ञप्रः—प्ररूपितः, तद्यथा- ‘हयस्कन्ध’ इत्यादि, हयः—अश्वः स एव विशिष्टैकपरिणामपरिणतत्वात्स्कन्धो हयस्कन्धः, एवं शेषेष्वपि भावनीयं, इह च सचित्त- द्रव्यस्कन्धाधिकारादात्मन एव परमार्थतश्चेतनत्वादसङ्ख्येयप्रदेशात्मकत्वाच्च कथञ्चिच्छरीरभेदे सत्यपि हयादीनां हयादिजीवा एव गृह्यन्ते इति सम्प्रदायः, प्रभूतोदाहरणाभिधानं तु विजातीयानेकस्कन्धाभिधानेनैकपरमपुष्पस्कन्धप्रतिपादनपरदुर्नयनिरासार्थं, तथा चादुरेके- “ एक एव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थितः। एकया बहुधा चैव, दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥ १ ॥ ” एवं हि मुक्तेतराद्यभाव- प्रसङ्गात् व्यवहारानुपपत्तिरिति। ‘सेत’ मित्यादि निगमनं। ‘से किं त’ मित्यादि, (४८-४०) अविद्यमानचित्तः अचित्तः अचित्तश्चा- सौ द्रव्यस्कन्धश्चेति समासः, अनेकविधः प्रज्ञप्र इति पूर्ववत्, तद्यथा—द्विप्रदेशिक इत्यादि आनिगमनं सूत्रासिद्धमिति, ‘से किं त’ मित्यादि (४९-४०) मिश्रः—सचित्ताचित्तसंकीर्णः ततो मिश्रश्चासौ द्रव्यस्कन्धश्चेति समासः, सेनाया—हस्त्यश्वरथपदातिसन्नाहखड्गकुन्तादि- समुदायलक्षणाया अग्नस्कन्धं अग्नानीकमित्यर्थः, तथा मध्यमः पश्चिमश्चेति, ‘सेत’ मित्यादि निगमनं, ‘अहवे’ त्यादि (५०-४०) सुगमं यावत् से किं तं कासेणकुर्वधे (५१-४०) कृत्स्नः—संपूर्णः कृत्स्नश्चासौ स्कन्धश्चेति विग्रहः ‘सञ्चेव’ इत्यादि, स एव हयस्कन्ध इत्यादि, आह—यद्येवं ततः किमर्थं भेदेनोपन्यास इति, उच्यते, प्राक् सचित्तद्रव्यस्कन्धाधिकारात् तथाऽसम्भविनोऽपि बुद्ध्या निकृष्य जीवा एवाकाः इह तु जीवप्रयोगपरिणामितशरीरसमुदायलक्षणः समग्र एव कृत्स्नः स्कन्ध इति, अन्ये तु जीवस्यैव कृत्स्नस्कन्धत्वाद् व्यत्ययेन व्याचक्षते, स्कन्ध निक्षेपाः ॥ २३ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [५२-५६] / गाथा [४....]
प्रत सूत्रांक [५२-५६] गाथा ॥४॥ दीप अनुक्रम [५६-६२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हरि-वृत्तौ ॥ २४ ॥ तथाऽप्यविरोधः, ‘सेतु’ मित्यादि निगमनं । ‘से किं त’ मित्यादि (५२-४१) न कृत्स्नः अकृत्स्नः अकृत्स्नश्चासौ स्कन्धश्च अकृत्स्नस्कन्धः ‘से चेवे’ त्यादि, स एव द्विप्रदेशादिः, अयमत्र भावार्थः- द्विप्रदेशिकः निप्रदेशिकमपेक्षया कृत्स्नो वर्तते इत्येवमन्येष्वपि वक्तव्यं, न यावत् का- त्स्न्यमापद्यत इति, यद्येवं ह्यादिकृत्स्नस्कन्धस्यापि तदन्यमहत्तरस्कन्धापेक्षया अकृत्स्नस्कन्धत्वप्रसङ्गो, न, असंख्येयजीवप्रदेशान्योन्यानुगत- स्यैव विवक्षितत्वात् जीवप्रदेशानां च स्कन्धान्तरेऽपि तुल्यत्वाद् बृहत्तरस्कन्धानुपपत्तिः, जीवप्रदेशपुद्गलसाकल्यबृद्धौ हि महत्तरत्वमिति, अत्र बहु वक्तव्यं तच्च नोच्यते ग्रन्थविस्तरभयाद् गमनिकामात्रमेतत्, ‘सेतु’ मित्यादि निगमनं । ‘से किं त’ मित्यादि (५३-४१) अनेक- द्रव्यश्चासौ स्कन्धश्चेति समासः, विशिष्टैकपरिणामपरिणतो नखजङ्घोरुहृदनेकेशाद्यनेकद्रव्यसमुदाय इत्यर्थः, तथा च ह- ‘तस्सेवे’- त्यादि, तस्यैव विवक्षितस्कन्धस्य देशः-एकदेशः अपचितो जीवप्रदेशविरहादिति भावना, तथा तस्यैव देश उपचितो जीवप्रदेशभावादिति हृदयं, एतद्भूतं भवति-जीवप्रयोगपरिणामितानि जीवप्रदेशावचितानि च नखरोमरदन्तेकेशादीन्यनेकानि द्रव्याणि तथाऽन्यानि जीवप्रयोग- परिणामितानि जीवप्रदेशोपचितानि च चरणजङ्घोरुप्रभृतानि प्रभूतान्येव, एतेषामपचितोपचितानामनेकद्रव्याणां पुनर्यौ विशिष्टैकपरिणामो देहाख्यः सोऽनेकद्रव्य इति, अत्राह- ननु द्रव्यस्कन्धादस्य को विशेष ? इति, उच्यते, स किल यावानेव जीवप्रदेशानुगतस्तावानेव विशिष्टैक- परिणामपरिणतः परिगृह्यते, न नखाद्यपेक्षयापि, अयं तु नखाद्यपेक्षयाऽपीत्ययं विशेष इत्यलं प्रसङ्गेन । ‘सेतु’ मित्यादि निगमनं ‘से किं त’- मित्यादि सुगमं (५५-४२) यावत् ‘एतेसि’ मित्यादि नवरमागमतो भावस्कन्धः ज्ञ उपयुक्त तदर्थोपयोगपरिणामपरिणत इत्यर्थः, नो- आगमतस्तु ज्ञानक्रियासमूहमय इति, अत एवाह ‘एतेसि चेव’ इत्यादि (५६-४१) एतेषामेव प्रस्तुतावश्यकभेदानां सामायिकादीनां षण्णामध्ययनानां समुदायसमितिसमागमेन, इहाध्ययनमेव पदवाक्यसमुदायत्वात् समुदायः, समुदायानां समितिः-मेलकः, समुदाय- द्रव्यभाव स्कन्धाः ॥ २४ ॥
	*** अथ ‘आवश्यक’स्य निरूपणं क्रियते

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [५७-५८] / गाथा [५-६]
प्रत सूत्रांक [५७-५८] गाथा ॥५-६॥ दीप अनुक्रम [६३-६८]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ २५ ॥ मेलकः समुदायसमितिः, इयं च स्वस्वभावव्यवस्थितानामपि भवति अत एकीभावप्रतिपत्त्यर्थमाह- समागमेन समुदायसमिमेतः समागमो- विशिष्टैकपरिणाम इति समासस्तेन आवश्यकश्रुतभावस्कन्ध इति लभ्यते, अयमत्र भावार्थः--सामायिकादीनां षण्णामध्ययनानां समावेशात् ज्ञानदर्शनक्रियोपयोगवतो नोआगमतो भावस्कन्धः, तोशब्दस्य मिश्रवचनत्वात् क्रियाया अनागमत्वादिति, निगमनं । ‘तस्स ण’- मित्यादि (५७-४३) पूर्ववत्, यावत् ‘गणकाय’ गाहा (*५-४३) व्याख्या-मल्लगणवद्गणः पृथिवीसमस्तजीवकायवत्कायः त्रयादि- परमाणुस्कन्धवत्स्कन्धः गोवर्गवद्गर्गः शालिधान्यराशिबद्ग्राशिः विप्रकीर्णधान्यपुञ्जीकृतपुञ्जवत्पुञ्जः गुडादिपिण्डीकृतपिण्डवत् पिण्डः हिरण्या- विद्वन्व्यनिकरवन्निकरः तीर्थादिषु संभिलितजनसंघातवत् संघातः राजगृहाङ्गणजनकुलवत् आकुलं पुरादिजनसमूहवत् समूहः ‘सेत’- मित्यादि निगमनं । आह-किं पुनरेदमावश्यकं षडध्ययनात्मकमिति ? उच्यते, षडर्थधिकारविनियोगान्, क एतेऽर्थधिकारा ? इति तानुपद- शयन्नाह--‘ आवश्यकसगस्स ण’ मित्यादि (५८-४३) सावज्जगाहा (*६-४३) व्याख्या- सावद्योगविरतिः-सपापव्यापारविरमणं सा- मायिकार्थाधिकारः, वत्कीर्तनेति सकलदुःखविरक्तभूतसावद्योगविरत्युपदेशकत्वादुपकीरत्वात्सद्भूतगुणोत्कीर्तनकरणादन्तःकरणशुद्धेः प्रधान- कर्मक्षयकारणत्वादर्शनविशुद्धिः पुनर्बोधिलाभहेतुत्वाद्भवतां जिनानां यथाभूतान्यासाधारणगुणोत्कीर्तना चतुर्विंशतिस्तवस्येति, गुणवतश्च प्रातिपत्त्यर्थं वन्दना वन्दनाध्ययनस्य, तत्र गुणा मूलगुणोत्तरगुणव्रतपिण्डविशुद्ध्यादयो गुणा अस्य विद्यन्ते इति गुणवान् तस्य गुणवतः प्राति- पत्त्यर्थं वन्दनादिलक्षणा (प्रतिपत्तिः) कार्येति, उक्तं च ‘पासत्थादी’ गाहा, चक्षुःश्रोत्रमात्रवन्नमासाद्यागुणवतोऽपित्याह, उक्तं च ‘परियाय’ गाहा, स्खलितस्य निंदा प्रतिक्रमणार्थाधिकारः कथंचित्प्रमादतः स्खलितस्य मूलगुणोत्तरगुणेषु प्रत्यागतसंवेगविशुद्धयमानाध्यवसायस्य प्रमाद- कारणमनुसरतोऽकार्यमिदमतीवेति भावयतो निंदाऽऽत्मसाक्षिकीति भावना, त्रणचिकित्सा कायेत्सर्गस्य, इयमत्र भावना-निन्दया शुद्धिमता- आवश्यक- निरूपणं ॥ २५ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [५९] / गाथा [७]
प्रत सूत्रांक [५९] गाथा ॥७॥ दीप अनुक्रम [६९-७०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ २६ ॥ सादयतः ब्रणसाधन्योपनयेनालोचनादिदशविधप्रायश्चित्तभैषजेन चरणातिचारब्रणचिकित्सेति, गुणधारणा प्रत्याख्यानार्थाधिकार इति, अयमत्र भावार्थः— यथेह मूलगुणोत्तरगुणप्रतिपत्तिः निरतिचारसंधारणं च तथा प्ररूपणमर्थाधिकार इति, चशब्दादन्ये चापान्तराला अर्थाधिकारा विज्ञेया इति, एवकारोऽवधारण इति गार्थार्थः । एषां च प्रत्यध्ययनमर्थाधिकारद्वार एवावकाशः प्रत्येतव्यः । साम्प्रतं यदुक्तमादौ ‘श्रुत-स्कन्धाध्ययनानि चावश्यक’ मिति तत्रावश्यकान्यासोऽभिहित इहानीमध्ययनन्यासावसरः, स चानुयोगद्वारप्रक्रमायातः प्रत्यध्ययनमोष-निष्पन्न एव वक्ष्यते, लाघवार्थमिति । साम्प्रतमावश्यकस्य यद्व्याख्यातं यच्च व्याख्येयं तदुपदर्शयन्नाह—‘आवस्स’ गाहा (५७-४४) व्याख्या-पिण्डार्थः—समुदायार्थः वर्णितः—कथितः समासेन—संक्षेपेण आवश्यकश्रुतस्कन्ध इति शास्त्रस्यान्वर्थाभिधानात्, इत ऊर्द्धमेकैकमध्ययनं कीर्त्तयिष्यामः— वक्ष्याम इति गार्थार्थः । कीर्त्तनं कुर्वन्निदमाह—‘तंजहा—सामाड्य’ मित्यादि (५९-४४) सूत्रसिद्धं यावत् ‘तत्तथ पढम-मज्झयणं सामाड्यं’ तत्रशब्दो वाक्योपन्यासार्थो निर्द्धारणार्थो वा, प्रथमं—आद्यं शेषचरणादिगुणाधारत्वात्प्रधानं मुक्तिहेतुत्वाद्, उक्तं च—‘सामायिकं गुणानामाधारः खमिव सर्वैभावानाम् । नहि सामायिकहीनाश्रणादिगुणान्विता येन ॥ १ ॥ तस्माज्जगाद भगवान् सामा-यिकमेव निरुपमोपायम् । शारीरमानसानेकदुःखनाशस्य मोक्षस्य ॥ २ ॥ बोधादेरधिकमयनमध्ययनं प्रपञ्चतो वक्ष्यमाणशब्दार्थं सामा-यिकम्, इह च समो—रागद्वेषवियुतो यः सर्वभूतान्यात्मवत् पश्यति, आयो लाभः प्राप्तिरिति पर्यायाः, समस्य आयः समायः, समो हि प्रतिक्षणमपूर्वैर्ज्ञानदर्शनचरणपर्यायैर्भवाटवीभ्रमणसंलेशविच्छेदकैर्निरुपममुखहेतुभिरधःकृतचिन्तामणिकल्पद्रुमोपभैरुज्यते, स एव समायः प्रयोजनमस्याध्ययनसंवेदनानुष्ठानवृन्दस्येति सामायिकं, समाय एव सामायिकं तस्य सामायिकस्य ‘ण’ मिति वाक्यालङ्कारे ‘इमे’ ति अमूनि वक्ष्यमाणलक्षणानि महापुरस्येव चत्वारीति संख्या न त्रीणि नापि पञ्च अनुयोगद्वाराणि, इहाध्ययनार्थकथनविधिरनुयोगः, द्वाराणीव अर्था- धिकाराः ॥ २६ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [६०-६४] / गाथा [७...]
प्रत सूत्रांक [६०-६४] गाथा ॥७॥ दीप अनुक्रम [७१-७३]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ २७ ॥ द्वाराणि--नगरप्रवेशमुखानि, सामायिकपुरस्यार्थाधिगमोपायद्वाराणीत्यर्थः भवन्ति, ‘तद्यथे’ ल्युपन्यासार्थः ‘उपक्रमे’ त्यादि, इह च नगरदृष्टान्तमाचार्याः प्रतिपादयन्ति, यथा ह्यकृतद्वारमनगरमेव भवति, कृतैकद्वारमपि दुरधिगमनं कार्यातिपत्तये च, चतुर्मूलद्वारं तु प्रतिद्वारा- नगतं सुखाधिगमं कार्यातिपत्तये च, एवं सामायिकपुरस्यार्थाधिगमोपायद्वारशून्यमशक्याधिगमं भवति, एकद्वारानुगतमपि च दुरधिगमं, सप्रभेदचतुर्द्वारानुगतं तु सुखाधिगममित्यतः फलवान् द्वारोपन्यास इति, तत्रोपक्रमणमुपक्रम इति भावसाधनः, शास्त्रस्य न्यासदेशसमीपीकर- णलक्षणः, उपक्रम्यते वाऽनेन गुरुवाग्योगेनेत्युपक्रम इति करणसाधनः, उपक्रम्यतेऽस्मादिति वा विनीताविनेयविनयादित्युपक्रम इत्युपादान- साधनः, तथा च शिष्यो गुरुं विनयेनाराध्यानुयोगं कार्यक्रमात्मनाऽपादानार्थं वर्त्तत इति । एवं निक्षेपणं निक्षेपः निक्षिप्यते वा अनेनास्मिन्न- स्मादिति वा निक्षेपः न्यासः स्थापनेति पर्यायः, एवमनुगमनमनुगमः अनुगम्यतेऽनेनास्मिन्नस्मादिति वाऽनुगमः, सूत्रस्यानुकूलः परिच्छेद इत्यर्थः, एवं नयनं नयः नीयतेऽनेनास्मिन्नस्मादिति वा नयः, अनन्तधर्मात्मकस्य वस्तुनः एकांशपरिच्छेद इत्यर्थः। आह-एषामुपक्रमादिद्वाराणां किमित्येवं क्रम इति, अत्रोच्यते, न ह्यनुपक्रान्तं सदसमीपीभूतं निक्षिप्यते, न चानिक्षिप्तं नामादिभिरर्थतौऽनुगम्यते, न चार्थतौऽनुगमते नयैर्विचार्यत इत्यतोऽयमेव क्रम इति, उक्तं च-‘संबन्धसुपक्रमतः समीपमानीय रचितनिक्षेपम् । अनुगम्यतेऽथ शास्त्रं नयैरनेकप्रभेदैस्तु ॥१॥ तत्रोपक्रमो द्विप्रकारः-शास्त्रीय इतरश्च, तत्रैतराभिहितसयाऽऽह-‘से किं त’ मित्यादि (६०-४५) वस्तुतो भावितार्थमेव, यावत् ‘से किं तं जाणगसरीरभविष्यसरीरवद्भित्ते द्रव्योपक्रमे’ इत्यादि, त्रिविधः प्रज्ञप्तस्तथा-‘सच्चित्ते’ त्यादि, (६१-४६) द्रव्योपक्रम इति वर्त्तते, शेषाक्षरार्थः सच्चित्द्रव्योपक्रमनिगमनावसानः सूत्रसिद्ध एव, भावार्थस्त्वयमिह-‘सच्चित्ते’ त्यादि, द्रव्योपक्रमः द्विपदचतुष्पदापदभेदभिन्नः, एकैको द्विविधः-परिकर्मणि वस्तुविनाशे च, तत्र परिकर्म-द्रव्यस्य गुणविशेषपरिणामकरणं तस्मिन् सति, तद्यथा-घृताद्युपयोगेन नटादीनां वर्णा- उपक्रममि- क्षेपालु- योगनया- नां क्रमः ॥ २७ ॥
	*** अत्र ‘उपक्रम’स्य निक्षेपाः वर्णयते

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [६८-६९] / गाथा [७...]
प्रत सूत्रांक [६८-६९] गाथा ॥७..॥ दीप अनुक्रम [७८-७९]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ २९ ॥ पक्रम्यन्ते--योग्यतामापाद्यन्ते आदिशब्दादिनाशकारणगजेन्द्रवधादिपरिग्रहः ‘से त’ मित्यादि निगमनं । ‘से किं त’ मित्यादि, (६८-४८) कालस्य वर्तनादिरूपत्वान् द्रव्योपक्रम एवोपचारात् कालोपक्रम इति, चंद्रोपरागादिपरिज्ञानलक्षणो वा, यद्वा ‘जं ण’ मित्यादि, यन्नालिकादिभिः काल उपक्रम्यते--ज्ञानयोग्यतामापाद्यते, नालिका--घटिका, आदिशब्दात् ग्रहरादिपरिग्रहः, ‘से त’ मित्यादि निगमनवाक्यं, भावोपक्रमो द्विधा--आगमतो नोआगमतश्च, आगमतो ज्ञाता उपयुक्तः, नोऽआगमतस्तु प्रशस्तोऽप्रशस्तश्चेति, तत्राप्रशस्तो डोष्टिणिगणिकामा- त्यादीनां, एत्थोदाहरणानि-एगा मरुगिणी, सा वितेति-किह भूताओ सुहिताओ होज्जासि ? , तो जेठिता धूया सिक्खाविद्या, जहा-वरंती मत्थए पण्हीए आहणिज्जासि, ताए आहतो, सो तुट्ठो पादं मदितुमारट्ठो, ण दुक्खावियत्ति, तीए मायाए कहियं, ताए भणियं-जं करेहि तं करेहि, ण एस किंचि तुज्झ अवरज्जावित्ति, वितिया सिक्खाविद्या, तीएवि आहओ, सो झंखित्ता उवसंतो, सा भणति--तुमंभि वीमत्था विहर, णवरं झंखणओ एसोत्ति, तइया सिक्खाविद्या, तीएवि आहओ, सो रुट्ठो, तेण दढं पिट्ठियां धाडिया य, तं अकुलपुत्ती जा एवं करेसि, तीए मायाए कहियं, पच्छा कहवि अणुगसिओ-अम्ह एस कुलधम्मोत्ति, धूया य भणिया--जहा देवयस्स वट्ठिज्जासि, मा छड्ढिहिति । एगम्मि णयरे चउसट्ठिकळाकुसळा गणिया, तीए परभावोवक्रमणनिमित्तं रतिघरम्मि सव्वाओ पगतीओ नियनियवावारं करेमाणीओ आलिहाविद्याओ, तत्थ य जो जो वड्ढुहमाई एइ सो सो नियं २ सिप्पं पसंसति, णायभावो त सुअणुयत्तो भवति, अणुयत्तिओ य उवयारं गाहिओ खड्ढं खड्ढं दव्वजातं वितरेति, एसवि अपसत्थो भावोवक्रमो । एगम्मि णयरे कोई राया अससवाहणियाए सह अमच्चेण णिग्गओ, तत्थ य से अस्से- णऽवाघेणं खल्लिणे काइया बोसिरिया, खल्लरं वड्ढं, तं च पुढविथिरत्तणओ तहट्ठियं चेव रण्णा पडिनियत्तमाणेण सुइरं निज्झाइयं, चित्तियं चाणेण--इह तलागं सोइणं हवइत्ति, ण उण वुत्तं, अमच्चेणं इंगितागारकुसलेण रायाणमणापुच्छिय महासरं खणावियं चेव, पालीए आरामो अप्रशस्त- भावोप- क्रमः ॥ २९ ॥

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [७२-७३] / गाथा [७...]		
प्रत सूत्रांक [७२-७३] गाथा ॥७..॥ दीप अनुक्रम [८२-८३]	श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ३१ ॥	वस्तुसंहतिरिति भावः, इयमानुपूर्वी दशविधा-दशप्रकाराः प्रज्ञप्तास्तद्यथा ‘ नामानुपूर्वी ’ त्यादि, वस्तुतो भावितार्थत्वात्सूत्रसिद्धमेव तावद्यावत् ‘ उवणिहिया य ’ (७२-५१) ‘ अणोवणिहिया य ’ तत्र निधानं निधिर्न्यासो विरचना निक्षेपः प्रस्तावः स्थापनेति पर्यायाः, तथा च लोके-निधेहीदं निहितमिदमित्यर्थे निक्षेपार्थो गम्यते, उप-सामीप्येन निधानमुपनिधिः-विवक्षितस्यार्थस्य विरचनायाः प्रत्यासन्नता, उप-निधिः प्रयोजनमस्या इति प्रयोजनार्थे ठक् औपनिधिकी, एतदुक्तं भवति-अधिकृताध्ययनपूर्वानुपूर्व्यादिरचनाश्रयप्रस्तारोपयोगिनी औपनिधि-कीत्युच्यते, न तथा अनौपनिधिकी, ‘ तत्थ ण ’ मित्यादि, तत्र याऽसावौपनिधिकी सा स्थाप्या-संन्यासिकी तिष्ठतु तावद् अल्पतरवक्तव्यत्वा-त्तस्याः, किंतु यत्रैव बहु वक्तव्यमस्ति तत्र यः सामान्योऽर्थः सोऽन्यत्रापि प्ररूपित एव लभ्यत इति गुणाधिक्यसंभवात् सैव प्रथममुच्यत इति, आह च सूत्रकारः-‘ तत्थ ण ’ मित्यादि, तत्र याऽसावनौपनिधिकी सा नयवक्तव्यताश्रयणात् द्रव्यास्तिकनयमतेन द्विविधां प्रज्ञप्ता, नैगमव्यवहारयोः संग्रहस्य च, अयमत्र भावार्थः-इहौघतः सप्त नया भवन्ति, नैगमादयः, उक्तं च-नैगमसंग्रहव्यवहारकजुसूत्रशब्दसम-भिरूढैवंभूता नयाः ‘ एते च नयद्वयेऽवस्थाप्यन्ते-द्रव्यास्तिकः पर्यायास्तिकश्च, तत्राद्यान्वयो द्रव्यास्तिकः, शेषाः पर्यायास्तिक इति, पुनः द्रव्यास्ति-कोऽप्यौघतो द्विभेदः-अविशुद्धो विशुद्धश्च, अविशुद्धो नैगमव्यवहारौ विशुद्धः संग्रह इति, कथं?, येन नैगमव्यवहारौ कृष्णाद्यनेकगुणाधि-ष्ठितं त्रिकालविषयं अनेकभेदस्थितं नित्यानित्यं द्रव्यमित्येवंवादिनौ, संग्रहस्तु परमाण्वादिसामान्यवादीत्यलं विस्तरेण । ‘ से किं त ’ मित्यादि अत्राप्यल्पवक्तव्यत्वात् संग्रहाभिधानं पञ्चादिति, पञ्चविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा ‘ अर्थपदप्ररूपणते ’ त्यादि, (७३-५३) तत्र अर्थत इत्यर्थः तद्युक्तं-तद्विषयं तदर्थं वा पदं अर्थपदं तस्य प्ररूपणा-कथनं तद्भावेऽर्थपदप्ररूपणता, संज्ञासंज्ञिसम्बन्धप्ररूपणतेत्यर्थः, तथा भंगसमुत्की-र्त्तनता, इहार्थपदानामेव समुदितविकल्परूपणं भंगः भंगस्य भंगयोः सङ्गानां वा समुत्कीर्त्तनं-उच्चारणं भंगसमुत्कीर्त्तनं तद्भावे इति समासः,	आनुपूर्वी भेदाः ॥ ३१ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [७४] / गाथा [७....]
प्रत सूत्रांक [७४] गाथा ॥७..॥ दीप अनुक्रम [८४]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तिः ॥ ३२ ॥ तथा भङ्गोपदर्शना, इह यो भङ्गस्तेनार्थपदेन यैवार्थपदैरुपजायते तस्य तथोपदर्शनं २ तद्भावा इति विग्रहः, सूत्रतोऽर्थतश्च प्ररूपणेत्यर्थः, तथा समवतारः—इहानुपूर्वीद्रव्याणां स्वस्थानपरस्थानसमवतारान्वेषणाप्रकारः समवतार इति, तथानुगमः आनुपूर्व्यादीनामेव सत्पदप्ररूपणादिभिरनुयोगद्वारैरनेकधाऽनुगमनं अनुगम इति । ‘ से किं त ’ मित्यादि, (७४—५३) ‘ तिपदेसिए आणुपुव्वी ’ त्रिप्रदेशिकाः स्कन्धाः आनुपूर्व्यः, अयमत्र भावार्थः— इहादिमध्यान्तांशपरिग्रहेण सावयवं वस्तु निरूप्यते, तत्र कः आदि किं मध्यं कोऽन्त इति?, लोकप्रसिद्धमेव, यस्मात्परमस्ति न पूर्वं स आदिः, यस्मात्पूर्वमस्ति न परमंतः सः, तयोरेतत् मध्यमुपचरति, तदेतत् त्रयमपि यत्र वस्तुरूपेण मुख्यमस्ति तत्र गणनाक्रमः सम्पूर्ण इति कृत्वा पूर्वस्य पश्चादनुपूर्वं तस्य भाव आनुपूर्वी, एतदुक्तं भवति—संबन्धिषड्भावेते परस्परसापेक्षाः प्रवर्तन्ते इति यत्रैषां मुख्यो व्यपदेश्यव्यपदेशकभावोऽस्ति अयमस्यादिरयमस्यान्त इति तत्रानुपूर्वीव्यपदेश इति, त्रिप्रदेशादिषु संभवति नान्यत्रेति, यः पुनरसंसक्तं रूपं केनचिद्वस्त्वन्तरेण शुद्ध एव परमाणुस्तस्य द्रव्यतः अनवयवत्वात् आदिमध्यावसानत्वाभावात् अनानुपूर्वीत्वं, यस्तु द्विप्रदेशिकः स्कन्धस्तस्याप्याद्यन्तव्यपदेशः परस्परापेक्षयाऽस्तीति कृत्वा अनानुपूर्वीत्वमशक्यं प्रतिपन्नं, अथानुपूर्वीत्वं प्रसक्तं तदपि चावधिभूतवस्तुरूपस्यासंभवात् अपरिपूर्णत्वात् न शक्यते वक्तुमिति उभाभ्यामवक्तव्यत्वात् अवक्तव्यकमुच्यते, यस्मान्मध्ये सति मुख्य आदिर्लभ्यते मुख्यश्चान्तः परस्परांशकरेण, तदत्र मध्यमेव नास्तीति कृत्वा कस्यादिः कस्य वान्त इति कृत्वा व्यपदेशाभावात् स्फुटमवक्तव्यकं, ‘ तिपदेसिया आणुपुव्वीउ ’ इत्यादि, बहुवचननिर्देशः, किमर्थोऽयमिति चेत् आनुपूर्व्यादीनां प्रतिपदमनन्तव्यक्तिख्यापनार्थः, नैगमव्यवहारयोश्चेत्थंभूताभ्युपगमप्रदर्शनार्थ इति, अत्राह—एषां पदानां द्रव्यवृद्धयनुक्रमादेवमुपन्यासो युज्यते—अनानुपूर्वी अवक्तव्यकं आनुपूर्वी च, पश्चानुपूर्व्या च व्यत्ययेन, तत् किमर्थमुभयमुल्लंघ्यान्यथा कृतमिति, अत्रोच्यते, अनानुपूर्व्यपि व्याख्यानांगांमिति ख्यापनार्थं, किंचान्यत्—आनुपूर्वीद्रव्यबहुत्वज्ञापनार्थं अनौपनि- षिक्यानु- पूर्व्या अर्थपदं ॥ ३२ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [७५-८०] / गाथा [८]	
	प्रत सूत्रांक [७५-८०] गाथा ॥८॥ दीप अनुक्रम [८५-९१]	श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ३३ ॥ स्थानबहुलापनार्थं चादावानुपूर्व्या उपन्यासः, ततोऽल्पतरद्रव्यत्वादवक्तव्यकस्येत्यलं विस्तरेण । ‘सेत’ मित्यादि निगमनं, ‘एता ए ण’ मित्यादि, (७५-५५) एतयाऽर्थप्ररूपणया किं प्रयोजनामित्यत्राह- एतया भङ्गसमुत्कीर्तनता क्रियते, सा चैवमवगन्तव्या-त्रयाणामानुपूर्व्यादिपदानामेक- वचनेन त्रयो भङ्गाः, बहुवचनेनापि त्रयः, एते चासंयोगतः, संयोगेन तु आनुपूर्व्यानानुपूर्व्याश्चतुर्भङ्गाः, तथा आनुपूर्व्यवक्तव्यकयोरपि सैव, तथाऽनानुपूर्व्यवक्तव्यकयोश्चेति, त्रिकसंयोगतस्तु आनुपूर्व्यानानुपूर्व्यवक्तव्यकेष्वष्टभङ्गीति, एवमेते षड्विंशतिर्भङ्गाः, अत्राह-भङ्गसमुत्की- र्तनं किमर्थं ?, उच्यते, वक्तुरभिप्रेतार्थप्रतिपत्त्ये नयानुमतप्रदर्शनार्थं, तथाहि--असंयुक्तं संयुक्तं समानमसमानं अन्यद्रव्यसंयोगे(ऽसंयोगे) च यथा वक्ता प्रतिपादयति तथैवेमां प्रतिपाद्येते इति नयानुमतप्रदर्शनं, एषोऽत्र भावार्थः, भङ्गकास्तु ग्रन्थत एवानुसर्त्तव्याः, ‘ से त ’ मित्यादि निग- मनं, शेषमनिगूढार्थं यावत् ‘ तिपदेसेए आणुपुठ्ठी ’ त्यादि, त्रिप्रदेशिकोऽर्थः आनुपूर्वीत्युच्यते, एवमर्थकथनपुरस्सरः शेषभङ्गा अपि भाव- नीया इति, एतदुक्तं भवति-तैरेव भंगकाभिधानैस्त्रिप्रदेशपरमाणुपुट्टलद्विप्रदेशार्थकथनविशिष्टैस्तदभिधेयान्वाख्यानं भंगोपदर्शनतेति, आह-अर्थ- पदप्ररूपणाभंगसमुत्कीर्तनाभ्यां भंगोपदर्शनार्थताऽवगमाद्देहतस्तदभिधानमयुक्तमिति, अत्रोच्यते, न, उभयसंयोगस्य वस्त्वन्तरत्वात् नयमत- वैचित्र्यप्रदर्शनार्थत्वाच्चादोष इति, शेषं निगमनं सूत्रसिद्धमिति । ‘ से किं तं समेतारे ’ त्यादि (७९-५८) अवतरणमवतारः-सम्यग्- विरोधतः स्वस्थान एवावतारः समवतारः, इहानुपूर्वीद्रव्याणामानुपूर्वीद्रव्येष्वतारः न शेषेषु, स्वजातावेव वर्त्तन्ते न तु स्वजातिव्यतिरेकेणेति भावना, एवमनानुपूर्व्यादिष्वपि भावनीयमकृच्छ्रावसेया चाक्षरगमनिकेति न प्रतिपदं विवरणं प्रति प्रयास इति । ‘ से किं त ’ मित्यादि (८०-५९) अनुगमः-प्राग्निरूपितशब्दार्थ एव नवविधो-नवप्रकारः प्रज्ञप्रस्तथथा-‘ संतपदपरूवणा ’ गाहा (*८-५९) व्याख्या-सच्च तत्पदं च सत्पदं तस्य प्ररूपणं सत्पदप्ररूपणं तस्य भावः सत्पदप्ररूपणता-सदर्थगोचरा आनुपूर्व्यादिपदप्ररूपणता कार्या, तथा आनुपूर्व्यादिद्र- भोगोप- दर्शनता ॥ ३३ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [८०-८३] / गाथा [८]
प्रत सूत्रांक [८०-८३] गाथा ॥८॥ दीप अनुक्रम [९१-९४]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ३४ ॥ व्यप्रमाणं वक्तव्यं, तथाऽऽनुपूर्व्यादिद्रव्याधारः क्षेत्रं वक्तव्यं, तथा स्पर्शना वक्तव्या, क्षेत्रस्पर्शनयोरयं विशेषः--‘ एगपदेसोगाहं सत्तपदेसा य से फुसणा ’ कालध्यानपूर्व्यादिस्थितिकालो वक्तव्यः, तथा अन्तरं- स्वभावपरित्यागे सति पुनस्तद्भावप्राप्तिविरह इत्यर्थः, तथा भाग इत्या- नुपूर्व्याद्रव्याणि शेषद्रव्याणां कतिभाग इत्यादि, तथा भावो वक्तव्यः, आनुपूर्व्यादिद्रव्याणि कस्मिन् भावे वर्तन्ते इति, तथाऽल्पबहुत्वं वक्तव्यम्, आनुपूर्व्यादीनामेव मिथो द्रव्यार्थप्रदेशार्थोभयार्थैः, व्यासार्थं तु प्रत्ययवयवं ग्रन्थकार एव प्रपञ्चतो वक्ष्यते इति, तत्रायमवयवमधिकृत्याह- ‘ नेगमववहाराणं आणुपुर्व्विद्वद्वाइ किं अत्थि णत्थी ’ त्यादि, (८१-६०) कुतस्ते संशयः ?, घटादौ विद्यमाने खकुसुमादौ वाऽविद्यमाने वाऽविशेषेणाभिधानप्रवृत्तेः, तत्र निर्वचनमाह-‘नियमा अत्थि’ तथा वृद्धैरप्युक्तं-जम्हा दुविहाभिहाणं सत्थयमितरं व घडखपुण्फादी । विट्ठमओ से संका णत्थि व अत्थिचि सिस्सस्स ॥ १ ॥ अत्थिचि य गुरुवयणं अभिहाणं सत्थयं जतो सव्वं । इच्छाभिहाणपच्चयतुल्लभिधेया सदत्थ- मिणं ॥ २ ॥ ’ यथास्य सवर्थः स उक्त एव, द्वारं । द्रव्यप्रमाणमधुना-‘ नेगमववहाराणं आणुपुर्व्विद्वद्वाइ किं संखेज्जाइ ’ (८२-६०) इत्यादि निगमनान्तं सूत्रसिद्धमेव, असंख्येयप्रदेशात्मके च लोकेऽनन्तानामानुपूर्व्यादिद्रव्याणां सूक्ष्मपरिणामयुक्तत्वादवस्थानं भावनीयमिति, दृश्यते चैकगृहान्तर्वर्त्याकाशप्रदेशेष्वेकप्रभापरमाणुव्याप्तैष्वपि प्रतिप्रदीपं भवतामेवानेकप्रदीपप्रभापरमाणूनामवस्थानमिति, न च दृष्टेऽनुप- पन्नं नामेत्यलं प्रसङ्गेन, द्वारं । क्षेत्रमधुना, तत्रेदं सूत्रं ‘ नेगमववहाराणं आणुपुर्व्विद्वद्वाइ लोयस्स किं संखेज्जइभागे होज्जा ’ (८३-६०) इत्यादि प्रथमसूत्रं, एकानुपूर्व्याद्रव्योपक्षया तत्प्रमाणसंभवे सति प्रथमसूत्रं सुगमं, निर्वचनसूत्रं च ग्रन्थादेव भावनीयं, नवरं ‘ सव्वलोए वा होज्ज ’ चि यदुक्तं तत्राचित्तमहास्कन्धः सर्वलोकव्यापकः समयावस्थायी सकललोकप्रमाणोऽवसेय इति, ‘ णाणाद्वद्वाइ पडुच्च ’ इत्यादि, नानाद्रव्याण्यानुपूर्वीपरिणामवन्त्येव प्रतीत्य प्रकृत्य वाऽधिकृत्येत्यर्थः नियमात्-नियमेन सर्वलोके, न शेषभागेऽपि, ‘होज्ज’- सत्पदप्र- रूपणता द्रव्यप्रमाणं क्षेत्र- स्पर्शनानि ॥ ३४ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [८४-८५] / गाथा [८....]
प्रत सूत्रांक [८४-८५] गाथा ॥८..॥ दीप अनुक्रम [९५-९६]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ३५ ॥ ति आर्षित्वाद्भवन्ति वर्तन्ते इत्यर्थः, यस्मादेकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशे सूक्ष्मपरिणामपरिणतान्यनन्तान्यानुपूर्वद्विव्याणि विद्यन्ते इति भावना, अनानुपूर्वीअवक्तव्यकद्रव्ये तु एकं द्रव्यं प्रतीत्य संख्येयभाग एव वर्तन्ते, न शेषभागेषु, यस्मात्परमाणुरेकप्रदेशावगाढ एव भवति, अवक्तव्यकं त्वेकप्रदेशावगाढं द्विप्रदेशावगाढं च, नानाद्रव्यभावना पूर्ववदिति, द्वारं । साम्प्रतं स्पर्शनाद्वारावसरः, तत्रेदं सूत्रं-‘गेगमववहाराण ’-मित्यादि (८४-६५) निगमनान्तं निगदासिद्धमेव, नवरं क्षेत्रस्पर्शनयोरयं विशेषः-क्षेत्रमवगाहमात्रं स्पर्शना तु स्वचतसृष्वपि दिक्षु तद्बहिरपि वेदितव्येति, यथेह परमाणुरेकप्रदेशं क्षेत्रं सप्तप्रदेशा स्पर्शनेति, स्यादेतद्-एवं सत्यणोरेकत्वं हीयत इति, उक्तं च-‘ दिग् भागभेदो यस्यास्ति, तस्यैकत्वं न युज्यते ’ इत्येतदुक्तं, अभिप्रायापरिज्ञानात्, नष्टांशतः स्पर्शना नाम काचिद्, अपि तु नैरन्तर्यमेव स्पर्शनां ब्रूम इति, अत्र बहु वक्तव्यं तत्तु नोच्यते विस्तरभयादेति, द्वारं । साम्प्रतं कालद्वारं, तत्रेदं सूत्रं-‘ गेगमववहाराण ’ मित्यादि, (८५-६३) निगमनं पाठसिद्धमेव, णवरमियमित्यं भावणा-दोणं परमाणूणं एकोः परमाणू संजुतो समयं चिद्विऊण विजुत्तो, एवं आणुपुव्विद्वं जह-ण्णेण एगसमयं होति, उक्कोसेण असंखेज्जं कालं चिद्विऊण विजुत्तो, एवमसंखेज्जं कालं, णाणाद्व्वाइ पुण पडुच्च सव्वद्वा-सर्वकालमेव विद्यन्ते, अणाणुपुव्वीसु तु एगो परमाणू एगसमयं एकल्लगो होऊण एकेग वा दोहि वा बहुपरमाणूहि वा समं जुज्जइ, एवं जहण्णेणं एकं समयं होति, उक्कोसेण असंखेज्जकालं एकल्लगो होऊण समं जुज्जइ, एवमसंखेज्जं कालं, णाणाद्व्वाइ पुण पडुच्च सव्वकालं विज्जंति, एवं अवत्तव्वगेसुवि एगं दव्वं पडुच्च दो परमाणू एगसमयं ठाऊण विजुज्जंति, अण्णेण वा संजुज्जंति, एवं अवत्तव्वरादव्वं जहण्णेणं एकं समयं होज्जा, उक्कोसेण असंखेज्जं कालं चिद्विऊण विजुज्जंति संजुज्जंति वा, एवं असंखेज्जं कालं, णाणाद्व्वाइ पडुच्च सव्वद्वा चिद्वंति, द्वारं । अधुनाऽन्तरद्वारं, तत्रेदं सूत्रं-‘ गेगमववहाराणं आणुपुव्विद्व्वाणं अंतरं कालओ केधिरं होती-’ कालोऽन्तरं च ॥ ३५ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [८६] / गाथा [८...]
प्रत सूत्रांक [८६] गाथा ॥८...॥ दीप अनुक्रम [९७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ३६ ॥ त्यादि, (८६—६३) इह ज्यादिस्कन्धाख्यादिस्कन्धतां विहाय पुनर्यावता कालेन त एव तथा भवंतीत्यसावन्तरं, एगद्ववं आणुपुव्विद्ववं पडुच्च जहण्णेणं—सव्वत्थोवतया एगं समयं—काललक्खणं, कहं ? तिपदेसियादियाओ परमाणुमादी विउत्तो समयं चिट्ठिऊण पुणो तेण दव्वेण विस्ससापओगाओ तहेव संजुज्जइ, एवमेगं समयं अंतरंति, उक्कोसेणं—उक्कोसगतया अणंतं कालं, कहं ? ताओ चेव तिपदेसियादियाओ सो चेव परमाणुमाई विउत्तो अण्णेसु परमाणुअणुकोरेकोत्तरवृद्धया अनन्ताणुकावसानेषु स्वस्थाने प्रतिभेदमनन्तव्यक्तिवत्सु ठाणेसु उक्कोसमंतराधिकारातो असई (उक्कोस) ठितीए अच्छिऊण कालस्स अनन्तत्तणओ घंसणथोल-गाए पुणोवि नियमण चेव तेणं दव्वेणं पओगविस्ससाभावओ तहेव संजुज्जइति, एवमुक्कोसतो अणंतं कालं अंतरं भवति, णाणादव्वाइ पडुच्च णत्थि अंतरं, इह लोके सदैव तद्भावादिति भावना, अणाणुपुव्विचिंताए एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयंति, कहं?, एगो परमाणू अण्णेणं अणुमादिणा घडिऊण समयं चिट्ठिता विउज्जति एवं एगसमयमन्तरं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, कहं ?, अणाणुपुव्विदव्वं अण्णेण अणाणुपुव्विदव्वेण अवत्तव्वगदव्वेणं आणुपुव्विदव्वेण वा संजुत्तं उक्कोसद्वितियमसंखेज्जकालनियमितलक्खणं होऊण ठिति-अन्ते तओ भिण्णो नियमा परमाणू चेव भवति, अण्णदव्वाणवेक्खत्तणओ, एवं उक्कोसेणं असंखेज्जकालंति, एत्थ चोदगो भणति-णणु अणंतपदेसगाणुपुव्वीदव्वसंजुत्तं खंडखंडेहि विचडिऊण अणुकादिभावमपरित्यजंदवान्यान्यस्कन्धसम्बन्धस्थित्यपेक्षयाऽस्यानन्तकालमेवान्तरं कस्मान्न भवति इति, अत्रोच्यते, परमसंयोगस्थितेरप्यसंख्येयकालादूर्ध्वमभावादणुत्वेन तस्य संयुक्त्वादणुत्वत एव वियोगभावादिति, कथ-सिद्धं ज्ञायत इति चेदुच्यते, आचार्यप्रवृत्तेः, तथाहि-इदमेव सूत्रं ज्ञापकमित्यलं चसूयति । ‘ णाणादव्वाइ ’ तु पूर्ववत्, अवत्तव्वगचिंताए एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं एवं-दुपरमाणुखंधो विउज्जिऊण एगं समयं ठाऊण पुणो संजुज्जइ, अण्णेण वा आणुपुव्विदिणा आनुपूर्व्या- दीनामन्तरं ॥ ३६ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [८७-८८] / गाथा [८....]
प्रत सूत्रांक [८७-८८] गाथा ॥८..॥ दीप अनुक्रम [९८-९९]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ३७ ॥ संजुज्जय समयमेगं तद्वा चिट्ठिऊण पुणो विजुज्जइति, अवत्तव्वगं चेव भवतीत्यर्थः, उक्कोसेणं अणंतकालं, कहां ? एगमवत्तव्वगदव्वं अवत्तव्वगत्तेण विजुज्जिऊण अण्णेसु परमाणु यगुग्रायेकोत्तरवृद्ध्याऽनन्ताणुकावसानेषु स्वस्थानप्रतिभेदमनन्तव्याक्तिवत्सु ठाण्णेषुकोसंतराधिकारान् असति उक्कोसगठित्तीए अक्खिऊण कालस्स अणंतत्तणओ वंसणपोलणाओ पुणोवि ते चेव परमाणू विस्ससापओगतो तद्देव जुज्जंति, एवमुक्कोसतो अणंतं कालं अंतरं हवति, णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतर, इह लोके सदैव तद्वावादिती भावना, द्वारं । इदानीं भागद्वारं, तत्रेदं सूत्रं ‘ नेगमववहाराणं आणुपुव्विदव्वाइं सेसदव्वाणं कतिभागे होज्जा ’ (८७-६५) इत्यादि, ‘ सेसदव्व ’ ति अण्णुपुव्विदव्वा अवत्तव्वगदव्वा य, यद्वा एको रासी कओ ततो पच्छा चतुरा, एत्थ णिदरिसणं इमे-सतस्स संखेज्जतिभागे पंच, पंचभागे सतस्स बीसा भवन्ति, सतस्स असंखेज्जतिभागो दस, दसभागे दस चेव भवन्ति, सतस्स संखेज्जेषु भागेषु दोमाइएसु पंचभागेसु चत्तालीसादी भवन्ति, सतस्स असंखेज्जेषु भागेषु अट्ठसु दसभागेसु असीति भवति, चोदग आहं-णणु एतेण णिदंसणेण सेसगदव्वाण अणुपुव्विदव्वा थोवतरा भवन्ति, जतो सतस्स असीति थोवतरात्ति, आचार्य आह-ण मया भण्णइ तद्वागसमा ते दट्ठव्वा, तद्भागत्थेषु वा दव्वेसु ते सगा, किंतु सेसदव्वाणं आणुपुव्विदव्वा असंखेज्जेषु भागेषु अधिया भवन्तीति वक्कसेसो, सेसदव्वा असंखेज्जभागे भवन्तीत्यर्थः, अण्णुपुव्विदव्वा अवत्तव्वगदव्वा य आणुपुव्विदव्वाणं असंखेज्जभागे भवन्ति, सेसं सुत्तसिद्धमिति (भाग) द्वारं । साम्प्रतं भावद्वारं, तत्रेदं सूत्रं-‘ नेगमववहाराणं आणुपुव्विदव्वाइं कयरंमि भावे होज्ज ’ तीत्यादि (८८-६६) इह कर्मविपाक उदयः उदय एव औदयिकः स चाष्टानां कर्म-प्रकृतीनामुदयः तत्र भवस्तेन वा निर्वृत्त औदयिकः, उपशमो-मोहनीयकर्मणोऽनुदयः स एवौपशमिकस्तत्र भवस्तेन वा निर्वृत्त इति, क्षयः-कर्मणोऽत्यन्ताविनाशः स एव क्षायिकस्तत्र भवस्तेन वा निर्वृत्त इति, कर्मण एव कस्यचिदंशस्य क्षयः कस्यचिदुपशमः ततश्च क्षयश्चापशसश्च नेगमववहाराभ्यां व्यानुपूर्वी ॥ ३७ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [९०-९३] / गाथा [८....]
प्रत सूत्रांक [९०-९३] गाथा ॥८..॥ दीप अनुक्रम [१०१- १०४]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्ती ॥ ३९ ॥ दिसु भावेयव्वं, सव्वण्णुव्वसतो य सद्धेयं, नान्यथावादिनो जिनाः, ‘पदेसट्ठयाए सव्वत्थोवाइ णेगमव्वहाराण’ मित्यादि, स्तोक्तत्वे कारणं ‘अपदेसट्ठयाए’ ति अपदेशार्थत्वेन नास्य प्रदेशा विद्यन्त इत्यप्रदेशः-परमाणुः, उक्तं च-‘परमाणुरप्रदेश’ इति तद्भावस्तेन, अणोर्निरवयवत्वादित्यर्थः, आह-प्रदेशार्थतया सर्वस्तोकानीत्यभिप्राये अपदेशार्थत्वेनेति कारणाभिधानमयुक्तं, विरोधान्, स्वभावो हि हेतुर्यदि प्रदेशार्थता कथमप्रदेशार्थता इति, अत्रोच्यते, आत्मीयैकप्रदेशव्यतिरिक्तप्रदेशान्तरप्रतिषेधापेक्षा ह्यप्रदेशार्थता, न पुनर्निजैकप्रदेशप्रतिषेधापेक्षापि, धर्मिण एवाप्रसङ्गाद्विचारैवैयर्थ्यप्रसंगाद् अलं । विस्तरेण ‘अवत्तव्वगदव्वाइ पदेसट्ठयाए विसेसाधियाइ’ अनांनुपूर्वद्विष्येभ्य इति, अत्र विनेयासंमोहार्थमुदाहरणं बुद्धीए सयमेत्तं अवत्तव्वगदव्वा कया, अणाणुपुण्ड्रिदव्वा पुण दिवड्ढुसयमेत्तगा, एवं द्रव्यत्वेन विशिष्टविशेषाधिका भवन्ति, पदेसत्तणे पुणा अणाणुपुण्ड्रिदव्वा अप्पणो दव्वट्ठताए तुल्ला चेव, अपदेसत्तणओ, विसिद्धविसेसाधिता(अवत्तव्वया)दुसयमेत्ता भवन्ति, आणुपुण्ड्रिदव्वाइ अपदेसट्ठताए अणंतगुणाइ, तेहिंतोवि पदेसट्ठताए आणुपुण्ड्रिदव्वाइ अणंतगुणाइ, कथं?, उच्यते, आणुपुण्ड्रिदव्वाणं टाणवड्ढुत्तणओ, तस्मिं च संख्या अणंतपदेसत्तणओ, उभयार्थता सूत्रसिद्धेव ‘से त’ मित्यादि निगमनद्वयं, ‘से किं त’ मित्यादि (९०-६९) इह सामान्यमात्रसंप्रहणशीलः संप्रहः, शेषं सूत्रसिद्धं यावत् ‘तिपदेसिया आणुपुण्ड्री’ त्यादि, इह संप्रहस्य सामान्यमात्रप्रतिपादनपरत्वाद्यावन्तः केचन त्रिप्रदेशिकास्ते त्रिप्रदेशिकत्वसामान्याव्यतिरेकात् व्यतिरेके च त्रिप्रदेशिकत्वानुपपत्तेः सामान्यस्य चैकत्वादेकैव त्रिप्रदेशिकानुपूर्वीति, एवं चतुष्प्रदेशिकादिष्वपि भावनीयं, पुनश्च विशुद्धतरसंप्रहापेक्षया सर्वासामेवानुपूर्वीत्वसामान्यभेदादेकैवानुपूर्वीति, एवमनानुपूर्व्यवक्तव्यकत्वपि स्वजात्यभेदतो वाच्यमेकत्वमिति ‘से त’ मित्यादि निगमनं, बहुत्वाभावाद्बहुवचनभावः ‘एताए ण’ मित्यादि (९२-७०) पाठसिद्धं, यावत् ‘अत्थि आणुपुण्ड्री’ त्यादि सप्त भंगाः, व्यक्तिबहुत्वाभावाद्बहुवचनानुपपत्तिः शेषभंगाभाव इति, एवं भंगोपदर्शनायामपि भावनीयं। ‘से किं तं संप्रहणद्र- व्यानुपूर्वी ॥ ३९ ॥

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [९६-९७] / गाथा [९....]
प्रत सूत्रांक [९६-९७] गाथा ॥९..॥ दीप अनुक्रम [१०९- ११०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ४१ ॥ पुण्ड्रिद्व्याहं लोयस्स किं संखेज्जतिभागे होज्जा ' इत्यादी निर्वचनसूत्रं ' नियमा सव्वलोए होज्जा ' सामण्णवेक्खाए आणुपुव्वीए एगत्तणओ सव्वगयत्तणओ य, एवमण्णपुण्ड्रिअवत्तव्वगावि भाणितव्वा । कुसणावि एवं चेव भाणितव्वा, कालतो पुण सव्वद्धं, आणुपुव्वी-सामान्यस्य सर्वकालमेव भावात्, एवमण्णपुण्ड्रिअवत्तव्वगावि भाणियव्वा, अंतरचिन्ताप णत्थि अन्तरं, प्रयोजनमनन्तरोक्तमेव, भाग-द्वारेऽपि नियमात् त्रिभागो, जेण तिण्णि चेवेत्थ राक्षी, एत्थ चोदगो भगति-गणु आदीए अवत्तव्वगेहिंतो अण्णपुव्वी विसेसाधिता तेहिंतो आणुपुव्वी असखेज्जगुणा, आचार्य आह--तं नेगमव्वहाराभिण्णायतो, इमं पुग संगहाभिण्णायतो भाणितं, किंचान्यत्-जहा एगस्स रण्णो तओ पुत्ता, तोसिं अस्से सग्गन्ताणं एगस्स एगो आसो दिण्णो, सो छ सहस्से लब्धमि, विवियस्स दो आसा दिण्णा, ते तिण्णि तिण्णि सहस्से लब्धमि, तइयस्स बारस आसा दिण्णा, ते पंच पंच सए लब्धमि, विसमावि ते मुह्मावं पडुच्च विभागपडिता भवन्ति, एवं आणुपुव्वि-मादीवि दव्वा आणुपुव्विअण्णपुण्ड्रिअवत्तव्वगतिभागसमत्तणतो नियमा तिभागेत्ति भणितं ण दोसो, सादिपरिणाभिण्ण भावे पूर्ववत्, गता अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी । ' से किं त ' मित्यादि, अथ कथमौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी ? औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञता, तद्यथा--' पूर्वानुपूर्वी ' त्यादि (९६-७३) तस्मात्प्रथमात्प्रभृति आनुपूर्वी अनुक्रमः परिपाटी पूर्वानुपूर्वी, पाश्चात्यान्-चरमादारभ्य व्यत्य-येनैवानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी, न आनुपूर्वी अनानुपूर्वी यथोक्तप्रकारद्वयातिरिक्तरूपेत्यर्थः, ' से किं त ' मित्यादि. (९७-७३) तत्र द्रव्यानु-पूर्व्यधिकारात् धर्मास्तिकायादीनामेव च द्रव्यत्वादिदमाह--' धम्मस्थिकाए ' इत्यादि, तत्र जीवपुद्गलानां स्वाभाविके क्रियावत्त्वे गतिपरिण-तानां तत्त्वभावधारणाद्धर्मः, अस्तयः-प्रदेशास्तेषां कायः-संघातः अस्तिकायः धर्मासावस्तिकायश्चेति समासः, तथा जीवपुद्गलानां स्वाभा-विके क्रियावत्त्वे तत्परिणतानां तत्त्वभावाधारणाद्धर्मः, शेषं धर्मास्तिकायवत्, तत्र सर्वद्रव्यस्वभावाऽऽदीपनादाकाशं, स्वभावेनावस्थानादि- औपानि- धिकी द्र- व्यानुपूर्वी ॥ ४१ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [९६-९७] / गाथा [९]
प्रत सूत्रांक [९६-९७] गाथा ॥९..॥ दीप अनुक्रम [१०९- ११०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ४२ ॥ त्यर्थः, आङ्गशब्दे मर्यादाभिबिधिव्याची, मर्यादायामाकाशे भवन्ति भावाः स्वात्मनि च, तत्संयोगेऽपि स्वभाव एवावतिष्ठन्ते नाकाशभावमेव यान्ति, अभिविधौ तु सर्वभावव्यापनादाकाशं, सर्वात्मसंयोगादिति भावः, शेषं धर्मास्तिकायवत्, तथा जीवति जीविष्यति जीवितवान् जीवः, शेषं पूर्ववत्, तथा पूरणगलनधर्माणः पुद्गलाः त एवास्तिकायः पुद्गलास्तिकाय इत्यनेन सावयवानेकप्रदेशिकस्कन्धग्रहोऽप्यव- गन्तव्यः, तथाऽद्वैत्यं कालवचनः स एव निरंशत्वादतीतानागतयोर्विनिष्ठानुत्पन्नत्वेनासत्त्वात्समयः, समूहाभाव इत्यर्थः, आवलिकादयः सन्तीति चेत्, न, तेषां व्यवहारमात्रतयैव शब्दात्, तथाहि-नानेकपरमाणुनिर्वृत्तस्कन्धसमूहवत् आवलिकादिषु समयसमूह इति । आह-एषां कथमस्तित्वमवगम्यते ? इति, अत्रोच्यते, प्रमाणात्, तच्चेदं प्रमाणं-इह गतिः स्थितिश्च सकललोकप्रसिद्धा कार्यं वर्तते, कार्यं च परिणाम-पेक्षाकारणायत्तात्मलाभं वर्तते, घटादिकार्येषु तथा दर्शनात्, तथाच सृष्टिपण्डभावेऽपि दिग्देशकालाकाशप्रकाशाद्यपेक्षाकारणमन्तरेण न घटो भवति, यदि स्यान्मृत्पिण्डमात्रादेव स्यात्, न च भवति, गतिस्थिती अपि जीवपुद्गलाख्यपरिणामिककारणभावेऽपि न धर्मास्तिकायाख्योपेक्षा-कारणमन्तरेण भवत एव, यतश्च भावो दृश्यते अतस्तत्सत्ता गम्यत इति भावार्थः, गतिपरिणामपरिणतानां जीवपुद्गलानां गत्युपपन्नमको धर्मास्तिकायः मत्स्यानामिव जलं, तथा स्थितिपरिणामपरिणतानां स्थित्युपपन्नमकः अधर्मास्तिकायः मत्स्यानामिव मेदिनी, विवक्षया जलं वा, प्रयोगगतिस्थिती अपेक्षाकारणवत्यौ कार्यत्वाद् घटवत्, विपक्षल्लोकोक्त्यनुपि रमभावो वेत्यलं प्रसंगेन, गमनिकामात्रमेतत् । आह-आकाशा-स्तिकायसत्ता कथमवगम्यते ?, उच्यते, अवगाहदर्शनात्तथा चोक्तं-‘ अवगाहलक्षणमाकाश ’मिति, आह-जीवास्तिकायसत्ता कथमवग-म्यते ?, उच्यते, अवग्रहादीनां स्वसंवेदनसिद्धत्वात्, पुद्गलास्तिकायसत्ताऽनुमानतः, घटादिकार्योपलब्धेः सांख्यवहारिकप्रत्यक्षतश्चीत, आह-कालसत्ता कथमवगम्यते ?, उच्यते, बहुलचम्पकाशोकादिपुष्पफलप्रदानस्य नियमेन दर्शनात्, नियामकश्च काल इति, आह-पूर्वानुपूर्वी- पङ्- द्रव्याणि तत्क्रमश्च ॥ ४२ ॥

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [९८-१००] / गाथा [१०]
प्रत सूत्रांक [९८- १००] गाथा ॥१०॥ दीप अनुक्रम [१११- ११५]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हरि.वृत्तौ ॥ ४५ ॥ ति, एवं यावदसंख्येयप्रदेशावगाढोऽनन्तप्रदेशिकादिरानुपूर्वीति, ‘एगपदेसावगाढोऽणानुपुत्रि’ ति एकप्रदेशावगाढः परमाणुः यावद- नन्ताणुकस्कन्धो वाऽनानुपूर्वी, ‘दुपदेसोगाढे अवत्तव्वए’ द्विप्रदेशावगाढो द्वयणुकादिरवत्तव्वकं, एत्थावगाढो दव्वणं इमेण विहिणा-अणानुपुत्रिदव्वणं परमाणुं नियमा एगम्मि चैव पदेसेऽवगाढो भवति, अवत्तव्वयदव्वणं पुण दोपदेसियाणं एगम्मि वा होसु वा, आणुपुत्रिदव्वणं पुण तिपदेसिगादीणं जहण्णेणं एगम्मि पदेसे उक्कोसेणं पुण जो खंधो जत्तिएहिं परमाणुहिं गिष्फण्णो सो तत्तिएहिं चैव पएसेहिं ओगाहति, एवं जाव संखेज्जासंखेज्जपदेसिओ, अणंतपदेसिओ पुण खंधो एगपदेसारद्धो एगपदेसुत्तरयुद्धीए उक्कोसओ जाव असंखेज्जेसु पदेसेसु ओगाहति, नानन्तेपु, लोकाकाशस्यासंख्येयप्रदेशात्मकत्वात्परतश्चावगाहनाऽयोगादित्यलं प्रसंगेन, शेषं सूत्रसिद्धं यावत् णेगमववहाराणं आणुपुत्रिदव्वणं किं संखेज्जाइ असंखेज्जाइ अणंताइ?, नेगमवव० आणु० नो संखेज्जाइ असंखेज्जाइ नो अणंताइ, एवं अणानुपुत्रिदव्वणिवि, तत्र असंखेयति क्षेत्रप्राधान्यात् द्रव्यावगाहक्षेत्रस्यासंख्येयप्रदेशात्मकत्वात्तुल्यप्रदेशावगाढानां च द्रव्यतया बहूनामप्ये- कत्वादिति । क्षेत्रद्वारे निर्वचनसूत्रं-‘एगं दव्वं पडुच्च लोगस्स संखेज्जतिभागे वा होज्जे’ त्यादि, तथाविधस्कन्धसद्भावाद्, एवं शेषेष्वपि भावनीयं, यावद् ‘देसूणे वा लोए होज्ज’ ति आह-अचित्तमहास्कन्धस्य सकललोकव्यापित्वात्क्षेत्रप्राधान्याविवक्षायामपि कस्मात्संपूर्ण एव लोको नोच्यते? इति, उच्यते, सर्वैवानानुपूर्ववत्तव्वकद्रव्यसद्भावान् जघन्यतोऽपि तत्प्रदेशत्रयेणोनत्वाद् व्याप्तौ सत्यामपि तत्प्रदेशेष्वानुपूर्व्याः प्राधा- न्याभावाद्, उक्तं च पूर्वमुनिभिः-“महखंधापुण्णेवी अवत्तव्वगऽणानुपुत्रिदव्वणं । जंदेसोगाढां तदेसेणं स लोगोणो ॥ १ ॥ ण य तत्थ तस्स जुज्जइ पाधण्णं वावि ति वि (तंमि) देसंमि । तप्पाधन्नत्तणओ इहराऽभावो भवे तासिं ॥ २ ॥” अधिकृतानुपूर्वीस्कन्धप्रदेशकल्प- नातो वा देशोन एव लोक इति, यथोक्तमजीवप्रज्ञापनायां-“धम्मत्थिकाए धम्मत्थिकायस्स देसो धम्मत्थिकायस्स पदेसे, एवमधम्मगासे, क्षेत्रानुपूर्वी ॥ ४५ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [९८-१००] / गाथा [१०]
प्रत सूत्रांक [९८- १००] गाथा ॥१०..॥ दीप अनुक्रम [१११- ११५]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हरि.वृत्तौ ॥ ४६ ॥ पुगलेसुवि ” इह चावयवावयविरूपत्वाद्दस्तुनः अवयवावयविनोश्च कथंचिद्देशप्रदेशकल्पना साध्वीति, न च देश एव देशी सर्वथा, तदे- कत्वे देशमात्र एवासौ स्थदेशो वा देशिमात्र इति, अतः स्वदेशस्यैव कथंचिदन्यत्वोद्देशो नो लोक इति । किंच-स्वेत्ताणुपुष्पीए आणुपुष्पीअव- त्तवगद्ववविभागत्तणओ ण तेसिं परोप्परमवगाहो, परिणमंति वा, ण वा तेसिं खंधभावो अत्थि, कथं?, उच्यते, पदेसाण अचलभावत्तणओ, सतो य अपरिणामत्तणओ, तेसिं च भावप्पमाणनिच्चत्तणओ, अतो स्वेत्ताणुपुष्पीए एगं दव्वं पडुच्च देसूणे लोकोत्ति भणियं, दव्वाणुपु- ष्पीए पुण दव्वाण एगपदेसावगाहत्तणओ एगावगाहेऽवि दव्वाण आयभावेणं भिन्नत्तणओ परिणामत्तणओ खंधभावपरिणामत्तणओ य, अतो एगं दव्वं पडुच्च सव्वलोकोत्ति, भणितं च-“ कह णवि दविए चेऽवेवं खंधे सविक्कखया पिधत्तेणं । दव्वाणुपुष्पिताहं परिणामइ खंधभावेण॥१॥” अत्रोच्यते, बादरपरिणामेसु आनुपुष्पिदव्वपरिणामो चेव भवति, नो अणाणुपुष्पिअवत्तवगदव्वेणं, जओ बादरपरिणामो खंधभावे एव भवति, ते पुण सुहुमा ते तिविहावि अत्थि, किंच-जया अचित्तमहाखंधपरिणामो भवति तदा ते सव्वे सुहुमा आयभावपरिणामं अमुंचमाणा तत्परिणता भवन्ति, तस्स सुहुमत्तणओ सव्वगतत्तणओ य, कथमेवं ?, उच्यते, छायातपोद्योतबादरपुद्गलपरिणामवत्, स्फटिककृष्णादिवर्णोपरंजितवत्, सीसो पुच्छइ-दव्वाणुपुष्पिए एगदव्वं सव्वलोगावगाहंति, कहं पुण महं एवगं वा भवति ?, उच्यते, केवालिसमुद्धातवत्, उक्तं च-“केवालिव- ग्धाओ इव समयट्ठम पूर रेयति य लोये । अचित्तमहाखंधो वेला इव अतर णियतो य ॥ १ ॥” अचित्तमहाखंधो सलोगमेत्तो वीससापरि- णतो भवति, तिरियमसंखेज्जजोयणप्पमाणो अणियतकालठीती वट्टो उड्डमहो चोइसरज्जुप्पमाणो सुहुमपोग्गलपरिणामपरिणओ पढमसमए दंडो भवति वित्तिए कवाढं तइए मंथं करेइ चउत्थे लोगपूरणं पंचमादिसमएसु पडिलोमं संहारेण अट्टसमयंते सव्वहा तस्स खंधओ विणासो, एस जलनिहिबेला इव लोगपूरणरेयकरणेण ठितो लोगपुग्गलाणुभावो, सव्वण्णुबयणतो सद्धेतो इत्यलं प्रसंगेन । ‘णाणादव्वाहं पडुच्च णियमा वेत्ताणुपुष्पी ॥ ४६ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०१] / गाथा [१०....]
प्रत सूत्रांक [१०१] गाथा १०.. दीप अनुक्रम [११६]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ४७ ॥ सञ्चलोएनी' त्यादि (१०१-७०), अस्य भावना-व्यादिप्रदेशावगाढैर्द्रव्यभेदैः सकललोकस्यैव व्याप्तत्वादिति । अनानुपूर्व्यालोचनायां त्वेकं द्रव्यं प्रतीत्य असंख्येयभाग एव, तस्य नियमत एवैकप्रदेशावगाढत्वात्, जाणादन्वाइं पञ्चुच्च गियमा सञ्चलोएति. विशिष्टैकपरिणाम-वद्भिः प्रत्येकप्रदेशावगाढैरपि समप्रलोकव्याप्तः, आधेयभेदेन वाधारभेदोपपत्तेः, वस्तुनञ्चानन्तधर्मोत्पत्तत्वात्तत्सहकारिकारणसन्निधाने सति तस्य २ धर्मस्याभिव्यक्तेः, धर्मिभेदेन च क्षेत्रप्रदेशविशेषोऽप्यानुपूर्वीतराभिधानप्रवृत्तेरपि सूक्ष्मधिया भावनीयं । एवं अवत्तवगदन्वाणिवि, भावार्थ उक्त एव, नवरमवक्तव्यकैकद्रव्यं द्विप्रदेशावगाढं भवति, स्पर्शनायां तु यथाऽऽकाशप्रदेशानामेव स्पर्शना, ततः स्वत्वानुपूर्व्यादिद्रव्याधारत्वादिष्टानामेव षड्विधास्थितानंतरप्रदेशैरेव सह वाऽवगन्तव्या, इह पुनः किल सूत्राभिप्रायो यथाऽऽकाशप्रदेशावगाढस्य द्रव्यस्यैवं चिन्तनीयेति वृद्धा व्याचक्षते, भावार्थस्त्वनंतरद्वाराणुसारतो भावनीय इति । कालचिन्तायामपि यथाकाशप्रदेशानामेव कालस्थित्यते ततः किल नभःप्रदेशानामनायपर्यवसितत्वात् स एव वक्तव्यः, सूत्राभिप्रायस्त्वानुपूर्व्यादिद्रव्याणामेवावगाहस्थितिकालाश्चिन्त्यते इत्येकं, न चेह क्षेत्रखंडानामपि विशिष्टपरिणामपरिणताधेयद्रव्याधारभावेऽपि चिन्त्यमानो विरुध्यत इति, युक्तिपतितश्चायमेव, क्षेत्रानुपूर्व्यधिका-रादिति, तत्र 'एगं दठ्वं पडुच्च जहन्नेणं एकं समय' मित्यादि, अस्य भावना-द्विप्रदेशावगाढं तदन्यसन्निपाते त्रिप्रदेशावगाढं भूत्वा समयान-न्तरमेव पुनर्द्विप्रदेशावगाढमेव भवति, चत्कृष्टतत्त्वसंख्येयं कालं भूत्वेति, आधेयभेदाच्चेहाधारभेदो भावनीय इति, शेषं भावितार्थः ॥ अन्तर-चिन्ता प्रकटार्थः, नवरमुत्कृष्टतः असंख्येयं कालं, नानन्तं यथाऽनानुपूर्व्यामिति, कस्मात् ? सर्वपुद्गलानामवगाहक्षेत्रस्य स्थितिकालस्य चासंख्ये-यत्वात्, क्षेत्रानुपूर्व्यधिकारस्य व्याख्येयत्वात्, क्षेत्रानुपूर्व्यधिकारे च क्षेत्रप्राधान्याद्, असंख्येयकालादारतश्च पुनस्तत्प्रदेशानां तथाविधाधेय-भावेन तथाभूताधारपरिणामभावादित्यतिगहनमेतद्वद्वितैर्भावनीयमिति ॥ भागचिन्तायामानुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्येभ्योऽसंख्येयेषु भागेष्वि- क्षेत्रानुपूर्वी ॥ ४७ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०१] / गाथा [१०....]
प्रत सूत्रांक [१०१] गाथा ॥१०..॥ दीप अनुक्रम [११६]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हरि.वृत्तौ ॥ ४८ ॥ त्युक्तं, अत्रैके व्याचक्षते-यदा यदा स्वप्रदेशानुपुञ्जिमादि चिदिज्जति तदा तदा पण्यवणाभिप्पायपरिकप्पणाए समूणातिरिक्तभागो भाणितव्वो, जया पुण अवगाहिद्ववा तदा संखेज्जेसु भागेसुत्ति, जहा दव्वाणुपुव्वीए तहा भाणितव्वं, तत्र विनेयजनानुग्रहार्थं क्षेत्रानुपूर्व्या एव प्रकान्तत्वात् द्रव्यानुपूर्व्यास्तूपाधित्वेन गुणीभूतत्वात् क्षेत्रानुपूर्व्यमेवाधिकृत्य प्रज्ञापनाभिप्रायः प्रतिपाद्यते-तत्रानुपूर्व्यद्रव्याणि क्षेत्रद्रव्येभ्योऽसंख्येयभागेरधिकानीति वाक्यशेषः, इत्थं चैतदंगीकर्त्तव्यं, यस्मादनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणि तेभ्योऽसंख्येयभागेरधिकानीति, क्षेत्रानुपूर्व्यधिकारात् क्षेत्रस्वण्डान्यधिकृत्येयमालोचना, ततः स्वत्वानुपूर्व्यादिद्रव्याधारलोकक्षेत्रस्य चतुर्देशरज्ज्वात्मकत्वेन तुल्यत्वात्तदंतर्गतप्रदेशानां च सर्वेषामेवानुपूर्व्यादिभिर्दे (व्यैवर्त्यामत्वात् समत्वं द्र) व्याधारलोकक्षेत्रस्य प्रत्युत ज्यादिप्रदेशसमुदायेष्वाकाशस्वण्डेषु प्रतिस्वण्डमेकैकानुपूर्व्यगणनादानुपूर्व्यगणमेवालपता युक्तिमती, अवक्तव्यानानुपूर्व्याणां तु द्विप्रदेशैकैकप्रदेशिकस्वण्डानां गणनात् बहुता, तात्किमर्थं विपर्यय इति?, अत्रोच्यते, इह ज्यादिप्रदेशाधेयपरिणामद्रव्याधारत्वेन क्षेत्रानुपूर्व्योऽभिधीयते, तत्र त्रिप्रदेशाभिधेयपरिणामवन्त्यनंतान्यपि द्रव्याणि विशिष्टैकत्रिप्रदेशसमुदायलक्षणक्षेत्रव्यवस्थितान्येकैका क्षेत्रानुपूर्व्या, एवं चतुःप्रदेशाधेयपरिणामवन्त्यपि असंख्येयप्रदेशाधेयपरिणामवत्पर्यंतानि विशिष्टैकचतुःप्रदेशादसंख्येयप्रदेशान्तसमुदायलक्षणक्षेत्रव्यवस्थितानि प्रतिभेदमेकैकैवेति, किन्तु यदेकं त्रिप्रदेशसमुदायलक्षणमानुपूर्व्यव्यपदेशार्हं क्षेत्रं तदेव तद्व्यनंतचतुःप्रदेशाधेयपरिणामवद्द्रव्याध्यासितमेकैकक्षेत्रप्रदेशवृद्ध्या परिणामभेदतो भेदेनानुपूर्व्यव्यपदेशमर्हति, असंख्येयाश्च प्रभेदकारिणः क्षेत्रप्रदेशा इति, न चायमवक्तव्यकानानुपूर्व्याणां न्यायः संभवति, नियतप्रदेशात्मकत्वाद्दतोऽसंख्येयभागेरधिकानीति स्थितं, न च तज्जेनैव स्वभावेन त्रिप्रदेशाधेयपरिणामवतां द्रव्याणामाधारता प्रतिपद्यते, नैव चतुःप्रदेशाधेयपरिणामवतामपि, तेषामपि त्रिप्रदेशाधेयपरिणामोपपत्तेः विपर्ययो वा, तदेवमनन्तधर्मात्मके वस्तुनि सति विवक्षिततरधर्मप्रधानोपसर्जत्तद्वारेणाखिलमिह भावनीयमित्युक्तं कालानु- पूर्वी ॥ ४८ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०२-१०३] / गाथा [१०...]
प्रत सूत्रांक [१०२- १०३] गाथा ॥१०..॥ दीप अनुक्रम [११७- ११८]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ४९ ॥ प्रसंगेन । भावचिन्तायामानुपूर्वीद्रव्याणि नियमान् सादिपारणामिके भावे, विशिष्टाधेयाधारभावस्य सादिपारिणामिकात्मकत्वाद्, एवमनानुपूर्वीअ- वक्तव्यकान्यपि, अल्पबहुत्वचिन्तायां द्रव्यार्थतां प्रत्यानुपूर्वीभावेकैकगणनं, प्रदेशार्थतां तु भेदेन तद्वत्प्रदेशगणनं, द्रव्यार्थप्रदेशार्थतां तु भय- गणनं, तत्र सवत्थोवाइं गेगमववहाराणं अवत्तवगदव्वाइं दव्वट्टयाए, कथं ? द्विप्रदेशात्मकत्वादवत्तव्यकद्रव्याणामिति, अणानुपुत्तिवदव्वाइं दव्वट्टयाए विसेसाधियाइं, कथं ? एकप्रदेशात्मकत्वादनानुपूर्वीणां इति, आह- यद्येवं कस्माद् द्विगुणान्येव न भवत्येकप्रदेशात्मकत्वात् तद्विगु- णत्वभावादिति, अत्रोच्यते, तदन्यसंयोगतोऽवधीकृतावक्तव्यकवाहुल्याच्च नाधिकृतद्रव्याणि द्विगुणानि, किंतु विशेषाधिकान्येव, ‘आणुपुत्ती- दव्वाइं दव्वट्टयाए अमंखेज्जगुणाइं’ अत्र भावना प्रतिपादितैव, ‘पदेसट्टयाए सवत्थोवाइं गेगमववहाराणं अणानुपुत्तिवदव्वाइं’ ति प्रकटार्थं, ‘अवत्तवगदव्वाइं पदेसट्टयाए विसेसाधिताइं’ अस्य भावार्थः--इह खलु रुचकाद्वारभ्य क्षेत्रप्रदेशात्मकत्वादवत्तव्यकभ्रेणिव्यतिरिक्ततद- न्यप्रदेशसंसर्गनिष्पन्नवत्तव्यकगणनया तथा लोकनिष्कुटगतप्रदेशावत्तव्यकायोग्यानानुपूर्वीयोग्यभावतश्चेति सूक्ष्मबुद्ध्या भावनीय इति । इह विनेयजनानुप्रहार्थं स्थापना लिख्यते, शेषं भावितार्थं यावत् ‘सेत्तं गेगमववहाराणं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुत्ती’ सेत्तं नैगमववहारयो- रतौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी । ‘से किं तं संगहस्से’ त्यादि (१०२-८७) इयमानिगमनं द्रव्यानुपूर्व्येनुसारतो भावनीया, नवरमत्र क्षेत्रस्य प्राधान्यमिति । औपनिधिक्यपि प्रायो निगदतिद्वैव, णवरं पंचत्थिकायमइओ लो गो, सो आयामओ उड्डमहे पतिट्ठिओ, तस्स तिहा परिकप्पणा इमेण विहिणा-बहुसमभूमिभागा रयणप्पभाभागे मेरुमज्जे अट्टपदेसो रुयगो, तस्स अहोपयराओ अहेण जाव णव योजणशतानि तिरियलोगो, ततो परेण अहे ठितत्तणओ अहोलोगो साहियसत्तरज्जुप्पमाणो, रुयगाओ उपरिहुत्तो णव जोयणसताणि जाव जोइसच्चक्कस्स उवरित्तलो ताव तिरियलोगो, तओ उड्डलोगठितत्तणओ उवरिं उड्डलोगो देसूणसत्तरज्जुप्पमाणो, अहोलोगुड्डलोगाण मज्जे अट्टारसजोयण- भावानुपूर्वी अल्पबहुत्वं ॥ ४९ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०२-१०३] / गाथा [१०...]
प्रत सूत्रांक [१०२- १०३] गाथा ॥१०..॥ दीप अनुक्रम [११७- ११८]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ५० ॥ सतप्पमाणो तिरियभागटियत्तणओ तिरियलोगो, ‘ अहव अहो परिणामो खेत्तणुभावेण जेण उस्सण्णं । असुभो अहोत्ति भणिओ दव्वाणं तेण- ऽहोलोगो ॥ १ ॥ उड्डुत्ति उवरिमंति य सुहखेत्तं खेत्तओ य दव्वगुणा । उप्पज्जंति य भावा तेण य सो उड्डुलोगो ति ॥ २ ॥ मज्झणुभावं खेत्तं जं तं तिरियं वयणपज्जयओ । भण्णइ तिरिय विसालं अतो य तं तिरियलोगोत्ति ॥ ३ ॥’ अहोलोकं जेतानुपूर्व्या रत्नप्रभादीनाम- नादिकालसिद्धानि नामानि यथास्वभूमिनि विज्ञातव्यानि, तद्यथा- ‘ घम्मा वंसा सेला अंजण रिट्ठा मघा च माघवती । पुढवीणं नामादं रयणादी होति गोत्ताहं ॥ १ ॥ ’ रत्नप्रभादीनि तु गोत्राणि, तत्रेन्द्रनीलादिबहुविधरत्नसंभवान्नरकवर्जं प्रायो रत्नानां प्रभा-ज्योत्स्ना यस्यां सा रत्नप्रभा, एवं शेषा अपि यथानुरूपा वाच्या इति, नवरं शर्करा-उपलाः वालुकापंकधूमकृष्णातिकृष्णद्रव्योपलक्षणद्वारेणेति, तिर्यग्लोकक्षेत्रानुपूर्व्या जंबूदीवे दीवे लवणसमुदे धायइसंडे दीवे कालोदे समुदे उदगरसे पुक्खरवरदीवे पुक्खरोदे समुदे उदगरसे वरुणवरे दीवे वरुणोदे समुदे वरु- णरसे खोदवरे दीवे खोदोदे समुदे घयवरे दीवे घओदे समुदे खीरवरे दीवे खीरवरे समुदे, अतो परं सव्वे दीवसरिसणाभिया समुहा, ते य सव्वे खोदरसा भाणियव्वा । इमे दीवणामा, तंजह-णंदीसरो दीवो अरुणवरो दीवो अरुणावासो दीवो कुंडलो दीवो, एते जंबूदीवाओ गिरं- तरा, अतो परं असंखेज्जे गंतुं भुजगवरे दीवे, पुणो असंखेज्जे दीवे गंतुं कुसवरे दीवे, एवं असंखेज्जे २ गंतुं इमेसि एकेकं णामं भाणियव्वं, कौंचवरे दीवे, एवं आभरणादओ जाव अन्ते सयंभूरमणो, से अन्ते समुदे उदगरसे इति । जे अन्तरंतरा दीवे तेसि इहं सुभणामा जे केइ तण्णामाणो ते भाणितव्वा, सव्वेसि इमं पमाणं, ‘ उद्धारसागराणं अङ्गाइज्जाण जत्तिया समया । दुग्गुणादुग्गुणपवित्थर दीवोदहि रज्जु एवइया ॥ १ ॥ ऊर्ध्वलोकक्षेत्रानुपूर्व्या तु सौधर्मावर्तसकाभिधानसकलविमानप्रधानविमानविशेषोपलक्षितः सौधर्मेः, एवं शेषेष्वपि भावनीयमिति, लोकपुरुषप्रीवाविभागे भवानि प्रैवेयकानि, न तेषामुत्तराणि विद्यंत इत्यनुत्तराणि, मनाभाराक्रान्तपुरुषवत् नत्ता अंतरेषु ईषत्प्रागभारेत्यलं प्रसंगेन औपनिधि- की क्षेत्रानु- पूर्वी तिर्य- ग्लोकादि ॥ ५० ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०४-११३] / गाथा [११-१५]
प्रत सूत्रांक [१०४- ११३] गाथा ॥११- १५॥ दीप अनुक्रम [११९- १३६]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हरि.वृत्तौ ॥ ५१ ॥ प्रकृतं प्रस्तुमः, उक्ता क्षेत्रानुपूर्वी ॥ साम्प्रतं कालानुपूर्व्युच्यते--तत्रेदं सूत्रं--‘ से किं तं कालानुपूर्वी ’ (१०४-१२) तत्र द्रव्यपर्यायत्वात्कालस्य त्रयादिसमयस्थित्याद्युपलक्षितद्रव्याण्येव । ‘ कालानुपूर्वी द्विविधा प्रज्ञप्ते ’ त्यादि, (१०५-१२) अस्या यथा द्रव्यानुपूर्व्यास्तथैवाक्षरगमनिका कार्या, विशेषं तु वक्ष्यामः, तिसमयद्वितीये आणुपुर्व्वित्ति तिसमयस्थित्यणुकादि द्रव्यपर्याययोः कथंचिदभेदेऽपि आनुपूर्व्यधिकारात्तत्प्राधान्यात्कालानुपूर्वीति, एवं यावदसंख्येयसमयस्थितिः, एवमेकसमयस्थित्यनानुपूर्वी, द्विसमयस्थित्यवक्तव्यकं, शेषं प्रगटार्थं, यावत् ‘ णो संख्ये-उजाई असंख्येज्जाई णो अणन्ताई ’ अस्य भावना-इह कालप्राधान्यान् तिसमयस्थिततीनां भावानामनन्तानामप्येकत्वात्तदनु समयवृद्ध्याऽसंख्येयसमयस्थिततीनां परतः खल्वसंभवात्, समयवृद्ध्याऽध्यासितानां चानन्तानामपि द्रव्याणां कालानुपूर्वीमधिकृत्यैकत्वादसंख्येयानि, अथवा त्रयादि-प्रदेशावगाहसंबंधिद्रव्यादिसमयस्थित्यपेक्षयेति उगाधिभूतस्वस्याप्यसंख्येयप्रदेशात्मकत्वादिति, एवं तिष्ठिति, आह--एकसमयस्थिततीनामनन्तानामप्येकत्वात्तेषां चानन्तानामपि कालापेक्षया प्रत्येकमेकत्वाद् द्रव्यभेदमहणे चानन्तप्रसङ्गः कथमनानुपूर्वी (अ) वक्तव्यकयोरसंख्येयत्वमिति, अत्रोच्यते, आधारभेदसंबंधस्थित्यपेक्षया, सामान्यतश्चाधारलोकस्यासंख्येयप्रदेशात्मकत्वादित्यनया दिशाऽतिगहनमिदं सूक्ष्मबुद्ध्याऽऽलोकनीयमिति । ‘एगं दव्वं पडुव्व लोगस्स असंख्येज्जतिभागे होज्जा ४ जाव देसूणे वा लोगे होज्जा’, केई भणंति-पदेसूणत्ति, कथं ?, उच्यते, दव्वओ एगो खंधो सुहुमपरिणामो पदेसूणे लोए अवगाढो, सो चेव कयाइ तिसमयठितीओ लव्वमइत्ति संख्येया आणुपुर्व्वी, जं पुण समत्तलोगागासपदे-सावगाढं दव्वं तं नियमा चउत्थसमए एगसमयठितीओ लव्वमइ, तम्हा तिसमयठितियं कालानुपूर्वी नियमा एगपदेसूणे चेव लोए लव्वमति, अहवा तिसमयादिकालानुपुर्व्विदव्वं जहणओ एगपदेसे अवगाहति, तत्थ च पदेसे एगसमयठितियं कालओ अणानुपुर्व्विदव्वं दुसमयठितियं च अवत्तव्वगं अवगाहति, जम्हा एवं तम्हा अचित्तो महाखंधो चउत्थसमए कालओ आणुपुर्व्विदव्वं, तस्स य सव्वलोगावगाढस्सवि अनौपनि- धिकी कालानु- पूर्वी ॥ ५१ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०४-११३] / गाथा [११-१५]
प्रत सूत्रांक [१०४- ११३] गाथा ॥११- १५॥ दीप अनुक्रम [११९- १३६]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ५२ ॥ एगपदेसूणता कज्जइ, कम्हत्ति !, उच्यते, जे कालओ अणाणुपुब्बिअवत्तन्ना ते तस्स एगपदेसावगाढा, तस्स य तंभि पदेसे अप्पाहणत्तविष- क्खाओ, अतो तप्पदेसूणे लोके कतो, एत्थ दिट्ठतो जहा खेत्ताणुपुब्बी पदेसोना इत्यर्थः, “एगम्मि तप्पदेसे कालणुपुब्बादि तिणिण वा दब्बा । ओगाहंते जम्हा पदेसूणोत्ति तो लोगो ॥१॥ अण्णे पुण आयरिया भण्णंति-‘ कालपदेसो समओ समयचउत्थंमि हवति जंवेलं । तेणूणवत्तणत्ता जं लोको कालमयस्खंधो ॥ २ ॥ ” अयमत्र भावार्थः-इह कालानुपूर्व्यधिकारात्कालस्य च वर्त्तनादिरूपत्वात्पर्यायस्य च पर्यायिभ्योऽभेदात्स खल्वचित्तमहास्वधत्तुःसमयात्मककालरूपः अतः कालप्रदेशः, कालविभागः समय इति, ततश्च समये चतुर्थे भवति-वर्त्तते यद्वेलमिति- यस्यां वेलायामसौ स्कन्धः, स हि तदा विवक्षयैकत्वाद् न गृह्यते, अतस्तेणूणत्ति विवक्षितः, चतुःसमयात्मकस्कन्धस्तेनोनः परिगृह्यते, कथमेतदेवं ‘ वत्तण ’ ति वर्त्तनारूपत्वात्कालस्य, जं लोको कालमयस्खंधोऽसि विवक्षयैव यस्माद्धेकः कालसमयस्कन्धो वर्त्तते, अतस्तस्य प्रदेशस्य समया- गणने प्रदेशेनोनो लोक इत्येवमन्यथापि सूक्ष्मबुद्ध्या भावनीयमिति । ‘ णाणादब्बाइं पडुच्च णियमा सव्वलोए ’ ति त्र्यादिप्रदेशावगाहज्यादि- समयस्थितीनां सकललोके भावात्, अनानुपूर्वीद्रव्यचिन्तायां एगं दब्बं पडुच्च लोयस्य असंखेज्जतिभागो होज्जा, सेसपुच्छा पडिसेहितव्वा, भावार्थस्त्वेकप्रदेशावगाहैकसमयस्थितिविवक्षितत्वादिना प्रकारेणागमानुसारतो वाच्यः, आदेशांतरेण वा अस्य भावना-अचित्तमहास्कन्धो दंडावत्यारूपविद्वत्तणं मोसुं कवाडावत्याभरणं तं अज्जं चेव दब्बं भवति, अण्णागारभावत्तणओ बहुतरसंघातपरमाणुसंघातत्तणओदयठि- तितो दुपदेसियभरणं व, एवं मंथापूरणलोगापूरणसमण्णसु महास्कन्धस्याप्यन्यान्यद्रव्यभवनं, अतो कालाणुपुब्बिदब्बं सव्वपुच्छासु संभवतीत्यर्थः, ‘ णाणादब्बाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जंति भावितार्थं द्रव्यप्रमाणद्वार एवेति, अवक्तव्यकद्रव्यचिन्तायां ‘ एगं दब्बं पडुच्च लोगस्स असंखेज्जतिभागो होज्जा ’ द्विप्रदेशावगाहद्विसमयस्थितिविवक्षितभावात्, आदेशांतरेण वा महास्वधवज्जमण्णदब्बेसु आदिल्लचउपुच्छासु कालानु- पूर्व्यादि- स्थितिः ॥ ५२ ॥
	*** अथ कालानुपूर्वी-अधिकारः अन्तर्गत ‘काल-समय’वर्णनं आरभ्यते

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [११४] / गाथा [१५...]
प्रत सूत्रांक [११४] गाथा ॥१५..॥ दीप अनुक्रम [१३७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ५४ ॥ नुपूर्व्यनुसारतो व्याक्षेपान्तरमपास्य स्तिमितोपयुक्तेनान्तरात्मना कालप्राधान्यमधिकृत्य निखिलमेव भावनीयमिह पुनर्भाविताथत्वाद्रंथ- विस्तरभयाच्च नोक्तमिति, शेषं सूत्रसिद्धं, यावत् ‘अहवोवणिहिया कालाणुपुर्वी तिविहा पन्नत्ते’ त्यादि (११४-९८) अत्र सूर्यकि- यानिर्वृत्तः कालस्तस्य सर्वप्रमाणानामाद्यः परमः सूक्ष्मः अभेद्यः निरवयवः उत्पलपत्रशतवेद्याद्युदाहरणोपलक्षितः समयः, तेषां असंख्येज्जाण समुदयसमितीए आवलिया, संख्येज्जाओ आवलिआओ आणुत्ति-ऊसासो, संख्येज्जाओ आवलियाओ गिस्सासो, दोण्णवि कालो एगो पाणू, सत्त- पाणूकालो एगो थोवो, सत्तथोवकालो एग लवो, सत्तहत्तरिलवो एगमुहुत्तो, अहोरत्तादिया कंठा जाव वाससयसहस्सा, ‘इच्छियठाणेण गुणं पणसुण्णं चउरासीत्तिगुणितं च । काऊण तइयवारा पुव्वंगादीण सुण संखं ॥ १ ॥ पुव्वंगे परिमाणं पंच सुण्णं चउरासीय १, तं एगं पुव्वंगं चुलसीए सत्तसहस्सेहिं गुणितं एगं पुव्वं भवति, तस्स इमं परिमाणं [दस सुण्णा] छप्पण्णं च सहस्सा कोडीणं सत्तरि लक्खा य २, तं एगं पुव्वं चुलसीए पुव्वसत्तसहस्सेहिं गुणितं से एगो तुडियंगे भवति, तस्स इमं परिमाणं-पण्णरस सुण्णा य, तओ चउरो सुण्णं सत्त दो णव पंच ठवेज्जा ३, एवं चुलसीटीए सत्तसहस्सा गुणिता सव्वठाणे कायव्वा, ततो तुडियादयो भवन्ति, तेषां जहासंखं परिमाणं- तुडिए वसिं सुण्णा, ततो छ ति एगो सत्त अट्ट सत्त णव चउरो ठवेज्जा ४ अड्डंगे पणवीसं सुण्णा ततो चउ दो चउ नव एक्को एक्को दो अट्ट एक्को चउरो य ठवे- ज्जा ५ अड्डे तसिं सुण्णा तओ छ एक्को छ एक्को ति सुण्णं अट्ट णव दो एक्को पण तिगं ठवेज्जा ६, अववंगे पणतीसं सुण्णा, तओ चउ चउ सत्त पण पण छ चउ ति सुण्णं णव सुण्णं पण णव दो य ठवेज्जा ७, चत्तालसिं सुण्णा तओ छ णव चउ दो अट्ट सुण्णं एक्को एक्को णव अट्ट पण सत्त अट्ट सत्त चउ दो य ठवेज्जाहि अववे य ८ हूह्यंगे य पणचत्तालसिं सुण्णा, तओ चउ छ छ णव दो णव सुण्णं ति पण अट्ट चउ सत्त पंच एक्को दो अट्ट सुण्णं दो य ठवेज्जा ९, हूहूए पण्णासं सुण्णा, तओ छ सत्त सत्त एगो णव सुण्णं अट्ट णव समयादयः शीर्षप्रहेलि- कान्ताः ॥ ५४ ॥
	*** अत्र ‘समय’ शब्दात् आरभ्य शीर्षप्रहेलिका पर्यन्त ‘काल’स्य वर्णनं

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [११४] / गाथा [१५...]
प्रत सूत्रांक [११४] गाथा [१५..] दीप अनुक्रम [१३७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ५५ ॥ पण छ सत्त अट्ट दो दो एक्को सुण्णं णव चउ सत्त एक्कं च ठवेज्जा १० , उप्पलंगे पणपण सुण्णा, तओ चउ अट्ट एक्को णव सुण्णं सत्त णव ति दो चउ ति छ एक्को दो तिणिण सुण्णं सत्त एक्को णव छ चउ एगं च ठवेज्जा ११, उप्पले सट्ठि सुण्णा, तओ छ पण चउ एक्को सत्त पण पण ति एक्को छ सत्त दो सत्त एगो सुण्णं सत्तं सुण्णं ति सुण्णं एक्को चउ ति दो एक्कं ठवेज्जा १२, पडमंगे पणसट्ठि सुण्णा, चउ सुण्णं ति दो सुत्तं सुत्तं अट्ट अट्ट ति पण णव एक्को एक्को पण चउ णव य अट्ट सत्त पण छ चउ छ छ ति सुण्णं एगं च ठवेज्जा १३, पडमे सत्तरि सुण्णा, तओ छ ति पण ति णव एक्को दो णव पण दो एक्को चउ, सुण्णं सुण्णं णव ति एक्को ति छ दो एक्को ति अट्ट सत्त सुण्णं सत्त अट्ट य ठवेज्जा १४, णल्लिगंगे पंचसत्तरि सुण्णा, ततो चउ दो सुण्ण सत्त पण दो चउ चउ सत्त सत्त पण छ चउ ति छ सत्त छ ति सुण्णं एक्को छ दो अट्ट सत्त पण चउ एक्को ति सत्त ठवेज्जा १५, णलीणे असीति सुण्णा, ततो छ एक्को सुण्णं सुण्णं णव पण सत्त एक्क पण सुण्ण पण दो एक्को एक्को ति एक्को अट्ट अट्ट सुण्णं सत्त दो णव ति सत्त पण चउ दो चउ चउ एक्को छ ठवेज्जा १६, अत्थणिउरंगे पंचासी सुण्णा, तओ चउ चउ ति एक्को छ पण सत्त सत्त चउ ति चउ सुण्णं पण चउ एक्को सुण्ण ति सुण्णं चउ पण सत्त अट्ट णव सुण्ण दो चउ छ छ एक्को एक्को छ एक्को पंच य ठवेज्जा १७, अत्थणिउरे णडति सुण्णा, तओ छ णव अट्ट दो पण एक्को पण एक्को एक्को दो पण छ ति अट्ट एक्को दो ति पण अट्ट ति ति पण णव दो छ ति णव सत्त णव सत्त ति पण ति ति चउरो य ठवेज्जा १८, अउयंगे पंचणवति सुण्णा, तओ चउ छ दो ति चउ अट्ट दो सत्त छ सत्त सत्त सत्त छ दो चउ ति सुण्णं सत्त छ ति चउ अट्ट सुण्णं अट्ट अट्ट चउ छ छ दो सुण्ण णव एक्को सत्त एक्को चउ छ तिणिण य ठवेज्जा १९, अउते सुण्णसत्तं, ततो छ सत्त एक्को चउ ति अट्ट अट्ट एगो पण चउ दो ति णव चउ अट्ट सत्त अट्ट सुण्णं ति अट्ट छ अट्ट सुण्णं णव णव णव चउ अट्ट ति दो अट्ट णव ति चउ सुण्ण णव पण सुण्ण तिणिण य ठवेज्जा २०, णउत्तंगे सुण्णसत्तं पंचाधितं, तओ समुदायः श्रीर्षप्रहेलि- कान्ताः ॥ ५५ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [११४] / गाथा [१५....]
प्रत सूत्रांक [११४] गाथा ॥१५..॥ दीप अनुक्रम [१३७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हरि.वृत्तौ ॥ ५६ ॥ चउ अट्ट सत्त सुण्णं सत्त सुण्णं दो अट्ट पण णव पण दो ति चउ ति णव सत्त ति णव सत्त ति णव दो ति दो णव णव ति ति सुण्ण दो पण चउ णव छ णव पण णव छ पण दोन्निय ठवेज्जा २१, णतुते सुण्णसयं दसाधितं, तओ छ पण अट्ट पण चउ णव ति णव अट्ट चउ सुण्ण अट्ट ति ति अट्ट चउ छ अट्ट सत्त छ अट्ट सत्त छ छ पण पण ति पण पण अट्ट सुण्णं सत्त णव ति ति चउ एक्को छ चउ अट्ट पण एक्को दोण्णि य ठवेज्जा २२, पयुत्तंगे पणरसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ चउ सुण्णं णव एक्को पण चउ एक्को णव सुण्ण एक्को एक्को छ णव ति सुण्ण छ चउ छ सुण्ण सुण्ण णव सुण्ण सुण्ण एक्को छ सत्त अट्ट णव चतु अट्ट एक्को पण पण ति पण चउ सुण्ण छ सत्त सुण्ण एक्को ति एक्को अट्ट एगं ठवेज्जा २३, पडते वीसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ छ ति णव णव पण णव एक्को अट्ट छ एक्को ति ति सत्त दो ति सत्त छ दो चउ पण छ पण सत्त चउ दो णव पण णव अट्ट ति पण पण ति अट्ट णव सुण्णं अट्ट सत्त अट्ट ति सुण्णं एक्को सुण्णं ति दो पण एगं च ठवेज्जा २४, चूलियंगे पणवीसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ चउ दो छ चउ ति छ चउ अट्ट दो एक्को छ अट्ट पण णव चउ पण पण चउ अट्ट पण णव चउ पण णव सत्त छ सत्त पण दो सत्त दो पण अट्ट एक्को छ दो सुण्ण छ सत्त पण दो सत्त अट्ट दो तिण्णि नव सत्त दो एगं च ठवेज्जा २५, चूलियाए तीसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ छ एक्को चउ अट्ट सुण्ण ति णव सुण्ण णव सत्त चउ ति वे पण छ एक्को छ दु सुण्णं एक्को पण छ एक्को दो अट्ट सुण्णं पण चउ छ णव अट्ट दो छ पण णव णव एक्को छ अट्ट ति छ णव दो एक्को छ ति छ चउ सत्त सुण्ण एक्को च ठवेज्जा २६, सीसपहेलियंगे पणतीसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ चउ चउ नव छ सुण्णं णव एक्को अट्ट ति चउ दो दो सत्त णव सत्त अट्ट सत्त णव एक्को छ अट्ट छ अट्ट एक्को सुण्ण णव छ अट्ट एक्को सुण्णं ति ति अट्ट दो ति छ सत्त सुण्णं चउ चउ छ णव अट्ट अट्ट चउ ति चउ णव छ दो सुण्ण णव २७, सीसपहेलियाए चत्तालं सुण्णसयं, तवो छ णव दो ति अट्ट एक्को सुण्णं अट्ट सुण्ण अट्ट चउ अट्ट छ छ णव अट्ट एक्को समयादयः शीर्षप्रहेलि- कान्ताः ॥ ५६ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [११५-११८] / गाथा [१६]
प्रत सूत्रांक [११५- ११८] गाथा ॥१६॥ दीप अनुक्रम [१३८- १४२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हरि.वृत्तौ ॥ ५७ ॥ दो छ सुण्णं चड छ णव छ पण सत्त णव णव छ पण ति सत्त णव सत्त पण एक्को एक्को चड दो सुण्णं एक्को सुण्ण ति सत्त सुण्ण ति पण दो ति छ दो अट्ट पण सत्त य ठवेज्जा २८, एवं सीसपहेलिया चउणवतिठाणसत्तं जाव य संववहारकालो ताव संववहारविसए, तेण य पढमपुढविणेरइयाणं भवणवंतराण य भरहेरवणसु सुसमदुस्समाए पच्छिमे भागे णरतिरियाणं आउए उवमिज्जन्ति, किं च-सीसपहेलियाए य परतो अत्थि संखेज्जो कालो, सो य अणतिसईणं अववहारिउत्तिकाउं ओवम्मे पक्खित्तो, तेण सीसपहेलियाए परतो पळिओवमादि उवण्णत्था, शेषमानिगमनं कालानुपूर्वी पाठसिद्धं । ‘से किं त’ मित्यादि, (११५-१००) उत्कीर्तनं-संशब्दनं यथार्थाभिधानं तस्यानुपूर्वी—अनुपरिपाटी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—पूर्वानुपूर्वित्यादि पूर्ववत्, तत्र पूर्वानुपूर्वी ‘उसभ’ इत्यादि, आह-वस्तुत आवश्यकस्य प्रकृतत्वात् सामायिकं चतुर्विंशतिस्तव इत्यादि वक्तव्यं किमर्थमेतत्सूत्रान्तरमिति, अत्रोच्यते, शेषश्रुतस्यापि सामान्यमेतदिति ज्ञापनार्थं, तथाहि-आचाराद्यनुयोगेऽपि प्रत्यक्षयनमेतत्सर्वमेवाभिधातव्यमित्युदाहरणमात्रत्वाद्भगवतामेव च तीर्थप्रणेतृत्वान्, शेषं सूत्रसिद्धं यावत् ‘से तं उक्त्तिणाणुपुत्ति’ ति ‘से किं त’ मित्यादि (११७-१०१), इहाकृतिविशेषः संस्थानं, तत् द्विविधं जीवाजीवभेदान्, इह जीवसंस्थानेनाधिकारः, तत्रापि पंचेन्द्रियसंबंधिना, तत्पुनः स्वनामकर्मप्रत्ययं षड्विधं भवति, आह च-‘समचतुरसे’ त्यादि, तत्र समं-तुल्यारोहपरिणामं संपूर्णांगोपाङ्गावयवं स्वांगुलाष्टशतोच्छ्रायं समचतुरश्रं, नाभीत उपर्यादि लक्षणयुक्तं अधस्तादनुरूपं न भवति तस्मात्प्रमाणाद्वीनतरं न्यमोघपरिमंडलं, नाभीतः अधः आदि-लक्षणयुक्तं संक्षिप्तविकृतमध्यं कुञ्जं, स्कंधपृष्ठदेशवृद्धमित्यर्थः, लक्षणयुक्तमध्यप्रीवाद्युपरिहस्तपादयोरप्यादिरलक्षणं न्यूनं च लिंगेऽपि वामनं, सर्वावयवाः प्रायः आदिलक्षणविसंवादिनो यस्य तत् हुंडं, उक्तं च-‘तुल्लं विथरबहुलं वस्सेहबहुं च मडहकोहुं च । हेडुल्लकायमडहं सव्वत्थासंठियं हुंडं ॥ १ ॥’ पूर्वानुपूर्विकमश्च यथाप्रथममेव प्रधानत्वादिति, शेषमानिगमनं कालानु- पूर्वी ॥ ५७ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [११५-११८] / गाथा [१६]
प्रत सूत्रांक [११५- ११८] गाथा ॥१६॥ दीप अनुक्रम [१३८- १४२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ५८ ॥ पाठसिद्धमेवेति । 'से किं तं सामाचारियाणुपुच्वी' त्यादि, इह समाचरणं समाचारः-शिष्टाचरितः क्रियाकलापः तस्य भावः 'गुणवचन- ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि व्यञ् च' ति (पा-५-१-१२४) व्यञ्, सामाचार्यं, सोऽयं भावप्रत्ययो नपुंसके भावे भवति, चित्करणसामर्थ्याच्च स्त्रीलिङ्गोऽपि, अतः स्त्रियां ङीप् सामाचारी, सा पुनस्त्रिविधा-‘पदविभागे’ ति वचनात् इह दशविधसामाचारीमधिकृत्य भण्यते, ‘इच्छामिच्छे’- त्यादि (॥१६-१०२) तत्र इच्छाकारः मिथ्याकारः तथाकारः, अत्र कारशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते, तत्रैषणमिच्छा-क्रियाप्रवृत्त्यभ्युपगमः करणं कारः इच्छया करणं इच्छाकारः आज्ञाबलाभियोगव्यापारप्रतिपक्षो व्यापारणं चेत्यर्थः, एवमश्वरगमनिका कार्या, नवरं मिथ्या-वितथमयथा यथा भगवद्भिरुक्तं न तथा दुष्कृतमेतदिति प्रतिपत्तिः मिथ्यादुष्कृतं, मिथ्या-अक्रियानिष्ठुपगम इत्यर्थः, अविचार्यं गुरुवचनकरणं तथाकारः, अवश्यं गंतव्यकारणमित्यतो गच्छामीति अस्यार्थस्य संसूचिका आवश्यकी, अन्यापि कारणापेक्षा या या क्रिया सा क्रिया अवश्य क्रियेति सूचितं, निषिद्धात्मा अहमास्मिन् प्रविशामीति शेषसाधूनामन्वाख्यानाय त्रासादिवोषपरिहरणार्थं, अस्यार्थस्य संसूचिका नौषेधिकी, इदं करोमीति प्रच्छन्नं आप्र- च्छना, सकृदाचार्येणोक्त इदं त्वया कर्तव्यमिति पुनः प्रच्छन्नं प्रतिप्रच्छन्नं, छंदना-प्रोसाहना, इदं भक्तं मुंक्ष्व इति, निमंत्रणं अहं ते भक्तं लब्ध्वा दास्यामीति, उक्तं च-‘पुंस्वगहिणं लंघनं निमंत्रणा होइऽगहिणं ।’ सचाहमित्यभ्युपगमः श्रुताधर्मेऽनुपसंपत्, उक्तं च-‘सुय सुहृदुक्खे खेत्ते मग्गे विणयोवसंपदा एयं ।’ एवमेताः प्रतिपत्तयः सामाचारीपूर्व्वानुपूर्व्व्यमिति, आह-किमर्थोऽयं क्रमनियम इति, येनेत्यमेव पूर्व्वानुपूर्व्वी प्रतिपाद्यत इति, उच्यते, इह मुमुक्षुणा समप्रसामाचार्यनुष्ठानपरेण आज्ञाबलाभियोग एव स्वपरोपतापहेतुत्वात्प्रथमं वर्जनीयः, सामाधिका- ख्यप्रधानगुणलाभात्, ततः किंचित्स्खलनसंभवं एव मिथ्यादुष्कृतं दातव्यं, ततोऽप्येवंविधेनैव सता यथावद् गुरुवचनमनुष्ठेयं, सफलप्रयास- त्वात्, परमगुरुवचनाव्यवस्थितस्य त्वसामाधिक्यतः स्खलनामलिनस्य वा गुरुवचनानुष्ठानभावेऽपि पारमार्थिकफलापेक्षयाऽनिष्पन्नपदानि(?)त्यतः संस्थान सामाचा- र्यानुपूर्व्वः ॥ ५८ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [११९-१२३] / गाथा [१७]		
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः			
प्रत सूत्रांक [११९- १२३] गाथा ॥१७॥ दीप अनुक्रम [१४३- १५०]	श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ५९ ॥	क्रमनियमः, शेषं सुगमं यावन्निगमनामिति । ‘से किं तं’ भित्त्यादि (११९-१०४) तत्र कर्मविपाक उदयः उदय एवौद्यिकः, यद्वा तत्र भव- स्तेन वा निर्धुत इत्येवं शेषेष्वपि व्युत्पत्तियोजनीया इति, नवरमुपशमः मोहनीयस्य कर्मणः. (सर्वोसां प्रकृतीनां) उदयश्चतुर्णामष्टानां वा प्रकृतीनां क्षयः, कस्यचिदंशस्य क्षयः कस्यान्यदुपशम इति क्षयोपशमौ, प्रयोगविश्रतोद्भवः परिणामः, अमीषामेवैकादिसंयोगरचनं सन्निपातः, क्रमः पुनरमीषां स्फुटनारकादिगत्युदाहरणभावतः प्राप्यस्तदन्याधारश्च प्रथममौदायिकस्ततः सर्वस्तोकत्वादौपशमिकः ततस्तद्बहुतरत्वादेव क्षायो- पशमिकः ततोऽपि बहुत्वान् क्षायिकः ततोऽपि सर्वबहुत्वात्पारिणामिकः ततः औद्यिकादिभेलनसमुत्पन्नकः सान्निपातिक इति, शेषं प्रकटार्थं यावत् ‘से तं आपुणुच्चि’ ति निगमनं वाच्यम् । ‘से किं तं दुनामे ? २ द्रुविहे पन्नत्ते, तं०-एगक्खुरिए य अणेगक्खुरिए थ’ (१२२-१०५) एकशब्दः संख्यावाचकः, व्यञ्ज्यतेऽने- नार्थः प्रदीपेनेव घट इति व्यञ्जनं-अक्षरमुख्यते, तच्चेह सर्वमेव भाष्यमाणं अकारादि हकारान्तमेवार्थाभिर्व्यञ्जकत्वाच्छब्दस्य, एकं च तद- क्षरं चर एकाक्षरेण निष्पन्नं एकाक्षरिकं, एवमनेकाक्षरिकं नाम, ङीः-लज्जा श्रीः-देवताविशेषः-घीः-बुद्धिः स्त्री प्रतीता, ‘से किं तं अणेगक्खुरिये’- त्यादि प्रकटार्थं, यावत् ‘अवसेसियं जीवद्वं विसेसियं नेरइय’ इत्यादि, तत्र नरकेषु भवो नारकः तिर्यग्योनौ भवः तिर्यक् मननान्मनुष्यः दीव्यति देवः, शेषं निगदासिद्धं यावद् द्विनामाधिकारः, नवरं पर्याप्तके विशेषः पर्याप्तिनामकमौद्यात् पर्याप्तकः, अपर्याप्तिनामकमौद्यात्चापयो- प्तक इति । एकेंद्रियादिविभागेषु स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुश्रोत्राणीन्द्रियाणि क्रमिपीलीकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि, सूक्ष्मबादरविशेषोऽपि सूक्ष्मबादरनामकमौद्यानिबंधन इति, समूर्च्छिमगर्भव्युत्क्रांतिकभेदेषु समूर्च्छिमः तथाविधकमौद्यादगर्भज एकेंद्रियादिः पंचेंद्रियावसानः, गर्भ- व्युत्क्रान्तिकस्तु गर्भजः पंचेंद्रिय एव, ‘से तं दुनामे’ ति । ‘से किं तं तिनामे ?’ (१२३-१०९) अधिकृतं नाम त्रिविधं ब्रह्मतं, तद्यथा-	द्विनाम
*** अथ ‘नाम्नः’ ‘दुनाम’, ‘तीनाम’ आदि भेदाः वर्णयते			

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)
	 मूलं [१२४-१२६] / गाथा [१८-२३]
प्रत सूत्रांक [१२४- १२६] गाथा १८- २३ दीप अनुक्रम [१५१- १६३]	पञ्चनाम पङ्नाम च श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ६१ ॥ (कातन्त्र रूप. ११५) पदान्ते यौ एकारौकारौ ताभ्यां परः अकारो लोपमापद्यते, ततः सिद्धं ते अत्र, से सं लोवेणं, से किं तं पयतीए यथाऽग्नी एतौ इत्यादि, एतेषु पदेषु ‘द्विवचनमनौ’ (कातन्त्रं ६२) द्विवचनमौकारान्तं यत् भवति तल्लक्षण न्तरेण स्वरेण स्वरे परतः प्रकृत्या भवति, सिद्धं अग्री एतौ इत्यादि, विकारेणापि दंडस्य अग्रं इत्यादि, अत्र ‘समानः सवर्णे दीर्घो भवति परश्च लोपमापद्यते’ (का० २४) सिद्धं दंडाग्रं इत्यादि, से तं विगारेणं, एवं चतुर्णाम् । पंचनाम्नि ‘से किं’ मित्यादि सूत्रं (१२५-११३) तत्राश्च इति नाभिकं द्रव्याभिधा-यकत्वात्, खल्विति नैपातिकं, खलुशब्दस्य निपातत्वात्, धावतीत्याख्यातिकं क्रियाप्रधानत्वात्, परीत्यौपसर्गिकं परि सर्वतो भाव इत्युप-सर्गपाठे पठितत्वात्, संयत इति मिश्रं, समेकीभाव इत्यस्योपसर्गत्वात् ‘यती प्रयत्न’ इति च प्रकृतेरुभयात्मकत्वात् मिश्रमिति, तदेतत्पंचनाम ॥ ‘से किं तं छणामे ?, छविहे पणत्ते’ इत्यादि (१२६-११३) अत्र षड् भावा औदयिकादयः प्ररूप्यन्ते, तथा च सूत्रे-‘से किं तं उदधिण ?, २ दुविहे पणत्ते, तं०-उदध य उदयनिष्फण्णे य, अत्रोदयः—अष्टानां कर्मप्रकृतीनां ज्ञानावरणीयादिलक्षणांनामुदयः सत्ताऽवस्थापरित्यागेनोद्गीरणावलिकामतिक्रम्योदयावलिकायामात्मीयात्मीयरूपेण विपाक इत्यर्थः, ‘ण’ मिति वाक्यालङ्कारे, अत्र चैवं प्रयोगः-उदय एव औदधिकः, उदयनिष्पन्नस्तु द्वेधा-जीबोदयनिष्फण्णे य अजीबोदयनिष्फण्णे य, तत्र जीवे उदयनिष्फण्णे जीबोदयनिष्पन्नः, जीवे कर्मविपाकानि-र्वृत्त इत्यर्थे, अथवा कर्मोदयसहकारिकारणकार्या एव नारकत्वादय इति प्रतीतं, अन्ये तु जीबोदयाभ्यां निष्फण्णो जीबोदयनिष्पन्न इति व्याचक्षते, इदमप्यदुष्टमेव, परमार्थतः समुदायकार्यत्वात्, एवमजीबोदयनिष्फण्णोपि वाच्यः, तथा चौदारिकशरीरप्रायोग्यपुट्टलप्रहणशरीर-परिणतिश्च न तथाकर्मोदयमन्तरेणेति अत उत्तमौदारिकं वा शरीरमित्यादि, औदारिकशरीरप्रयोगपरिणामिकतया द्रव्यं, तच्च वर्णगंधादिपरि-णामितादि च, न चेदमौदारिकशरीरव्यापारमन्तरेण तथा परिणमतीति, एवं वैक्रियादिष्वपि योजनीयं, इह च वस्तुतः द्वयोरपि द्रव्यात्मकत्वे ॥ ६१ ॥
	*** अत्र औदयिक आदि षड् भावानां वर्णनं क्रियते

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२४-१२६] / गाथा [१८-२३]
प्रत सूत्रांक [१२४- १२६] गाथा ॥१८- २३॥ दीप अनुक्रम [१५१- १६३]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ६२ ॥ एकत्र जीवप्राधान्यमन्यत्राजीवप्राधान्यमाश्रीयत इति, ततश्चोपपन्नमेव जीवोदयनिष्पन्नं अजीवोदयनिष्पन्नं चेत्यलं विस्तरेण, से तं उदयिण । ‘से किं तं उमसमिण?’, उवसमिण दुबिहे पन्नत्ते, तं०-उवसमे य उवसमनिष्पण्णे य, तत्रोपशमो-मोहनीयस्य कर्मणः अनन्तानुबन्धादिभेद- भिन्नस्य उपशमः, उपशमश्रेणीप्रतिपन्नस्य मोहनीयभेदानन्तानुबन्धादीन् उपशमयतः, यत उदयाभाव इत्यर्थः, णमिति पूर्ववत्, उपशम एवोप- शमिकः, उपशमनिष्पन्नस्तूपशान्तक्रोध इत्यादि, उदयाभावफलरूप आत्मपरिणाम इति भावना, से तं उवसमिण । ‘से किं तं खइण?’, खइण दुबिहे पण्णत्ते, तंजहा-खए य खयनिष्पण्णे य, तत्र क्षयः अष्टानां कर्मप्रकृतीनां ज्ञानावरणीयादिभेदानां, क्षयः कर्मोभाव एवेत्यर्थः, ‘ण’ भिति पूर्ववत्, क्षय एव क्षायिकः, क्षयनिष्पण्णस्तु फलरूपो विचित्र आत्मपरिणामः, तथा चाह-‘उप्पण्णणाणदंसणे’ त्यादि, उत्पन्ने श्या- मतापगमेनादर्शमंडलप्रभावत् सकलतदावरणापगमादभिव्यक्ते ज्ञानदर्शने यस्य स तथाविधः, अरहा अविद्यमानरहस्य इत्यर्थः, रागादिजल- त्वाज्जिनः, केवलमस्यास्तीति केवली, संपूर्णज्ञानवानित्यर्थः, अत एवाह-क्षीणाभिनिबोधिकज्ञानावरणीय इत्यादि, विशेषविषयमेव, यावत् अना- वरणः-अविद्यमानावरणः सामान्येनावरणरहितत्वात्, विशुद्धांबरे चन्द्रबिम्बवत्, तथा क्षीणमेकान्तेनापुनर्भावतया च, निर्गतावरणो-निरावरणः आगंतुकेतरावरणस्याप्यभावान् राहुरहितचन्द्रबिम्बवत्, तथा क्षीणमेकान्तेनापुनर्भावतयाऽऽवरणं यस्यासौ क्षीणावरणः, अपाकृतमलावरणजात्यम- णिवत्, तथा ज्ञानावरणीयेन कर्मणा विविधम्-अनेकैः प्रकारैः प्रकर्षेण मुक्ते ज्ञानावरणीयकर्मविप्रमुक्त इति, निगमनम्, एकार्थिकानि वैतानि, नयमतभेदेनान्यथा वा भेदो वाच्य इति, केवलदर्शी-संपूर्णदर्शी, क्षीणनिष्पण्णेन च, निद्राविस्वरूपमिदं-‘सुहपडिबोहो निहा दुहपडिबोहो य निहनिहा य । पयला होति ठियस्स उ पयलपयला य चंक्रमओ ॥ १ ॥ अतिसंकिलिद्धकम्माणुवेदणे होइ थीणगिद्धीओ । महनिहा विणचित्तियबावार- पसाहणी पायं ॥ २ ॥ सातावेदनीयं प्रीतिकारी, ‘कुव कोपे’ क्रोधनं क्रोधः, कोपो रोपो दोषोऽनुपशम इत्यर्थः, मानः स्तंभो गवे उत्सुको औदयिका- दयो भावाः ॥ ६२ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२४-१२६] / गाथा [१८-२३]
प्रत सूत्रांक [१२४- १२६] गाथा ॥१८- २३॥ दीप अनुक्रम [१५१- १६३]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ६३ ॥ अहंकारो दर्पः स्मयो मत्सर ईर्ष्येत्यर्थः, माया प्रणिधिरुपधिर्निकृति वचना दम्भः कूटमभिसंधानं साध्यमनाजवभिन्यर्थः, लोभो रागो गाभ्य- भिच्छा मूच्छाऽभिलाषो संगः कांक्षा स्नेह इत्यर्थः, माया लोभश्च प्रेम क्रोधो मानश्च द्वेषः, तत्र यदर्हदवर्णवादहेतुलिङ्गं अर्हदादिभ्रद्धानविघातकं दर्शनपरीषहकारणं तन्मिथ्यादर्शनं, यन्मिथ्यास्वभावप्राचितपरिणामं विशेषाद् विशुध्यमानकं सप्रतिघातं सम्यक्त्वकारणं सम्यग्दर्शनं, यन्मिथ्या- त्वस्वभावचितं विशुद्धाविशुद्धश्रद्धाकारि तत्सम्यग्मिथ्यादर्शनं, त्रिविधं दर्शनमोहनीयमुक्तं कर्म, चारित्रमोहनीयं द्विविधं-कषायवेदनीयं नो- कषायवेदनीयं च, द्वादश कषायाः अप्रत्याख्यान्यायाः क्रोधाद्याः, नव नोकषायाः हास्यादयः, नारकतिर्यग्योनीसुरमनुष्यदेवानां भवनशरीरस्थिति- कारणमायुष्कं, तांस्तानात्मभावान् नामयतीति नाम कर्मपुद्गलद्रव्यं, प्रति स्वं गत्यभिधानकारणं, जातिनाम पंचविधमेकेन्द्रियजातिनामादिकारणं, शरीरनाम शरीरोत्पत्तिकारणं, तद्गोपांगनाम यथा शरीरनाम पंचविधौदारिकशरीरनामादिकार्येण साधितं यदेषामेवांगोपांगनिष्ठात्ति- कारणं तद्गोपांगनाम, तथाऽन्यत् शरीरनामः कथं?, अंगोपांगभावेऽपि शरीरोपलब्धेः, तच्च प्राक् शरीरत्रये नान्यत्र, बौदिः तनुः शरीर- मिति पर्यायः, अनेकता च जघन्यतोऽयौदारिकतैजसकर्मणोर्दिभावात्, वृद्धं तु तद्गोपांगोपांगसंघातभेदात्, संघातः पुनरेकैकांगदेरनन्त- परमाणुनिवृत्तत्वादिति । तथा सामायिकादिचरणक्रियाभिद्धत्वात्सिद्धः, तथा जीवादितत्त्वबोधाद् बुद्धः, तद्वा बाह्याभ्यन्तरप्रत्यभेदनेन मुक्तत्वा- न्मुक्तः, तथा प्राप्तव्यप्रकर्षप्राप्तौ परिः-सर्वप्रकारैर्निवृत्तः परिनिवृत्तः, संसारान्तकारित्वादन्तकृत्, एकान्तेनैव शरीरमानसदुःखप्रहीणाः सर्वदुः- खप्रहीणा इति, उक्तः चाधिकः । ‘से किं तं खओवसमिण्, खओवसमिण् दुविहे पण्णत्ते, तं-खओवसमे य खओ वसमनिष्फण्णे य,’ तत्र क्षयोपशमश्चतुर्णां घातिकर्मणां, केवलज्ञानाप्रतिपन्नकानां ज्ञानावरणदर्शनावरणमोहनीयांतरायाणां क्षयोपशमः, ण मिति पूर्ववत्, इह चोदार्ण- स्य क्षयः अनुदर्णस्य च विपाकमधिकृत्योपशम इति गृह्यते, आह-औपशमिकोऽप्येवंभूत एव, न, तत्रोपशमितस्य प्रदेशानुभवतोऽप्यवेदनादस्मिन्न औदयिका- दयो भावाः ॥ ६३ ॥

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२४-१२६] / गाथा [१८-२३]
प्रत सूत्रांक [१२४- १२६] गाथा ॥१८- २३॥ दीप अनुक्रम [१५१- १६३]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ६५ ॥ असंभवी, संसारिणां जवन्यतोऽन्यौद्यिकश्चायोपशमिकपरिणामिकभावत्रयोपेतत्वात्, तथापि भंगकरत्वात्मात्रदर्शनार्थत्वाददुष्टः, एवमन्योऽप्य- संभवी वेदितव्य इति, अविरुद्धास्तु पंचदश एव सान्निपातिकभेदास्ते अत्रानधिकृता अपि प्रदेशान्तरे उपयोगिन इति सान्निपातिकसाम्यान्निद- श्यते-‘उद्द्वयस्वओवसमिय परिणामियउत्ति गतिचउक्केवि । स्वययोगेणऽवि चउरौ तयभावे उवसमेणपि ॥ १ ॥ उवसमसेदी एक्को केवलिणो विइय तहेव सिद्धस्म । अविरुद्धसंनिवाडित एमंत हुंति पन्नरस ॥ २ ॥’ औद्यिकत्वायोपशमिकपारणामिकसान्निपातिक एकैको गतिचतु- ष्केऽपि, तद्यथा-उदणत्ति णेरइण खओवसमियाइं इंदियाइं परिणामियं जीवत्तं, जया खइयं समत्तं तदा ओद्द्वयस्वओवसमस्वइयपारिणामिकनि- स्पन्नः सान्निपातिकः, एकैको गतिचतुष्केषु, तद्यथा-उदणत्ति णेरइण खओवसमियाइं इंदियाइं खइयं समत्तं पारिणामिए जीवे, एवं तिर्यगादिष्वपि वाच्यं, तिर्यक्ष्वपि श्वायिकसम्यग्दृष्टयः कृतभंगमंख्याऽन्यथाऽनुपपत्तेरिति भावनीयं, तदभावे श्वायिकाभावे चशब्दात् शेषत्रयभावे चौपशमि- केनापि चत्वार एव, उपशममात्रस्य गतिचतुष्टयेऽपि भावात् ‘ऊसरदेसं दङ्केलये च विज्झाति वणद्वो पप्प । इय मिच्छस्स अणुदए उवसमसम्मं लहइ जीवो ॥ १ ॥’ अविशिष्योक्तत्वात्, तथा ‘उवसामियं तु सम्मत्तं । जो वा अकततिपुंजो अस्ववियमिच्छो लइह सम्म ॥ १ ॥ मित्यत्र श्रेणिद्वयतिरेकेण विशिष्यैवोक्तत्वात्, अभिलापः पूर्ववत्, त्वरं श्वायिकसम्यक्त्वस्थाने ओवशमिकसम्मत्तेति वक्तव्यं, एते चाष्टौ भंगाः प्राक्तना- श्चत्वार इति द्वादश, उपशमश्रेण्यां एगो भङ्गस्तस्य मनुष्येष्वेव भावात्, अभिलापः पूर्ववत्, त्वरं मनुष्यविषय एव, केवलित्तैश्च एव-उद- इण मणुरसे खइयं समत्तं पारिणामिए जीवे, तथैव सिद्धस्स एक एव-खइयं समत्तं पारिणामिए जीवे, एवमेते त्रयो भंगाः सहिताः अविरुद्ध- सान्निपातिकभेदाः पंचदश भवंति, कृतं प्रसंगेन । से तं सन्निवातिये नाम, योजना सर्वत्र कार्या, से तं छ णामे, गतं षडनाम । ‘से किं तं सत्त नामे’ त्यादि (१२७-१२७) सप्पनाम्नि सप्प स्वराः प्रज्ञप्ताः, तंजहा-‘सज्जे’ त्यादि (२५-१२७), ‘पड्जो रिपभो पणनामानि ॥ ६५ ॥

[illegible]

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२७-१२८] / गाथा [२४-५६]
प्रत सूत्रांक [१२७- १२८] गाथा २४- ५६ दीप अनुक्रम [१६४- २०४]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तो ॥ ६८ ॥ भासा, सेसं कथं । इत्थी पुरिसा वा केरिसं गायइत्ति पुच्छा ‘केसी’ गाहा (*५४-१३१) उत्तरं ‘गोरी’ गाहा (*५५-१३१) इमे सर- मंडलसंक्षेपार्थः, ‘सत्त सरा ततो मामा’ गाहा (*५६-१३२) तती ताना ताणो भन्नइ सज्जादिसरेसु एक्केके सत्तत्ताणओ अउणपणासं, एते वीणाए सत्ततंतीए सरा भवंति, सउओ सरो सत्तहा तंतीताणसेरण गिञ्जइ, ते सब्बे सत्तट्टाणा । एवं सेसेसुवि ते वेव, इगतंतीए कंठेण वा गिञ्जमाणो अउणपणासं ताणा भवन्ति, ते सं सत्त नाम । ‘से किं तं अट्टणामे’ (१२८-१३३) अट्टविधा-अष्टप्रकारेण, उच्यन्ते इति वचनानि तेषां विभक्तिर्वचनविभक्तिः, विभजनं विभक्तिः सि- औजासित्यादिभिर्निब्रिवचनसमुदायात्मिका प्ररूपिता अर्थतस्तीर्थकरैः सूत्रतो गणधरैरिति, तंजहा-‘निंदसे पढमे’ त्यादि (*५७।१८।१३३) सिलोग- दुगं णिगदासिद्धं, उदाहरणप्रदर्शनार्थमाह-‘तत्थ पढमे’ त्यादि, (*५९-१३३) तत्र प्रथमा विभक्तिर्निर्देशे, स चायं अहं चेति निर्देशमात्रत्वात्, द्वितीया पुनरुपदेशे, उपदिश्यत इत्युपदेशः, भणइ कुरु वा एतं वा तं चेति कर्मार्थत्वात्, तृतीया करणे कृता, कथं ?, भणितं वा कृतं वा तेन वा मया वेति करणार्थः, हं दीत्युपदर्शने णमो साहाएत्ति उपलक्षणं, नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंबवद्ध्योगाच्च (पा. २-३-१६) नमो देवेभ्यः स्वस्ति प्रजाभ्यः स्वाहा अग्नये, भवति चतुर्थी संप्रदाने, तत्रैके व्याचक्षते-इदमेव नमस्कारादि संप्रदानं, अन्ये पुनरुपाध्यायाय गां प्रयच्छतीत्यादीनि । ‘अवणय’ इत्यादि(*६१-१३३)अपनय ग्रहणे (गृहाण . अपनय अस्मात् इत इति वा पंचमी अपादाने ‘भुवमपायेऽपादान’- मिति (पा. १-४-२४) कृत्वा, षष्ठी तस्यास्य वा गतरस्य च श्रुत्य इति गम्यते स्वामिसंबंधे भवति, पुनः सप्तमी तद्वस्तु अस्मिन्निति आधारे काले भावे, यथा कुण्डे बदराणि वसंत रमंते चारित्रे अवतिष्ठत इति, आसंत्रणी तु भवेत् अष्टमी विभक्तिः, यथा हे जुवानन्ति, वृद्धवैयाकरण- दर्शनमिदमित्युगीनानां त्वियं प्रथमैव, तदेतदष्टनामेति । अष्ट नामानि ॥ ६८ ॥

[illegible]

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२९-१३०] / गाथा [५७-८२]
प्रत सूत्रांक [१२९- १३०] गाथा ॥५७- ८२॥ दीप अनुक्रम [२०५- २०४]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हरि.वृत्तौ ॥ ७१ ॥ णमाह-‘करुणो रसो यथा ‘पञ्जाय’ गाहा (॥७९-१३९) प्रध्यातेन-अतिचिंतया क्लान्तं-बाष्पागतप्रप्लुताक्षं स्थन्दमानाश्रु-च्योतलोचनमिति भावः, शेषं सूत्रसिद्धमिति गाथार्थः । प्रशान्तरसलक्षणमाह-‘निद्रोस’ गाहा (॥८०-१३९) निद्रोषमनःसमाधानसंभवः, हिंसादिदोष-रहितस्य इंद्रियविषयविनिवृत्त्या स्वस्थमनसो यः प्रशान्तभावेन-क्रोधादित्यागेन अविकारलक्षणः-हास्यादिविकारवर्जितः असौ रसः प्रशान्तो ज्ञातव्य इति गाथार्थः, उदाहरणमाह-प्रशान्तो रसो यथा ‘सुन्भाव’ गाहा (॥८१-१३९) ‘सद्भावनिर्विकारं’ न मातृस्थानतः उपशान्तप्रशान्त-सौम्यदृष्टि-उपशान्ता-इंद्रियदोषत्यागेन प्रशान्ता-क्रोधादित्यागतः अनेनोभयेन सौम्या दृष्टिर्धेस्मिन् ततश्चा, हीत्यर्थं मुनेः प्रशान्तभावातिशय-प्रदर्शने, यथा मुनेः शोभते मुखकमलं पीवरश्रीकं-प्रधानलक्ष्मीकमिति गाथार्थः । ‘एते णव’ गाहा (८२-१३९) एते नव काव्यरसाः, अनन्तरोदिताः द्वात्रिंशदोषविधिसमुत्पन्नाः-अनुतादिद्वात्रिंशत्सूत्रदोषास्तेषां विधिः समुद्भवा इत्यर्थः, तथाहि-वीरो रसो संप्रामादिषु हिंसया भवति तपःसंयमकरणादावपि भवति, एवं शेषेष्वपि यथासंभवं भावना कार्या, तथा चाह-गाथाभ्यः उक्तलक्षणाभ्यः सुणितव्या भवन्ति शुद्धा वा मिश्रा वा, शुद्धा इति काश्चिद्गाथाः-सूत्रबंधः अन्यतमरसेनैव शुद्धेन प्रतिबद्धाः, काश्चन मिश्राः द्विकादिसंयोगेनेति गाथार्थः ॥ उक्तं च नवनाम, अधुना दशनामोच्यते, तथा चाह— ‘से किं तं दसनाम ?’ (१३०-१४०) दसनाम दशविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-‘गोणं नोगोणं’ मित्यादि, एतेषां प्रतिवचनद्वारेण स्वरूपमाह-‘से किं तं गोणे’ गुणनिष्पन्नं गौणं, क्षमतीति क्षमण इत्यादि, ‘से किं तं नोगोणे?’ नोगोणो-अयथार्थं, अकुंतः सकुंत इत्यादि, अविज्जमानकुं-ताख्यप्रहरणविशेष एव सकुंत इत्युच्यते, एवं शेषेष्वपि भावनीयं । ‘से किं तं आदाणपदेणं ? २’ आदानपदेन धर्मो संगलमित्यादि, इहादि-पदमादानपदमुच्यते । ‘से किं तं पडिवक्खपदेणं ? २’ प्रतिपक्षेषु त्वेषु-प्रत्यक्षेषु ग्रामाकरनगरखेटकथैटमडम्बद्वेणमुखपत्तनाश्रमसंवाधस- नवरसाः ॥ ७१ ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३१-१३४] / गाथा [८३-१०२]
प्रत सूत्रांक [१३१- १३४] गाथा ॥८३- १०२॥ दीप अनुक्रम [२०५- २७०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हरि.वृत्ति ॥ ७९ ॥ चक्रचरं भण्णइ, देवउलं चउमुहं, महत्तो रायमग्गो, इतरा पहा, सत्-सोभणाविहु जं भयंते पोत्थयवायणं वा जत्थ अण्णतो वा मणुयाणं अच्छन्नद्वाराणं वा सभा, जत्थुदगं दिज्जति सा पवा, बाहिरा लिंदो, सुकिधी अलिंदो वा सरणं, गिरिगुहा लेणं, पठ्वयस्सेगदेसलीणं वा लेणं कप्प- डिगादि व जत्थ लयंति तं लेणं, भंडं भायणं, तं च मृन्मयादि मात्रो-मात्रायुत्तो, सो य कंसभोयणभीडका, उवकरणं अण्णगविहं कडगपिडग- सूर्पादिकं, अहवा उवकरणं इमं सगडरहादियं, तत्थ ‘रहो’ सि जाणरहो संगामरहो य, संगामरहस्स कडिप्पमाणा फलयवेइया भवति, जाणं पुण गंडिमाइयं, गोळविसए जंपाणं द्विहस्तप्रमाणं चतुरस्रं सवेदिकं उपशोभितं जुग्गं लाडाण थिल्ली जुग्गयं हस्तिन उपरि कोळरं गिलतीव मानुपं गिल्ली लाडाणं जं अणपल्लाणं तं अण्णविसएसु थिरुडी भणइ, उवरि कूडागारछादिया सिविया दीहो जंपाणविसेसो पुरि- सस्स, स्वप्रमाणवगासदाणत्तणओ संदमाणी, लोहिति कावेल्ली लोहकडाहंति-लोहकडिलं, एतं आयंगुलेणं मविज्जति, तथाऽद्यकालीनानि च जोजनानि मीयंते, शेषं निगदसिद्धं यावत् से तं आयंगुले ॥ ‘से किं तं उस्सहगुले २,’ उच्छ्रयांगुलं कारणपेक्षया कारणे कार्योपचारादनेकाविधं प्रकृतं, तथा चाह-‘परमाणु’ इत्यादि (*१९-१६०) परमाणुः त्रसरेणूरथरेणुरग्रं च वालस्य लिखा यूका च यवः, अद्भुतगुणविवर्द्धिताः क्रमशः उत्तरोत्तरवृद्ध्या अंगुलं भवति, तत्थ णं जे से सुहुमो से ठप्पेत्ति स्वरूपख्यापनं प्रति तावत् स्थाप्यो, अनधिकृत इत्यर्थः, ‘समुद्यसमिति सभागमेणं’ ति अत्र समुदायस्त्रयादिभेलकः परमाणुपुद्गलो निष्फज्जते, तत्र चोदकः पृच्छति-‘से णं भंते !’ इत्यादि, सो भदन्त ! परमाणुः असिधारं वा क्षुरधारां वा अवगाहेत-अवगाह्यासीत असिः- खड्गः क्षुरो-नापितोपकरणं, प्रत्युत्तरमाह-हन्तावगाहेत ‘हन्त संप्रेषणप्रत्यवधारणविवादेष्विति वचनात्, स तत्र छियेत भियेत वा, तत्र छेदो- द्विधाकरणं भेदोऽनेकधा विदारणं, प्रअनिर्वचनं-नायमर्थः समर्थः, नैतदेवमिति भावना, अत्रैवोपपत्तिमाह-न खलु तत्र शस्त्रं संक्रामति, सूक्ष्म- आत्मांगुल मुत्सेधा- गुलं च ॥ ७९ ॥

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३१-१३४] / गाथा [८३-१०२]
प्रत सूत्रांक [१३१- १३४] गाथा ॥८३- १०२॥ दीप अनुक्रम [२०५- २७०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ८१ ॥ ॥ १ ॥ ‘से किं पमाणं’ २ एकैकस्य राक्षश्चतुरन्तचक्रवर्त्तिनः, तत्रान्यान्यकालोत्पन्नानामपि तुल्यकाकणीरत्नप्रतिपादनार्थमेकैकप्रहणं, निरुपचरितराजशब्दविषयज्ञापनार्थं राजप्रहणं, षट्खंडभरतादिभोक्तृत्वप्रतिपादनार्थं चतुरन्तचक्रवर्त्तिन इत्यत्रान्ये, चत्वारि मधुरतणफला एगो सेयसरिसवो, सोल सरिसवा एगं धणमासफलं, दो धणमासफलाइ गुंजा, पंच गुंजाओ एगो कम्ममासगो, सोलस कम्ममासगा एगो सुवण्णो, एते य मधुरतणफलादिगा भरहकालभाविणो धिप्पंते, जतो सव्वचक्रवट्टीणं तुल्लमेव कागणीरयणंति, षट्त्तलं द्वादशाभि अष्टकर्णिकं अधिकरणिसंस्थानसंस्थितं प्रज्ञमं, तत्र तल्लानि-मध्यभाण्डानि अश्रयः-कोटयः कर्णिकाः-कोणिविभागाः अधिकरणिः-सुवर्णकारोपकरणं प्रतीतमेव, तस्य काकणिरत्नस्य एकैका कोटिः उच्छ्रयाङ्गुलप्रमाणविष्कम्भकोटीविभागा, विक्खंभो-वित्थारो, तस्स य समचउरस्सभावत्तणओ सव्वकोटीण तुल्लायामविष्कंभगहणं, तच्छ्रमणस्य भगवतो महावीरस्याद्धाङ्गुलं, कहं?, जतो वीरो आदेसंतरतो आयंगुलेण चुलसी-तिमंगुलमुत्तिवद्धो, उस्सेहं पुण सत्तसद्धं सयं भवति, अतो दो उस्सेहंगुला वीरस्स आयंगुलओ, एवं वीरस्सायंगुलाओ अद्धं उस्सेहंगुलं दिद्धं, जेसिं पुण वीरो आयंगुलेण अट्टुत्तरमंगुलसत्तं तेसिं वीरस्स आयंगुलेण एकमुस्सेहंगुलं उस्सेहंगुलस्य य पंच णवभागा भवन्ति, जेसिं पुणो वीरो आयंगुलेण वीसुत्तरमंगुलसयं तेसिं वीरस्सायंगुलेणगमुस्सेहंगुलं उस्सेहंगुलस्स य दो पंचभागा भवन्ति, एवमेतं सव्वं तेरासिय-करणेण दट्ठव्वं, उच्छ्रयांगुलं सहस्रगुणितं प्रमाणाङ्गुलमुच्यते, कथं?, भण्णति-भरहो आयंगुलेण वीसुत्तरमंगुलसत्तं, तं च सपायं धणुयं, उस्सेहंगुलमाणेण पंचधणुसया, जइ सपाएण धणुणा पंच धनुसए लभामि तो एगेण धणुणा किं लभिस्सामि?, आगतं चइ धणुसताणि सेदीए, एवं सव्वे अंगुलजोयणादयो दट्ठव्वा, एगंभि सेट्ठिपमाणंगुले चउरो उस्सेहंगुलसया भवन्ति, तं च पमाणंगुलं उस्सेहंगुलपमाणेण अद्वा-तियंगुलवित्थडं, ततो सेदीए चउरो सता अद्वाइयंगुलगुणिया सहस्सं उस्सेहंगुलाणं, तं एवं सहस्सगुणितं भवति, जे यप्पमाणंगुलाओ काकिणी रत्नं उत्से- धांगुलं च ॥ ८१ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३५-१३७] / गाथा [१०३-१०६]		
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः			
प्रत सूत्रांक [१३५- १३७] गाथा १०३- १०६ दीप अनुक्रम [२७१- २७८]	श्रीअनु० हारिवृत्ती ॥ ८२ ॥	पुढवादिपमाणं आग्निज्जन्ति ते पमाणंगुलविक्रमेण आपेतव्वा, ण सुहङ्गुलेणं, शेष् सुगमं, यावत् तदेवत्क्षेत्रप्रमाणमिति, नवरं काण्डानि रत्नकाण्डादीनि भवनप्रस्तटान्तरे टंकाः-छिन्नटंकानि रत्नकूटादयः कूटाः शैलाः मुंडपर्वताः शिखरवन्तः शिखरिणः प्राग्भागा-ईषद्वनता इति । ‘से किं तं कालप्पमाणं’ इति (१३४-१७५) कालप्रमाणं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तथाथा-प्रदेशानिष्पन्नं विभागनिष्पन्नं च, तत्र प्रदेशनिष्पन्नं एकसमयस्थित्यादि यावदसंख्येयसमयस्थितिः, समयानां कालप्रदेशत्वादसंख्येयसमयस्थितेश्चोर्ध्वमसंभवात्, विभागनिष्पन्नं तु समयादि, तथा चाह-‘समयावलिय गाहा (#१०३-१७५) कालविभागाः खस्विमाः, समयादित्वाच्चैतेषामादौ समयनिरूपणा क्रियते, तथा चाह-‘से किं तं समय’ (१३७-१७५) प्राकृतशैल्याऽभिधेयवर्ल्लिगवचनानि भवन्तीति न्यायाद्य कोऽयं समय इति पृष्ठः सन्नाह-समयस्य प्ररूपणां करिष्याम इति, तथाचा नाम तुल्यदारकः स्यात् सूचिक इत्यर्थः तरुणः प्रबद्धमानवयाः, आह-दारकः प्रबद्धमानवया एव भवति किं विशेषणेन ?, न, आसन्नमृत्योः प्रबद्धमानवयस्त्वाभावस्तस्य चासन्नमृत्युत्वादेव विशिष्टसामर्थ्यानुपपत्तेः, विशिष्टसामर्थ्यप्रतिपादनार्थश्चायमारंभ इति, अन्ये तु वर्णादिगुणोपचितो भिन्नवयस्तरुण इति व्याचक्षते, बलं-सामर्थ्यं तदस्यास्तीति बलवान्, युगः-सुपमदुष्पमादिकालः सोऽस्य भावेन न कालदोषतयाऽस्यास्तीति युगवान्, कालोपद्रवोऽपि सामर्थ्यविघ्नहेतुरिति, जुवाणं युवा वयःप्राप्तः, दारकाभिधानेऽपि तस्यानेकधा भेदाद्विशिष्टवयोऽवस्थापरिग्रहार्थमिदमदुष्टं, ‘अल्पातंकः’ आतङ्को-रोगः अत्राप्यशब्दोऽभाववचनः, स्थिरामहस्तः लेखकवत् प्रकृतपटपाटनोपयोगित्वाच्च विशेषणाभिधानमस्योपपद्यत एव दृढः पाणिपादपार्ष्वेषुष्टान्तरोरुपरिणतः, सर्वांगावयवैरुत्तमसंहनन इत्यर्थः, तलय-मलयुगलपरिधनिम्बाहुः परिधः-अर्गला तन्निम्बाहुस्तथ य तदाकारबाहुरिति भावार्थः, आगतुकोपकरणजं सामर्थ्यमाह-चर्मैष्टकद्रुघनमुष्टि-समाहृतनिचितकाय इति, ऊरस्यबलसमन्वागतः, आन्तरोत्साहवीर्ययुक्त इत्यर्थः, व्यायामवत्त्वं दर्शयति-लंघनलघनशीघ्रव्यायामसमर्थः,	समय- निरूपणं
*** अथ ‘काल’ विभागे ‘समय-आवलीका-आदि वर्णनं क्रियते			

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३५-१३७] / गाथा [१०३-१०६]
प्रत सूत्रांक [१३५- १३७] गाथा [१०३- १०६] दीप अनुक्रम [२७१- २७८]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ८३ ॥ जैनशब्दो शीघ्रवचनःलेकः-प्रयोगज्ञः दक्षः-शीघ्रकारी प्राप्तार्थः-अधिगतकर्मनिष्ठां गतः, प्राज्ञ इत्यन्ये, कुशलः-आलोचितकारी मेधावी-सकृत्श्रुत-दृष्टकर्मज्ञः निपुणः-उपायारम्भकः निपुणशिल्पोपगतः-सूक्ष्मशिल्पसमन्वितः, स इत्यभूतः एकां महतीं पटशाटिकां वा पटशाटकं वा इलक्षणतया पटशाटिकेति भेदेनाभिधानं, गृहीत्वा ‘सयराह’ मिति सकृद् दृष्टिः कृत्वेत्यर्थः, हस्तमात्रमपि उत्सारयेत् पाटयेदित्यर्थः । तत्र चोदकः-शिष्यः प्रज्ञापयतीति प्रज्ञापको-गुरुस्तमेवमुक्तवान्-किं?, येन कालेन तेन तुल्यवायदारकेण तस्याः पटशाटिकाया सकृद्वस्तमात्रमपसारितं-पाटितमसौ समय इति?, प्रज्ञापक आह-‘नायमर्थः समर्थः’ नैतदेवमित्युक्तं भवति, कस्मादिति पृष्ट उपपत्तिमाह-यस्मात्संख्येयानां तन्तूनां समुद्यसमितिसमागमेनेति पूर्ववत्, पटशाटिका निष्पद्यते, तत्र उवरिल्लात्ति-उपरितने तंतौ अच्छिन्ने-अविदारिते ‘हेट्टिल्ले’ त्ति अधस्तनस्तन्तुर्न छिद्यते, अन्यस्मिन्काले आद्योऽन्यस्मिन्प्रापरस्तस्मादसौ समयो न भवति, एतच्च प्रत्यक्षप्रतीतिं, संघातस्त्वनंतानां परमाणूनां विशिष्टैकपरिणामयोगस्तेषामनन्तानां संघातानां संयोगः-समुद्यस्तेषां समुद्यानां याऽन्योऽन्यानुगतिसौ सामितिस्तेषामेकद्रव्यनिवृत्तिसमागमेन पटः निष्पद्यत इति, समयस्य चातोऽपि सूक्ष्मत्वात्, परमाणुव्यतिक्रान्तिलक्षणकाल एकसमय इति, न, पाटकप्रयत्नस्याचित्यसक्तियुक्तत्वाद्, अभागे च तन्तुविसंघातोपपत्तेस्तुल्यप्रयत्नप्रवृत्तानवरतप्रवृत्तगंत्रतुल्यकालेनेष्टदेशप्राप्त्युपलब्धेः प्रयत्नविशेषसिद्धिरर्हद्वचनाच्च, उक्तं च-‘आगमश्चोपपत्तिश्च, संपूर्णं दृष्टिलक्षणम् । अतीन्द्रियाणामर्थानां, सद्भावप्रतिपत्तये ॥ १ ॥ आगमो ह्याप्रवचनमात्रं दोषक्षयाद्विदुः । वीतरागोऽनृतं वाक्यं, न भूयाद्वैत्वसंभवात् ॥२॥ उपपत्तिर्भवेत्पुक्तिर्या सद्भावप्रतिपत्तये । सा त्वन्वयव्यतिरेकलक्षणा सूरिभिः स्मृते ॥३॥’ ति, निदर्शनं चेहोभयमपि, अले विस्तरेण, गमनिकामात्रमेतत्, शेषं सूत्रसिद्धं यावत् ‘हट्टस्से’ त्यादि(१०४-१०८) हट्टस्य-तुष्टस्य अनवकल्लस्य-जरसा अपीहितस्य निरुपाविल्लप्टस्य-व्याधिना पूर्वं सांप्रतं वाऽनभिभूतस्य जन्तोः मनुष्यादेः एक उच्छ्वासनिच्छ्वास एकः प्राण इत्युच्यते-‘सत्त पाणूणि’ सिल्लोगो (१०५-१०९) निगदसिद्ध एव, समय- निरूपणं ॥ ८३ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३५-१३७] / गाथा [१०३-१०६]
प्रत सूत्रांक [१३५- १३७] गाथा ॥१०३- १०६॥ दीप अनुक्रम [२७१- २७८]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ८४ ॥ उच्छ्वासमानेन मुहुर्त्तमाह-‘तिष्ठिण सहस्सा’ गाथा-(*१०६-१७९) सत्ताहिं ऊरसासेहिं थोवो सत्त थोवा य लवे, सत्तथोवेण गुणितस्स- वि जथा लवे अउणपण्णं उरसासा लवे, मुहुत्ते य सत्तहत्तिरि लवा भवन्ति, ते अउणपण्णासाए गुणिता एयप्पमाणा इवन्ति, शेषं निगदसिद्धं यावत् एतावता चेव गणितस्स उवओगो इमो-अंतोमुहुत्तादिया जाव पुव्वकोडित्ति, एतानि धम्मचरणकालं पडुच्च नरत्तिरियाण आउपरिणाम- करणे उवउज्जंति, णारगभवणवंतराणं दसवाससहस्सादिया, उवउज्जंति आउयचित्ताए तुडियादिया सीसपहेलियंता, एते प्रायसो पुव्वगतेसु जवितेसु आउसेहीए उवउज्जंतित्ति ॥ ‘से किं तं उवमय’ ति (१३८-१८०) उपमया निवृत्तमौपमिकं, उपमामन्तरेण यत्कालप्रमाणमनतिशयिना प्रहीतुं न शक्यते तदौप- मिकमिति भावः, तच्च द्विधा-पल्योपमं सागरोपमं च, तत्र धान्यपल्यवत्पल्यः तेनोपमा यस्मिस्तत्पल्योपमं, तथाऽर्थतः सागरेणोपमा यस्मिन् तत्सागरोपमं, सागरवन्महत्परिणामेनेत्यर्थः । तच्च पल्योपमं त्रिधा-‘उद्धारपलिओवमं’ इत्यादि, तत्र उद्धारो बालाणां तत्खण्डानां वा अपोद्धरण- मुच्यते, तद्विषयं तत्प्रधानं वा पल्योपमं उद्धारपल्योपमं, तथाऽद्धृत्ति कालाख्या, ततश्च बालाप्रानां तत्खंडानां च वर्षशतोद्धरणादुद्धापल्यस्तेनोपमा यस्मिन्, अथवाऽद्धा-आयुःकालः सोऽनेन नारकादीनामानीयत इत्युद्धापल्योपमं, तथा क्षेत्रमित्याकाशं, ततश्च प्रतिसमयमुभयथापि क्षेत्रप्रदेशापहारे क्षेत्रपल्योपममिति । ‘से किं तं उद्धारपलिओवमे’ अपोद्धारपल्योपमं द्विविधं प्रज्ञमं, तद्यथा-खंडकरणात् सूक्ष्मं, बादराणां व्यावहारिकत्वात् व्यावहा- रिकं, प्ररूपणामात्रव्यवहारोपयोगित्वाद् व्यावहारिकमिति, ‘से ठप्पे’ ति सूक्ष्मं तिष्ठतु तावद् व्यावहारिकप्ररूपणापूर्वकत्वादेतत्प्ररूपणाया इत्यतः पश्चात्प्ररूपयिष्यामः, तत्र यत्तद्व्यावहारिकमपोद्धारपल्योपमं तदिदं वक्ष्यमाणलक्षणं, तद्यथा नाम पल्यः स्यात् योजनं आयामविष्कम्भाभ्यां, वृत्तत्वात्, योजनमूर्ध्वमुखत्वेन अवगाहनतयेति भावना, तद्योजनं त्रिगुणं सत्रिभागं परिरयेण, परिधिमधिकृत्येत्यर्थः, स एकाहिकव्याहिकव्याहिकादीनां उच्छ्वा- सादि निरूपणं पल्योपमं च ॥ ८४ ॥

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रत सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा [१०७- ११२] दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ८६ ॥ मित्यादि, बादरपृथिवीकायिकपर्याप्तकशरीरतुल्यानीति वृद्धवादः, शेषं निगदसिद्धं यावत् ‘जावद्वा अद्वाइज्जाण’ मित्यादि, यावन्तोऽर्द्धवृत्तीये- पु सागरेष्वपोद्धारसमया वालाप्तापोद्धारोपलक्षिताः समया आपोद्धारसमयाः एतावन्तो द्विगुणद्विगुणविष्कंभा द्विपसमुद्रा आपोद्दारेण प्रज्ञताः, असंख्येया इत्यर्थः, उक्तमपोद्धारपल्यापमं, अद्वापल्योपमं तु प्रायो निगदसिद्धमेव, नवरं स्थीयते अन्येत्यायुष्ककर्मपरिणत्या नारकादिभवे- ष्विति स्थितिः, जीवितमायुष्कमित्यनर्थान्तरं, यद्यपि कायादियोगगृहीतानां कर्मपुद्गलानां ज्ञानावरणादिरूपेण परिणामितानां यदवस्थानं सा स्थितिः तथाप्युक्तपुद्गलानुभवनमेव जीवितमिति तच्च रूढितः इयमेव स्थितिरिति, पञ्जत्तापञ्जत्तगविभागो य एसो-णारगा करणपञ्जत्तीए चेव अपञ्जत्तगा हवन्ति, ते य अंतोमुहुत्तं, लद्धिं पुण पडुक्च गियमा पञ्जत्तगा चेव, तओ अपञ्जत्तगकालो सव्वावगातो अवणिज्जति, सेसो य पञ्जत्तगसमयोत्ति, एवं सव्वत्थ दट्ठव्वं, एवं देवावि करणपञ्जत्तीए चेव अपञ्जत्तगा दट्ठव्वा, लद्धिं पुण पडुक्च गियमा पञ्जत्तगा चेव, गम्भवकंतियपंचिदिया पुण तिरिया मणुया य जे असंखेज्जावासाउया ते करणपञ्जत्तीए चेव अपञ्जत्तगा दट्ठव्वा इति, उक्तं च-‘नारगेदेवा तिरिमणुग गम्भजा जे असंखवासाउ । एते उ अपञ्जत्ता उववाते चेव बोद्धव्वा ॥ १ ॥ सेसा तिरियमणुस्मा लद्धिं पप्पोववायकाले या । दुहओविय भइयव्वा पञ्जत्तियरे य जिणवयणं ॥ २ ॥’ इत्थं क्षेत्रपल्योपममपि प्रायो निगदसिद्धमेव, नवरं अप्फुण्णा वा अणफुण्णा वत्ति अत्र अप्फुण्णा-स्फुटा आक्रान्ता इतियावद्विपरीतं अणफुण्णा, आह-यद्येते सर्वेऽपि परिगृह्यन्ते किं बालाप्रैः प्रयोजनं?, उच्यते, एतद् दृष्टिवादे द्रव्य- मानोपयोगि, स्पृष्टास्पृष्टैश्च भेदेन मीयन्त इति प्रयोजनं, कूष्माण्डानि-पुंस्फलानि मातुल्लिगानि-बीजपूरकाणि, अस्पृष्टाश्च, क्षेत्रप्रदेशापेक्षया बालाप्रानां बादरत्वादिति, ‘धम्मत्थिकाए’ इत्यादि, (१४१-१९३) धर्मास्तिकायादयः प्रागिरूपितशब्दार्था एव, नवरं धर्मास्तिकायः संप्रहर्नयाभिप्रायादेक एव, धर्मास्तिकायस्य व्यवहरनयाभिप्रायादेशादिविभागः, धर्मास्तिकायस्य प्रदेक्षा इति, ऋजुसूत्रनयाभिप्रायादन्त्या उद्दाराद्वा- क्षेत्रपल्यो- पमानि ॥ ८६ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रत सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा ॥१०७- ११२॥ दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ८७ ॥ एव गृह्यन्ते, असंख्येयप्रदेशात्मकत्वाच्च बहुवचनं, अद्वाप्तमय इति वर्तमानकालः, अतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वादिति ॥ ‘कति णं भंते ! सरीरा’ इत्यादि (१४२-१५५) कः पुनरस्य प्रस्ताव इति, उच्यते, जीवद्रव्याधिकारस्य प्रक्रान्तत्वात्सरीराणामपि च तदुभयरूपत्वादवसर इति, व्याख्या चास्य पदस्यापि पूर्वार्थार्थकृतैव, न किंचिदधिकं क्रियत इति, ‘ओरालिय’ इत्यादि, शरीरं इति शरीरं, तत्त्व ताव उदारं उरालं उरलं उरालियं वा उदारियं, तित्थगरगणधरसरीराइं पडुच्च उदारं, उदारं नाम प्रधानं, उरालं नाम विस्तरालं, विशालंति वा जं भणितं होति, कहं ? सातिरेगजोयणसहस्समबद्धियप्पमाणओरालियं अण्णमेहमिच्चं णत्थि, वेडब्बियं होज्जा लक्खमाहियं, अवाहियं पंचधणुसते, इमं पुण अवट्ठितपमाणं अतिरेगजोयणसहस्सं वनस्पत्यादीनामिति, उरलं नाम स्वल्पप्रदेशोपचितत्वाद् बृहत्त्वाच्च भिण्डवत्, उरालं नाम सांसास्थिस्नाय्वाद्यवयवबद्धत्वात्, वैक्रियं विविधा विशिष्टा वा क्रिया विक्रिया, विक्रियायां भवं वैक्रियं, विविधं विशिष्टं वा कुर्वति तदिति वैकुर्विकं, आहियत इत्याहारकं, गृह्यते इत्यर्थः, कार्यपरिसमाप्तिश्च पुनर्मुच्यते याचितोपकरणवत्, तेजोभावस्तैजसं, रसाद्याहारपाकजननं लब्धनिबंधनं च, कर्मणो विकारः कर्मणं, अष्टविधकर्मनिष्पन्नं सकलशरीरनिबंधनं च, उक्तं- तत्थोदारमुरालं उरलं ओरालमह व विण्णेयं । ओरालियंति पढमं पडुच्च तित्थेसरसरीरं ॥ १ ॥ भण्णइ य तहोरालं वित्थरवंतं वणस्सतिं पप्प । पयतीय णत्थि अण्णं एहमेत्तं विसालंति ॥ २ ॥ उरलं थेवपदेसोवविचियं महल्लगं जहा भेंडं । मंसट्ठिण्हारुबद्धं उरालियं समयपरिभासा ॥ ३ ॥ विविहा विसिद्धगा वा किरिया विकिरिय तीए जं तमिह । नियमा विडब्बियं पुण पारगदेवाण पयतीए ॥ ४ ॥ कज्जंमि समुप्पण्णे सुयकेवल्लिणा विसिद्धलद्धीय । जं एत्थ आदिरिज्जइ भणंति आहारयं तं तु ॥ ५ ॥ पाणिदयरिद्धिसंदरिसणत्थमत्थावगहणहेउं वा । संसयवोच्छेयत्थं गमणं जिणपायमूलंमि ॥ ६ ॥ सव्वस्स उम्हसिद्धं रसादिआहारपागजणणं च । तेयगलद्धिनिमित्तं तेयगं होइ नायट्ठं ॥ ७ ॥ कम्मवि- शरीरपञ्चकं ॥ ८७ ॥
	*** अथ ‘शरीर’स्य पंच-भेदानां वर्णनं प्रस्तूयते

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूल+वृत्तिः)	
प्रत सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा १०७- ११२ दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	 मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२] पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	मुक्तौदा- रिकाणि
श्रीअनु० हारिवृत्तौ ॥ ८९ ॥	उरालियाइं मुक्काइं जाव अविक्काइं ताव वेप्पंति, तो तेसिं अणंतकालवत्थाणाभावतो अणंतत्तणं ण पावइ, अह जे जीवेहिं पोग्गला ओरा- लियस्सेण वेत्तुं मुक्का तीतद्धाए तेसिं गहणं, एवं सव्वे पोग्गला गहणभावावण्णा, एवं जं तं भण्णाति-अभवसिद्धीएहिंते अणंतगुणा सिद्धाणम- णंतभागोत्ति तं विरुञ्छति, एवं सव्वजीवेहिंते बहुएहिं अणंतत्तं पावति, आयसिय आह-ण य अविक्कलाणामेव केवलण गहणं एतं. ण य ओरालियगहणमुक्काणं सव्वपोग्गलाणं, किंतु जं सरीरमोरालियं जीवेणं मुक्कं होति तं अणंतभेदाभिण्णं दो ति जाव ते य पोग्गला तं जीव- णिच्चत्तियं ओरालियं ओरालियसरीरकायप्पओगं ण मुयंति, ण जाव अण्णपरिणामेणं परिणमंति, ताव ताइं पत्तेयं २ सरीराइं भण्णाति, एवमेकेक्खस ओरालियसरीरस्स अणंतभेदाभिण्णत्तणओ अणंताइं ओरालियसरीराइं भवंति, तत्थ जाइं दब्बाइं तमोरालियसरी- रणओगं मुयंति ताइं मोत्तुं सेसाइं ओरालियं चेव सरीरत्तेणोवचरिज्जति, कहं ?, आयसिय आह-लवणादिवत्, यथा लवणस्य तुलाढककुडवादिष्वपि लवणोपचारः, एवं यावदेकसर्करायामपि सैव लवणाख्या विद्यते, केवलं संख्याविशेषः, एवमिहापि प्राण्यंगैकदेशेऽपि प्राण्यंगोपचारः लवणगुडादिवत्, एवमनन्तान्यौदारिकादीनि, अत्राह-कथं पुनस्तान्यनन्तलोकाप्रदेशप्रमाणान्ये- कस्मिन्नेव लोके अवगाहंत इति, अत्रोच्यते, यथैकप्रदीपादिषु भवनावभासिनः अन्येषामप्यातिबहुनां प्रदीपानामर्थिपस्तत्रैवानुप्रविशंत्यन्यो- ऽन्याविरोधात्, एवमौदारिकान्यर्पाति, एवं सर्वशरीरेष्वप्यायोज्यमिति, अत्राह-किमुत्क्रमेण कालादिभिरुपसंख्यानं क्रियते ?, कस्माद् द्रव्यादिभिरेव न क्रियते, कालान्तरावस्थायित्वेन पुद्गलानां सरीरोपचया इतिक्रत्वा कालो गरीयान्, तस्मान्नादादिभिरुपसंख्यानमिति । ओरा- लियाइं ओहियाइं दुविहाइंपि, जहेयाइं ओहियओरालियाइं एवं सव्वेसिंपि एहिंदियाणं भाणियव्वाइं, किं कारणं ?, तहिं ओरालियाइंपि ते चेव पङ्कच्च बुच्छंति ।	॥ ८९ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रत सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा ॥१०७- ११२॥ दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हरि.वृत्तौ ॥ ९० ॥ ‘केवतिया णं भंते! वेउव्विय’ इत्यादि, वेउव्विया बद्धेल्लया असंखेज्जप्पदेसरासिप्पमाणमेत्ताइं, मुक्काइं जहोराखियाइं। ‘केवइयाणं भंते! आहारग’ इत्यादि, आहारगाइं बद्धाइं सिय अत्थि सिय णत्थि, किं कारणं?, जेण तस्स अंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं लम्मासा, तेण ण होंवि वि कदाइं, जदि होंवि जहण्णेणं एक्कं वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेण सहस्सपुहुत्तं, दोहिंतो आदत्तं पुहुत्तसण्णा जाव णव, मुक्काइं जह ओ-राखियाइं मुक्काइं। ‘केवइयाणं भंते! तेयासरीरा पणत्ता?’ इत्यादि, तेया बद्धा अणंता अणंताहिं उस्सप्पिणीहिं, कालपरिसंखाणं, खेत्तओ अणंता लोगा, दव्वतो सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वजीवाणंतभागूणा, किं कारणं अणंताइं?, तस्सामीणं अणन्तत्तणतो, आह-ओराखियाणंपि सामिणे अणंता?, आयरिओ आह-ओराखियसरीरमणंताण एगं भवति, साहारणत्तणओ, तेयाकम्माइं पुण पत्तेयं सव्वसरीरीणं, तेयाकम्माइं पडुच्च पत्तेयं चेव सव्वजीवा सरीरीणो, ताइं च सव्वसंसारिणंति काउं संसारी सिद्धेहिते ऽणन्तगुणा होंति, सव्वजीवाण अणन्तभागूणा, के पुण ते?, ते चेव संसारी सिद्धेहिं ऊणा, सिद्धा सव्वजीवाण अणंतभागो जेण तेण उणाऽणंतभागूणा भवेंति, मुक्काइं अणंताइं, अणंताहिं उस्सप्पि-णीहिं कालपरिसंखाणं, खेत्तओ अणंता, दोवि पूर्ववत्, दव्वतो सव्वजीवेहिं अणंतगुणा, जीववग्गस्स अणंतभागो, कहं सव्वजीवा अणंतगुणा?, जाइं ताइं तेयाकम्माइं मुक्काइं ताइं तहेव अणंतभेदभिण्णाइं असंखेज्जकालवत्थादीणि जीवेहिंतोऽणंतगुणाइं हवेंति, केण पुण अणंतएण गुणि-ताइं?, तं चेव जीवाणंततं तेणेव जीवाणंतएण गुणियं जीववग्गो भण्णति, एत्तिचाइं होज्जा?, आयरिय आह-एत्तियं ण पावति, किं कारणं?, असंखेज्जकालावत्थाइत्तणओ तेसिं दव्वानं, तो कित्तिचाइं पुण हवेज्जा?, जीववग्गस्स अणंतभागो, कहं पुण एतदेवं चेत्तव्वं?, आयरिय आह-उव्वणारासीहिं णिद्वेदनं कीरइ, सव्वजीवा दस सहस्साइं बुद्धीए घेप्पति, तेसिं वग्गो दस कोडीओ हवेंति, सरीराइं पुण दससयसहस्साइं बुद्धीए अवधारिज्जति, एवं किं जातं?, सरीरयाइं जीवेहिंतो सयगुणाइं जाताइं, जीववग्गस्स सतभागे संवुत्ताइं, णिद्वरिसणमेत्तं, इहरहा सव्वभावतो वैक्रियाहा- रकृतैजस- कामिणानि ॥ ९० ॥
	*** अथ ‘वैक्रिय’शरीर-अधिकारः मध्ये नारकाणां आदिनां वैक्रियशरीराणां वर्णनं

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूल+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]		
प्रत सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा [१०७- ११२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः		
दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ९१ ॥	एते तिण्णिवि रासी अणंता दट्ठवा, एवं कम्मयाइपि, तस्स सहभावित्तणओ तत्तुल्लसंखाइं भवंति, एवं ओहियाइं पंच सरीराइं भणिताइं । 'णेरइयाणं भंते!' इत्यादि विसेसिय नारगाणं वेउव्विगा वट्ठेल्लया जाव.या एव नारगा, ते पुण असंखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीहिं काल- प्पमाणं, खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ, तासिं पदेसमेत्ता नारगा, आह-पयरंमि असंखेज्जाओ सेढीओ, आयरिय आह-सयलपयरसेढीओ ताव न भवंति, जदि होत्तीओ तो पयरं चेव भण्णाति, आह-तो ताओ सेढीओ किं देसूणपयरवत्तिणीओ होज्जा, तिभागचउभागवत्तिणीओ होज्जा?, जा अ णं सेढीओ पतरस्स असंखेज्जातिभागो, एयं विसेसियथरं परिसंखाणं कयं होति, अहवा इदमण्णं विसेमिततरं विक्खंभसूईए एएसिं संखाणं भण्णाति, भणइ-तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलपढमवग्गमूलं वितियवग्गमूलोप्पाइयं तावइयं जाव असंखेज्जाइसमितस्स, अंगुलविक्खंभखेत्त- वत्तिणो सेढीरासिस्स जं पढमं वग्गमूलं तं वितिएण वग्गमूलेण पडुप्पातिज्जति, एवइयाओ सेढीओ विक्खंभसूई, अहवा इयमण्णेणप्पगा- रेण पमाणं भणइ-अहवा तमंगुलवितियवग्गमूलपणप्पमाणमेत्ताओ, तस्सेधंगुलप्पमाणखेत्तवत्तिणो सेढीरासिस्स जं वितियं वग्गमूलं तस्स जो घणो एवतियाओ सेढीओ विक्खंभसूई, तासि णं सेढीणं पएसरासिप्पमाणमेत्ता नारगा, तस्स सरीराइं च, तेलिं पुण ठवणंगुले णिवारिसण- दो छप्पण्णाइं सेढिवग्गाइं अंगुले बुद्धीए धेप्पंति, तस्स पढमं वग्गमूलं सोलस, वितियं चत्तारि, तइयं दोण्णि, तं पढमं सोलसयं वितिएण चउक्कएण वग्गमूलेण गुणियं चउसट्ठी जाया, वितियवग्गमूलस्स चउक्कयस्स घणा चेव चउसट्ठी भवति, एत्थ पुण गणितधम्मो अणुयत्तिओ होति, जदि बहुयं थोवेण गुणिज्जति, तेण दा पगारा गुणिता, इहरथा तिण्णिवि हवन्ति, इमो तइओ पगारो-अंगुलवितियवग्गमूलं पढमवग्ग- मूलपडुप्पण्णं, षोडशागुणाश्चत्वार इत्यर्थः, एवंपि सा चेव चउसट्ठी भवति, एते सत्त्वे रासी सत्त्वभावतो असंखेज्जा दट्ठवा, एवं ताई नारगवे- उव्वियाइं भट्ठाइं, सुक्काइं जहोदियओरालियाइं, एवं सत्त्वोसिं सरीरीणं सत्त्वसरीराइं सुक्काइं भाणियत्ताइं, वणस्सइतेयाकम्माइं मोत्तुं,	नारकाणां- वैक्रियाणि ॥ ९१ ॥

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रत सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा [१०७- ११२] दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ९३ ॥ ‘बेइंदियाणं भेत!’ इत्यादि, बेइंदिओरालिया बढेलया असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं कालपमाणं तं चेव, खेत्तओ असंखे- ज्जाओ सेढीओ, तहेव पयरस्स असंखेज्जइभागो, केवलं विक्खंभसूईए विसेसो, विक्खंभसूई असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओत्ति विसेसितं परं परिसंखाणं, अहवा इदमणं विसेसिततरं-असंखेज्जाइं सेढिवग्गमूलाइं, किं भाणितं होति?, एक्केकाए सेढीए जो पदेसरासी पढमं वग्गमूलं वितियं तइयं ज.व असंखेज्जाइं वग्गमूलाइं संकलियाइं जो पएसरासी भवति तप्पमाणा विक्खंभसूई बेइंदियाणं, णिदरिसणं-सेढी पंचसट्ठि- सहस्साइं पंच सयाइं छत्तीसाइं पदेसाणं, तीसे पढमं वग्गमूलं वे सता छप्पणा वितियं सोलस तइयं चत्तारिचउत्थं दोण्णि, एवमेताइं वग्गमू- लाइं संकलिताइं दो सता अट्ठसत्तरा भवति, एवइया पदेसा, तासिणं सेढीणं विक्खंभसूईए, ते सच्चावाओ असंखेज्जा वग्गमूलरासी पत्तेयं पत्तेयं चेत्तच्चा । इदाणि इमा मग्गणा-किंपमाणाहिं ओगाहणाहिं रइज्जमाणा बेइंदिया पयरं पूरिज्जंतु ? ततो इमं सुत्तं बेइंदियाणं ओरा- लियवढेल्लयेहिं पयरं अवहीरंति असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं कालओ, तं पुण पतरं अंगुलपतरासंखेज्जभागमेत्ताहिं ओगाहणाहिं रइज्जंतीहिं सव्वं पूरिज्जति, तं पुण केवइएणं कालेणं रइज्जइ वा पूरिज्जइ वा?, भण्णाति, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं, किं पमाणेण पुण खेत्तकालावहारेणं?, भण्णइ-अंगुलपतरस्स आवलियाए य असंखेज्जतिपलिभागेणं जो सो अंगुलपतरस्स असंखेज्जतिभागो एएहिं पलि- भागेहिं हीरति, एस खेत्तावहारो, आह असंखेज्जतिभागगहणेण चेव सिद्धं किं पलिभागगहणेणं?, भण्णाति-एक्केकं बेइंदियं पति जो भागो सो पलिभागो, जं भाणितं अवगाहोत्ति, कालपलिभागो अवलियाए असंखेज्जतिभागो, एतेण आवलिअ.ए असंखेज्जइभागमेत्तेणं कालपलिभागेणं एक्केको खेत्तपलिभागो सोहिज्जमाणेहिं सव्वं लोगपतरं सोहिज्जइ खेत्तओ, कालओ असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं, एवं बेइंदियोरा- लियाणं उभयमभिहितं संखप्पमाणं ओगाहणापमाणं च, एवं तेइंदियचउरिंदियपंचेइंदियतिरिक्खजोणियाणवि भाणितच्चाणि, पंचेइंदियतिरिक्खवे- दीन्द्रिया- दीनां ॥ ९३ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूल+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रत सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा ॥१०७- ११२॥ दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तो ॥ ९४ ॥ उन्वियबद्धेल्या असंखेज्जा असंखेज्जाहिं उस्सपिणिओसपिणीहिं कालतो तहेव खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पतरस्स असंखेज्जतिभागे विक्खंभसूई, णवरं अंगुलपढमवग्गमूलस्स असंखेज्जतिभागो, सेसं जहा असुरकुमाराणं । मणुयाणं ओराणिय बहेल्लया सिय संखेज्जा। सिय असंखेज्जा, जहण्णपदे संखेज्जा, जत्थ सव्वथोवा मणुस्सा भवन्ति, आह-किं एवं ससमुच्छिमाणं गहणं अह तत्त्वरहियाणं?, आयरिय आह-ससमुच्छिमाणं गहणं, किं करणं?, गवभवक्कंतिया णिच्चकालमेव संखेज्जा, परिमितक्षेत्रवर्त्तित्वात् महाकायत्वात् प्रत्येकशरीरवर्त्तित्वाच्च, तस्स सेतराणां ग्रहणं उक्कोसपदे, जहण्णपदे गवभवक्कंतियाणं वेव केवळणं, किं कारणं? जेण संमुच्छिमाणं चउव्वीसं मुहुत्ता अंतरं अंतोमुहुत्तं च ठिती, जहण्णपदे संखेज्जतिभणिते ण णउज्जति कयंमि संखेज्जए होउज्जा?, तेणं विसेसं कोरति, जहा-संखेज्जाओ कोडीओ, इणमण्णं विसेसिततरं परिमाणं ठाणणिहेसं पडुच्च वुच्चति, कहं?, एकूणतीसठ्ठाणाणि, तेहिं सामयिगाए सण्णाए णिहेसं कीरइ, जहा-तिजमलपदं एतस्स उवरि चउजमलपदस्स हेट्ठा, किं भणितं होति?, अट्ठण्हं २ ठाणाणं जमलपदत्ति सण्णा सामयिकी, तिणिण जमलपदाइं समुदियाइं तिजमलपदं, अहवा तइयं जमलपदं तिजमलपदं, एतस्स तिजमलपदस्स उवरिमेसु ठाणेसु वट्ठति, जं भणितं-चउवीसण्हं ठाणाणं उवरि वट्ठति, चत्तारि जमलपदाइं चउजमलपदं, अहवा चउत्थं जमलपदं २, किं वुत्तं? वत्तीसं ठाणाइं चउजमलपदं, एयस्स चउजमलपदस्स हेट्ठा वट्ठति मणुस्सा, अण्णेहिं तिहिं ठाणेहिं न पावंति, जदि पुण वत्तीसं ठाणाइं पूरंताइं तो चउजमलपदस्स उवरि भणंति, तं ण पावंति तम्ह! हेट्ठा भणंति, अहवा होणिण वग्गा जमलपदं भण्णति, छ वग्गा समुदिता तिजमलपदं, अहवा पच्चमल्लुट्ट वग्गा तइयं जमलपदं, अट्ठ वग्गा चत्तारि जमलपदाइं चउजमलपदं, अहवा सत्तमअट्ठम वग्गा चउत्थं जमलपदं, जेणं छण्हं वग्गाणं उवरि वट्ठति सत्तमट्ठमाणं च हेट्ठा, तेण तिजमलपदस्स उवरि चउजमलपदस्स हेट्ठा भणंति, संखे- मनुष्याणां संख्या ॥ ९४ ॥
	*** अत्र “मनुष्याणां” संख्यानां वर्णनं क्रियते

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रत सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा १०७- ११२ दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हरि.वृत्ती ॥ ९५ ॥ उजाओ कोडीओ ठाणविसेलेणाणिबमियाड । इदाणि विसेलियतरं कुडं संखाणमेव णिहिसति, जहा ‘अहुवा अजं—छट्टवग्गो पंचमवग्ग- पडुप्पण्णो, छ वग्गा ठविज्जति, तंजहा-एक्खस्स वग्गो एक्को, एस पुण बङ्गी रहिओत्तिकानं वग्गो चेव ण भवति, तेण दोण्हं वग्गो चत्तारि एस पढमो वग्गो, एतस्स वग्गो सोलस एस बितिओ वग्गो, एतस्स वग्गो वे सता छप्पण्णा एस तईओ वग्गो, एतस्स वग्गो पन्नट्ठिओ सह- स्साई पंच सताई छत्तीसाई एस चउत्थो वग्गो, एतस्स इमो वग्गो, तंजहा-‘चत्तारि कोडि सता अउणत्तिसं च कोडीओ अउणावण्णं च सत- सहस्साई सत्तट्ठी सहस्साई दो य सयाइं छण्णुयाइं, इमा ठवणा-४२९४९६७२९६ एस पंचमो वग्गो, एतस्स गाहाओ-‘चत्तारि य कोडि- सया अउणत्तिसं च होति कोडीओ । अउणापण्णं लक्खा सत्ताहिं चेव य सहस्सा ॥ १ ॥ दो य सया छण्णउया पंचमवग्गो समासतो होइ । एतस्स कओ वग्गो छट्ठो जं होइ तं वोच्छं॥२॥’ एयस्स पंचमवग्गस्स इमो वग्गो होति-एक्कं कोडाकोडिसयसहस्सं चउरासीइ कोडाकोडि सहस्सा चत्तारि य कोडाकोडि सया सत्ताट्ठिमैव कोडीओ चत्ताहीसं च कोडि सतसहस्सा सत्ता कोडिसहस्सा तिणिण य सयरा कोडीसता पंचाणउइं सतसहस्सा एकावण्णं च सहस्सा छच्च सता सोलसुत्तरा, इमा ठवणा१८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ एस छट्ठो वग्गो, एतस्स गाहाओ ‘लक्खं कोडाकोडीओ चउरासीई भवे सहस्साई । चत्तारि य सत्तट्ठा होति सया कोडिकोडीणं ॥ १ ॥ चोवालं लक्खाई कोडीणं सत्त चेव य सहस्सा । तिणिण सया सत्तारा कोडीणं होति णायव्वा ॥२॥ पंचाणउइं लक्खा एकावण्णं भवे सहस्साई । छ स्सोलसुत्तर सया य एस छट्ठो भवति वग्गो ॥ ३ ॥ एत्थ य पंचछट्ठेहि पओयणं, एस छट्ठो वग्गो पंचमेण वग्गेण पडुप्पाइज्जति, पडुप्पाइय समणे जं होइ एवइया जह- ण्णपदिया मणुस्सा भवति, ते य इमे एवइया ७९२२८११६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६, एवमेयाइं अउणत्तिसं ठाणाइं एव- इया अइण्णपदिता मणुस्सा । छ तिणिण२ सुण्णं पंचेव य नव य तिणिण चत्तारि। पंचेव तिणिण णव पंच सत्त तिण्णवर॥१॥ चउ छ दो चउ यमल पदानि. ॥ ९५ ॥

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रत सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा [१०७- ११२] दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्ता ॥ ९८ ॥ विक्रमसूई, किं वक्तव्येति वाक्यशेषः, कंठ्यं, किं कारणं?, पंचेदियतिरियओरालियसिद्धत्तणओ, जम्हा महादंडए पंचेदियतिरियणुंसण्हितो असंखेज्जगुणहीणा वाणमंतरा पढिज्जति, एवं विक्रमसूतीवि तेसिं तो तेहिंतो असंखेज्जगुणहीणा चेव भाणियव्वा । इद्वणिं पलिभागो-संखेज्जजोयणसतवग्गपलिभागो पतरस्स, जं भाणितं संखेज्जजोयणवग्गमेसे पलिभागो एक्के वाणमंतरे ठविज्जति, तस्मेत्तपलिभागेण चेव अवहीरंतिति । ‘जोइसियाण’ मित्यादि, जोइसियाण वेउळियया बद्धेल्लया असंखिज्जा असंखिज्जाहिं वरस-पिणीओसपिणीहिं अवहीरंति कालतो, खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जतिभागोति, तहेव सेसियाण सेढीणं विक्रमसूई, किं वक्तव्येति वाक्यशेषः, किं चातः? श्रूयते जम्हा वाणमंतरहितो जोइसिया संखिज्जगुणा पढिज्जति तम्हा विक्रमसूईवि तेसिं तेहिंतो संखेज्जगुणा चेव भण्णइ, णवरं परिभागविसेसो जहा बेळप्पण्णगुलसते वग्गपलिभागो पतरस्स, एवतिए २ पलिभागो ठविज्जमाणो एक्के जोइसिओ सव्वेहिं सव्वं पतरं पूरिज्जइ तहेव सोहिज्जतिवि, जोइसियाणं वाणमंतरहितो असंखिज्जगुणहीणो पलिभागो संखेज्जगुणवहिया सूई । ‘वेमाणिय’ इत्यादि, वेमाणियाणं वेउळियया बद्धेल्लया असंखेज्जा कालओ तहेव खेत्तओ असंखेज्जतिभागो, तासि णं सेढीणं विक्रमसूई अंगुलवितियवग्गमूलं तइयवग्गमूलपडुप्पणं, अह्वा अन्नं अंगुलितइयवग्गमूलघणप्पमाणमेत्ताओ सेढीओ तहेव, अंगुलविक्रमसूईवित्तणो सेढिरासिस्स पढमवग्गमूलं वितियतइयचउत्थ जाव असंखेज्जाइति, तेसिपि जं वितियं वग्गमूलसेढिपदेसरासिस्स (तं तइएण) पगुणिज्जति, गुणिते जं होइ तत्तियाओ सेढीओ विक्रमसूई भवति, तइयस्स वा वग्गमूलस्स जो घणो एवतियाओ वा विक्रमसूई, निदरिसणं तहेव, बेळप्पणसतमेगुलितस्स पढमवग्गमूलं सोलस, वितियं तइएण गुणितं अट्ट भवति, तइयं वितिएण गुणितं, ते च अट्ट, ततियस्सवि घणो, सोऽ-वि ते अट्ट एव, एया सव्भावओ असंखेज्जा रासी दट्टव्वा, एवमेयं वेमाणियप्पमाणं णेरइयप्पमाणाओ असंखिज्जगुणहीणं भवति, किं वैक्रिय शरीरि- मानं ॥ ९८ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४३-१४४] / गाथा [११३-११५]	
प्रत सूत्रांक [१४३- १४४] गाथा ॥११३- ११५॥ दीप अनुक्रम [२९३- २९७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तिं ॥१००॥ नेत्युपमानं, गुरुपारम्पर्येणागच्छतीत्यागमः । अथैतद् व्याचष्टे-अथ किं तत्प्रत्यक्षं?, प्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-इन्द्रियप्रत्यक्षं च नोइन्द्रियप्रत्यक्षं च, तत्रेन्द्रिय-श्रोत्रादि, तन्निमित्तं यदलैङ्गिकं शब्दादिज्ञानं तान्द्रियप्रत्यक्षं व्यावहारिकं, नोइन्द्रियप्रत्यक्षं तु यदात्मन एवालैङ्गिकमवध्यादीति समासार्थः, व्यासार्थस्तु नैद्यध्ययनविशेषविवरणादेवावसेयः, अक्षराणि तु सुगमान्येव यावत्प्रत्यक्षाधिकार इति । उक्तं प्रत्यक्षं, अधुनाऽनुमान-मुच्यते-तथा चाह-‘से किं तं अनुमाने?’ अनुमानं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-पूर्ववत् शेषवत् दृष्टसाधर्म्यवच्चेति । से किं तं पुर्ववमित्यादि, विशेषतः पूर्वोपलब्धं लिङ्गं पूर्वमित्युच्यते, तदस्यास्तीति पूर्ववत्, तद्द्वारेण गमकमनुमानं पूर्ववदिति भावः, तथा चाह-‘माता पुत्रं’ इत्यादि (॥११४-२१२॥) माता पुत्रं तथा नष्टं बाल्यावस्थायां युवानं पुनरागतं कालान्तरेण काचित् स्मृतिमती प्रत्यभिजानीयात् से पुत्रोऽयमित्यनुमिन्यात् पूर्व-लिङ्गेनोक्तस्वरूपेण केनचित्, तद्यथा-‘क्षतेन वे’ त्यादि, मत्पुत्रोऽयं तदसाधारणालिंगक्षतोपलब्ध्यन्यथानुपपत्तेः, साधर्म्यवैधर्म्यदृष्टान्तयोः सत्त्वे-तराभावाद्यमहेतुरिति चेन्, न, हेतोः परमार्थेनेकलक्षणत्वात् तत्प्रभावेत एवमत्रोपलब्धेः, उक्तं च न्यायवादिना पुरुषचंद्रेण-“अन्यथानुपपन्न-त्वमात्रं हेतोः स्वलक्षणम् । सत्त्वासत्त्वे हि तद्वर्गो, दृष्टान्तद्वयलक्षणः ॥ १ ॥ तदभावेतराभ्यां तयोरेव स्वलक्षणायोगादिति भावना, तथा ‘भूमादेर्यथापि स्यातां, सत्त्वासत्त्वे च लक्षणे । अन्यथानुपपन्नत्वप्राधान्याल्लक्षणकता ॥२॥” किंच-“अन्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किम्? । इत्यत्र बहु वक्तव्यं, तत्त्व प्रत्यविस्तरभयादन्यत्र च यत्नेनोक्तत्वात्तन्निधीयत इति । प्रत्यक्षविषयत्वादेवास्यानुमानत्वकल्पनमयुक्तं, न, पिण्डप-रिच्छित्तावपि पुत्रो न पुत्र इति संदेहात् पिंडमात्रस्य च प्रत्यक्षविषयत्वात् मत्पुत्रोऽयमिति चाप्रतीतेः तद्विज्ञप्त्वादिति कुतः प्रसंगेन, प्रकृतं प्रस्तुतम्, तद्वत् क्षतमागन्तुको व्रणः लच्छन्नं मसतिलकाः प्रतीतास्तदेतत्पूर्ववदिति । ‘से किं तं सेसव’ मित्यादि, उपयुक्तान्योऽन्यः स सेप इति कार्यादि गृह्यते, तदस्यास्तीति शेषवद्, भावना पूर्ववदिति, पंचविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा ‘कार्येण’ त्यादि, तत्र कार्येण कारणानुमानं यथा-हयः-अश्वः हिसितेन जीवज्ञान गुणे प्रत्यक्षमनु- मानं च ॥१००॥	

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४३-१४४] / गाथा [११३-११५]
प्रत सूत्रांक [१४३- १४४] गाथा ११३- ११५ दीप अनुक्रम [२९३- २९७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥१०३॥ नानन्तरागमः तल्लक्षणविरहात्, किंतु परंपरागमः, इत्यनेन कैकान्तापौरुषेयागमव्यवच्छेदः, पौरुषं तात्वादिख्यापारजन्यं, नभस्येव विशिष्ट- शब्दानुपलब्धेः, अभिव्यक्त्यभ्युपगमे च सर्वेष्वचसामपौरुषयत्वं, भाषाद्रव्याणां ग्रहणादेना विशिष्टपरिणामाभ्युपगमाद्, उक्तं च-‘गिण्हई य काइएणं गिसरति तह वाइएण जोगेण’ भित्त्यादि, कृतं विस्तरेण, निर्लोठितमेतदन्यत्रेति, सोऽयमागम इति निगमनं, तदेतत् ज्ञानगुणप्रमाणं । ‘से किं तं दंसणगुणप्पमाणे’ इत्यादि, दर्शनावरणकर्म्मक्षयोपशमादिज्ञं सामान्यमात्रग्रहणं दर्शनमिति, उक्तं च “ज्ञं सामण्णग्गाहणं भावाणं कट्टु नेय आगारं । अबिसेसिऊण अत्थं वंसणमिति बुद्धए समए ॥१॥” एतदेव आत्मगुणप्रमाणं च, इदं च चतुर्विधं प्रज्ञप्तं-चक्षुर्दर्शनादिभेदात्, तत्र चक्षुर्दर्शनं सावच्चक्षुरिन्द्रियावरणक्षयोपशमे द्वयैर्द्रियानुपघाते च तत्परिणामवत् आत्मनो भवतीत्यत आह-चक्षुर्दर्शनतः घटादिष्वर्थेषु भवतीति शेषः, अनेन च विषयभेदाभिधानेन चक्षुषोऽप्राप्तकारितामाह, सामान्यविषयत्वेऽपि चास्य घटादिविशेषाभिधानं कथंचित् तदनर्थान्तरभूतसामान्यख्यापनार्थं, उक्तं च ‘तिर्विशेषं विशेषाणां, ग्रहो दर्शनमुच्यते’ इत्यादि, एवमचक्षुर्दर्शनं शेषैर्द्रियसामान्योपलब्धिबलक्षणं, अचक्षुर्दर्शिनः आत्मभावे-जीवभावे भवतीत्यनेन श्रोत्रादीनां प्राप्तकारितामाह, उक्तं च-“पुट्टं सुणेइ सइ रुवं पुण पासती अपुट्टं तु’ इत्यादि, अवधिदर्शनं-अवधिसामान्यग्रहणलक्षणं अवधिदर्श- निनः सर्वरूपिद्रव्येषु, ‘रूपिष्ववधे’ (तत्त्वा.१ अ.२८सू.) रिति वचनादसंधेयमित्येवमिति ज्ञानापेक्षमेतत्तु (न) दर्शनोपयोगिनः विशेषत्वात्तथापि तद्वेदका इत्युपन्यासः, केवलदर्शनं केवलिनः, (अन्यत्र) सामान्याऽर्थग्रहणसंभवात् क्षयोपशमोद्भवत्वात्. पठ्यते च विशेषग्रहणादर्शनाभाव इति, तदेतद्दर्शनप्रमाणं । ‘से किं तं चारित्तगुणप्पमाणे’ भित्त्यादि, चरन्न्यनिन्दितमनेनेति चरित्रं क्षयोपशमरूपं तस्य भावश्चारित्रं, अशेषकर्म्म- क्षयाय चेष्टा इत्यर्थः, पंचविधं प्रज्ञप्तं, तच्च सामायिकमित्यादि, सर्वमन्येतदविशेषतः सामायिकमेव सत् छेदादिविशेषैर्विशेष्यमाणमर्थतः संज्ञातश्च नानात्वं लभते, तत्राद्यं विशेषणाभावात् सामान्यसंज्ञाधामेव चावतिष्ठते सामायिकमिति, तत्र सावद्ययोगविरतिमात्रं सामायिकं, तच्चे- आगम प्रमाणं दर्शन प्रमाणं च ॥१०३॥
	*** अत्र ‘प्रमाण’-अधिकार मध्ये ‘चारित्र’ प्रमाणं वर्णयते

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४३-१४४] / गाथा [११३-११५]
प्रत सूत्रांक [१४३- १४४] गाथा ११३- ११५ दीप अनुक्रम [२९३- २९७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥१०४॥ त्वरं यावत्कथितं च, तत्र स्वल्पकालमित्तरं, तदाद्यचरमार्हत्तीर्थयोरेवानारोपितव्रतस्य शैक्षकस्य, यावत्कथाऽऽत्मनः तावत्कालं यावत्कथं, जाब- ज्जीवमित्यर्थः, यावत्कथमेव यावत्कथितं तन्मध्यमार्हत्तीर्थेषु विदेहवासिनां चेति । तथा छेदोपस्थापनम्, इह यत्र पूर्वपर्यायस्य छेदो महाव्रतेषु चोपस्थापनमात्मनः तच्छेदोपस्थापनमुच्यते, तच्च सातिचारं निरतिचारं च, तत्र निरतिचारमित्तरसामायिकस्य शैक्षकस्य यदारोप्यते, यद्वा तीर्थान्तरप्रतिपत्तौ, यथा पार्श्वस्वामितीर्थाद्वर्द्धमानतीर्थं संक्रामतः, मूलघातिनो यत्पुनर्व्रतारोपणं तत्सातिचारम्, उभयं चैतदवस्थितकल्पे, नेतर- स्मिन् । तथा परिहारः-तपोविशेषस्तेन विद्युद्धं परिहारविद्युद्धं, परिहारो वा विशेषेण शुद्धो यत्र तत् परिहारविद्युद्धं, परिहारविद्युद्धिकं चेति स्वार्थप्रत्ययोपादानात्, तदपि द्विधा-निर्विशमानकं निर्विष्टः कायो यैस्ते निर्विष्टकायाः स्वार्थिकप्रत्ययोपादानान्निर्विष्टकायिकाः, तस्य बोद्धारः परिहारिकाश्चत्वारः चत्वारोऽनुपरिहारिकाः कल्पस्थितश्चेति नवको गणः, तत्र परिहारिकाणां निर्विशमानकं, अनुपरिहारिकाणां भजनया, निर्विष्टकायिकानां कल्पस्थितस्य च, परिहारिकाणां परिहारो जघन्यादि चतुर्थादि त्रिविधं तपः प्रीष्मशिशिरवर्षासु यथासंख्यं, जघन्यं चतुर्थं षष्ठमष्टमं च मध्यमं षष्ठमष्टमं दशमं च उत्कृष्टमष्टमं दशमं द्वादशं च, शेषाः पंचापि नियतभक्ताः प्रायेण, न तेषामुपवस्तव्यमिति नियमः, भक्तं च सर्वेषामाचाम्लमेव, नान्यत्, एवं परिहारिकाणां षण्मासं तपः तत्प्रतिचरणं चानुपरिहारिकाणां, ततः पुनरितरेषां षण्मासं तपः, प्रति- चरणं चेतरेषां, निर्विष्टकायानामित्यर्थः, कल्पस्थितस्यापि षण्मासं, इत्येवं मासैरष्टादशभिरेव कल्पः परिसमापितो भवति, कल्पपरिसमाप्तौ च त्रयी गतिरेषां-भूयस्तमेव कल्पं प्रतिपद्येरन् जिनकल्पं वा गणं वा प्रति गच्छेयुः, स्थितकल्पे चैते पुरुषयुगद्वयं भवेयुर्नेतरत्रेति । तथा सूक्ष्मसं- परायं, संपर्येति संसारमेभिधिति संपरायाः-क्रोधादयः, लोभांशावशेषतया सूक्ष्मः संपरायो यत्रेति सूक्ष्मसंपरायः, इदमपि संक्षिप्तयमानक- चारित्र प्रमाणं ॥१०४॥

आगम (४५)	"अनुयोगद्वार"- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)					
..... मूलं [१४५] / गाथा [११५]						
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूल एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्ति:						
प्रत सूत्रांक [१४५] गाथा ११५ दीप अनुक्रम [२९८]	श्रीअनु० हारिवृत्तौ १०५	विशुध्यमानकमेदाद् द्विधैव, तत्र श्रेणिमारोहतो विशुध्यमानकमुच्यते, ततः प्रत्यक्षमानस्य संक्लेशयम्मतकषिति, तथा अथान्यातं, अभेत्यन्त्यं याथातथ्ये, आत्मभिधिधौ, याथातथ्येनाभिधिदिना वा व्याप्तं, हदेतद् गुणप्रमाणं । 'से किं ते णयप्पमाणे' इत्यादि (१४५-२२२) वस्तुतोऽनेकधर्मिण एकेन धर्मेण नयनं नयः स एव प्रमाणमित्यादि पूर्ववत्, त्रिविधं प्रज्ञापमित्यत्र नैगमादिभेदान्नयाः, ओघतो दृष्टान्तापेक्षया त्रिविधमेतदिति, तथा चाह-तद्यथा प्रस्थकदृष्टान्तेन, तद्यथा नाम कश्चित्तुरूपः परशु-कुठारं गृहीत्वा प्रस्थककाष्ठायामवीमुखो गच्छेज्जा-यायात्, तं च कश्चित्तथाविधो दृष्ट्वा वदेत्-अभिधीत-क भवान् गच्छति ? , तत्रैव नयप्रस्ता-न्युच्यन्ते, तत्राऽनेकगमो नैगम इतिकृत्वाऽऽह-अविशुद्धो नैगमो भणति-अभिधत्ते-प्रस्थकस्य गच्छामि, कारणे कार्योपचारात्, तथा व्यवहार-दर्शनात्, तं च कश्चिच्छब्दन्तं, बृक्षं इति गम्यते, पश्येत्-उपलभेत, दृष्ट्वा च वदेत्-किं भवान् छिनत्ति?, विशुद्धतरौ नैगमो भणति-प्रस्थकं छिनत्ति, भावना प्राग्भवत्, एवं तक्षन्तं-तनूकुर्वन्तं वेधनकेन विकिरन्तं लिखन्तं-लेखन्या झट्टकं कुर्वाणं एवमेव-अनेन प्रकारेण विशुद्धतरस्य नैगमस्य सामाञ्छियक्तित्वाभाङ्कितः प्रस्थक इति, एवमेव व्यवहारस्यापि, लोकव्यवहारपरत्वाच्चस्य चोक्तबहिर्वित्रत्वादिति, 'संग्रहस्ये' त्यादि, सामान्य-मात्रमाही संग्रहः चितो-धान्येन व्याप्तः, स च देशतोऽपि भवत्यत आह-मितः-पूरितः, अनेनैव प्रकारेण सेयं समारूढं यस्मिन्नाहिताग्नेराकृति-गणत्वान् तत्र वा ग्रहणान्मेयसमारूढः, धान्यसमारूढ इत्यन्ये, प्रस्थक इत्यन्ये, अयमत्र भावार्थः-प्रस्थकस्य मानार्थत्वाच्चेदावस्थानु च तद्-भावार्थायोक्त एव प्रस्थकः इति, अस्तावपि तत्सामान्यव्यतिरेकेण तादृशिपाभावादेक एव, ऋजू वर्तमानसमयाभ्युपगमापूर्तीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्न-त्वेनाकुटिलं सूत्रयति ऋजुसूत्रस्तस्य निष्फणस्वरूपाधिक्रियाहेतुः प्रस्थकोऽपि प्रस्थको वर्तमानस्तस्मिन्नेव मानादि प्रस्थकस्तथा प्रतीयते-प्रस्थकोऽय-मिति व्यवहारदर्शनात्, महातीतेनानुत्पन्ने वा माग्नेन मेयेन वार्थसिद्धिरित्यतो मात्रमेये वर्तमान एव प्रस्थक इति हृदयं, त्रयाणां शब्दनयाना-			नयप्रमाणे प्रस्थक दृष्टान्तः 	१०५
*** अथ 'नय'प्रमाणं वर्णयते						

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४५] / गाथा [११५]
प्रत सूत्रांक [१४५] गाथा [११५] दीप अनुक्रम [२९८]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥१०८॥ वाक्यतिरिक्तोऽपि सकलजीवास्तिकायाव्यतिरिक्तत्वानुपत्तेरनेकद्रव्यत्वान्नोजीवो जीवास्तिकायकदेश इत्यर्थः, एवं स्कन्धप्रदेशोऽपि भावनीय इति, एवं भणन्तं साम्प्रतं शब्दे नानार्थशब्दरोहणात् समभिरूढ इति समभिरूढो भणति-यद् भणसि धर्मप्रदेशः स प्रदेशो धर्म इत्यादि तन्मैवं भण, किमित्यत आह-इह खलु द्वौ समासौ संभवतः, तद्यथा-तत्पुरुषश्च कर्मधारयश्च, तत्र ज्ञायते कतरेण समासेन भणसि ?, किं तत्पुरुषेण कर्मधारयेण वा ?, यदि तत्पुरुषेण भणसि तन्मैवं भण, दोषसंभवादित्यभिप्रायः, दोषसंभव आर्य-धर्मस्य प्रदेशो धर्मप्रदेश इति भेदाऽऽपत्तिः, यथा राज्ञः पुरुष इति, तैलस्य धारा शिलापुत्रस्य शरीरमित्यभेदेऽपि षष्ठी श्रूयत इति चेत् उभयत्र दर्शनात्संशये एवमेव दोषः, अथ कर्मधारयेण ततो विशेषतो-विशेषेण भण-धर्मश्चासौ प्रदेश इति समानाधिकरणः कर्मधारयः, अत एवाह-स च प्रदेशो धर्मस्तद्व्यतिरिक्तत्वात्तस्य, एवं शेषेष्वपि भावनीयं, एवं भणन्तं समभिरूढं एवम्भूतो भणति-यद् भणसि तत्तथा-तेन प्रकारेण सर्वै-निर्विशेषं कृत्स्नमिति देशप्रदेशकल्पनावर्जितं प्रपूर्णं आत्मस्वरूपेणाविकलं निरवशेषं तदेवैकत्वान्निरवयवं एकग्रहणगृहीतं परिकल्पितभेदत्वादन्यतमाभिधानवाच्यं, देशोऽपि मे अवस्तु प्रदेशोऽपि मे अवस्तु, कल्पनायोगाद्, इदमत्र हृदयं-प्रदेशस्य प्रदेशिनो भेदो वा स्यादभेदो वा?, यदि भेदस्तस्येति संबन्धो वाच्यः, स चातिप्रसंगदोषग्रहप्रस्तत्वादशक्यो वक्तुं, अथाभेदः पर्यायशब्दतया घटकुटशब्दवदुभयोरुच्चारणवैयर्थ्यं, तस्मादसमासमेकमेव वस्तिवति, एवं निजनिजवचनीयसत्यतामुपलभ्य सर्वनयानां सर्वत्रानेकान्तसमये स्थिरः स्यात् न पुनरसद्वमाहं गच्छेदिति, भणितं च-“निययवयणिज्जसकृचा सञ्चणया परविद्यालणे मोहा । ते पुण अदिट्टसमयावि भवन्ति सक्खे व अलिप्प वा ॥१॥ तदेतत् प्रदेशदृष्टान्तेन नयप्रमाणं, तदेतन्नयप्रमाणं । ‘मे किं तं संखप्पमाण’ मित्यादि (१४६-२३०) संख्यायतेऽनयेति संख्या सैव प्रमाणं, संख्या अनेकविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-नामसंख्ये-त्यादि, इह संख्याशास्त्रयोः ग्रहणं प्राकृतमधिकृत्य समानशब्दाभिधेयत्वात्, गोशब्देन वाग्रादभ्यादिग्रहणवत्, उक्तञ्च-“गोशब्दः पशुभूम्यं- नये प्रदेश दृष्टान्तः ॥१०८॥
	*** अत्र ‘संख्या’प्रमाण’स्य भेदाः वर्णयते

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]
प्रत सूत्रांक [१४६- १४८] गाथा ॥११६- ११८॥ दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥१०९॥ शुवादिगर्धप्रयोगवान् । मंदप्रयोगो वृष्ट्यंनुवञ्जस्वर्गाभिधायकः ॥१॥” एतेषां च विशेषोऽर्थप्रकरणादिगम्य इति यो यत्र विकल्पे अर्थविशेषो घटते स तत्र नियोक्तव्य इति । ‘से किं तं नामसंखे’ त्यादि सूत्रसिद्धं, यावत् ‘जाणगसरीरमविषसरीरतव्वहरित्ते इव्वसंखे तिविहे पणत्ते’ इत्यादि, तथा-एकभक्ति उत्कृष्टेन पूर्वकोटी, अयं च पूर्वकोट्यायुरायुःक्षयात्समनन्तरं शब्देषु उत्पत्त्यते यः स परिगृह्यते, अधि-कतरायुषस्तेषु उत्पत्त्यभावात्, बद्धायुष्कः पूर्वकोटीत्रिभागमिति, अस्मात् परत आयुष्कबन्धाभावात्, अभिमुखनामगोत्रोऽन्तर्मुहूर्त्तमिति अस्मात्परतो भावसंख्यत्वाभावादिति, को नयः कं सङ्ख्यमिच्छतीत्यादि सूत्रसिद्धं, नवरं नैगमव्यवहारौ लोकव्यवहारपरत्वात् त्रिविधं शब्द-मिच्छतः, ऋजूसूत्रोऽतिप्रसङ्गभयात् द्विविधं, शब्दादयः शुद्धतरत्वादतिप्रसङ्गनिवृत्त्यर्थमेवैकविधमिति । औपम्येन संख्यानं औपम्यसंख्या, अनेकार्थत्वाद्वातूनामुपमार्थप्रधाना कीर्त्तना, परिच्छेद इत्यन्ये, इयं च निगदसिद्धा, परिमाणसंख्या-प्रमाणकीर्त्तना, ज्ञानसंख्यापि ज्ञानकीर्त्तनैव, द्वयमपि निगदसिद्धं । ‘से किं तं गणणसंख्या’ इत्यादि, एतावन्त इति संख्यानं गणनसंख्या, एको गणनां नोपैति तत्रान्तरेण एतथ संख्यां वस्त्वित्येव प्रतीतिः, एकत्वसंख्याविषयत्वेऽपि वा प्रायोऽसंख्यवहार्यत्वादल्पत्वादत आह-द्विप्रभृतिः संख्या, तथा-संख्येयकं असंख्येयकं अनन्तकं, एतथ संखिज्जकं जहण्णादिगं तिविधमेव, असंखिज्जगं परिप्तादिगं तिहा काचं पुण एक्केकं जहण्णादिति विहविगपेण नवविहं भवति, अणंतगं पि एवं चेव, णवरं अणंतगणंतगस्स उक्कोसस्स असंभवत्तणओ अट्ठविहं कायव्वं, एवं भेए कए तेसिमा परूवणा कज्जति-‘जहण्णागं संखिज्जगं केत्तियं’ इत्यादि कण्ठ्यं, ‘से जहा णामए पल्ले सिया’ इत्यादि, से पल्ले बुद्धिपरिकप्पणाकप्पिए, पल्ले पक्खेवा भण्णंनि, सो य हेट्ठा जोय-णसहस्सावगाढो, रयणकंढं जोयणसहस्सावगाढं भेतुं वेरकंढपत्तिट्ठिओ, उवरिं पुण सो वेदियाकंतो, वेदियागतो य उवरि सिहामयो कायव्वो, जतो असतिमादि सव्वं वीयमेज्जं सिहामयं दिट्ठं, सेसं सुत्तसिद्धं, दीवसमुदाणं उद्धारो वेप्पइत्ति, उद्धरणमुद्धारः, तेहिं पल्ल- नामादि- संख्या गणन संख्या च ॥१०९॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)
प्रत सूत्रांक [१४६- १४८] गाथा ११६- ११८ दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	 मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८] पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
	श्रीअनु० हरि.वृत्तो ॥१११॥ पमानेहि होदिह तं आमलगं जं तं भवं भवेदिति, अण्णं आमलगं ण पडिच्छति, एवमुक्कोसयं संखिवज्रयं विट्ठं, तस्स इमा परुवणा-जंबुरीव- पमानमेत्ता चत्तारि पला, पढमो अणवद्धितपल्लो बित्तिओ सळागापल्लो तइओ पडिसळागापल्लो चउत्थो महासळागापल्लो, एते चउरोवि रणप्पभाए पुढवीए पढमं रयणकंडं जोयणसहस्सावगाढं भित्तूण भितिए वइरकंडे पतिट्टिया दिट्ठा, इमा ठवणा-०००० एते तु ठिता, एगे गणणं नेवेति दुप्पमितिसंखितिकाडं, तत्थ पढमे अणवद्धितपले दो सरिसवा पक्खित्ता, एके जइण्णमासंखिज्जगं, तअणे एगुत्तरबुद्धिए तिणिग चउरो पंच जाव सो पुणो अण्णं सरिसवं ण पडिच्छति ताहे असम्भावपट्टवणं पट्टच्च बुद्धति, तं कोऽन्नि देवो दाणवो वा उक्खित्तुं वाम- करयले कावं ते सरिसवे जंबूदीवाइए दीवे समुदे पक्खिवेज्जा जाव निट्टिया, ताहे सळागा-एरो सिद्धत्थओ छूळो सा सळागा, ततो जहि दीवे समुदे वा सिद्धत्थओ निट्टितो सह तेण अरेण जे दीवसमुदा तेहिं सच्चेहिं तप्पमाणो पुणो अण्णो पल्लो भरिज्जइ, सोऽवि सिद्धत्थयाण भरितो जंभि निट्टितो ततो परतो दीवसमुदेसु एक्केकं पक्खिवेज्जा जाव सोऽवि निट्टियो, ततो सळागापल्ले बित्तिओ सरिसवो छूळो, जत्थ निट्टितो तेण सह आदिल्लएहिं पुणो अण्णो पल्लो आइज्जति, सोवि सरिसवाणं भरितो, ततो परतो एक्केकं दीवसमुदेसु पक्खिवेतेण गिट्ठावितो, ततो सळागापल्ले ततिया सळागा पक्खित्ता, एवं एतेण अणवद्धितपल्लकरणकमेण सळाग्रप्रहणं करितेण सळागापल्लो सळागाण भरितो, क्रमागतः अणवद्धितो, ततो सळागापल्लो सळागं ण पडिच्छइत्तिकीडं सो चेव उक्खेतो, निट्टितट्ठाणा परतो पुट्टवकमेण पक्खित्तो निट्टितो य, ततो अणवद्धितो उक्खित्ता निट्टियट्ठाणा पुट्टवकमेण पक्खित्तो निट्टियो य, ततो सळागापल्ले सळागा पक्खित्ता, एवं अजेणं अजेणं अणवद्धि- तेण अतिरनिक्किरेतेण जाहे पुणो सळागापल्लो भरितो अणवद्धितो य, ताहे पुण सळागापल्लो उक्खित्तो पक्खित्तो निट्टितो य पुट्टवकमेण, ताहे पडिसळागापल्ले विइया पडिसळागा छूडा, एवं आइरनिक्किरेणेण जाहे तिणिगवि पडिसळागसळागअणवद्धितपल्ला य भरिता ताहे सत्यचतुष्कं ॥१११॥

आगम (४५)	"अनुयोगद्वार"- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)
	 मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]
प्रत सूत्रांक [१४६- १४८] गाथा ११६- ११८	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	श्रीअनु० हारिवृत्तो ॥११२॥ पल्लवचतुष्कं ॥११२॥ पडिसलागापल्लो पक्खित्तो, पक्खिप्पमाणो णिट्ठितो य, ताहे महासलागापल्ले महासलागा पक्खित्ता, ताहे सलागापल्लो उक्खित्तो पक्खि- प्पमाणो णिट्ठितो य, ताहे पडिसलागा पक्खित्ता, ताहे अणवट्टितो उक्खित्तो पक्खित्तो य, ताहे सलागापल्ले सलागा पक्खित्ता, एवं आहरण- णिक्किरणक्केमेण ताव कायब्बं जाव परंपरेण महासलागापडिसलागसलागअणवट्टितपल्ला य चउरोवि भरिया, ताहे उक्कोसमीत्तच्छियं, एत्थ जावतिया अणवट्टितपल्ले सलागपल्लि पडिमलागापल्ले महासलागापल्ले य दीवसमुदा उद्धरिया जे य चउपल्लहिया सरिसवा एस सब्बोऽवि एतप्पमाणो रासी एगरूवणो उक्कोसयं संखेज्जयं हवति, जहण्णुक्कोसयाण मग्गेजे ठाणा ते सब्बे पत्तेयं अजहण्णमणुक्कोसया संखेज्जया भाणि- यन्वा, सिद्धंते जत्थ संखेज्जयगहणं कयं तत्थ सब्बं अजहण्णमणुक्कोसयं दट्ठव्वं । एवं संस्खिज्जगे परुविते सीसो पुच्छति—भगवं ! किमे- तेण अणवट्टिते पल्ले सलागापडिसलागामहासलागापल्लियादीहि य दीवसमुहुद्वारगहणेण य उक्कोसगसंखेज्जगपरुवणा कज्जति?, गुरु भणति- णत्थि अण्णो संखेज्जगस्स फ़ुडतरो परुवणोवायोत्ति, किंचान्यत्त- असंखेज्जगमणंतगरासीविगप्पणावि एताओ चेव आधारौ, रूढुत्तरगुणवृ- द्धताओ परुवणा कज्जतीत्यर्थः, उक्तं त्रिविधं संख्येत्यर्कः । इदानीं णवविहं असंखेज्जगं भणति-'एवमेव उक्कोसए' इत्यादि सुत्तं, असंखेज्जगे परुविज्जमाणे एवमेव अणवट्टितपल्लदीबुद्धारएण उक्कोसगं संस्खिज्जगमाणीए एगसरिसवरूवं पक्खित्तं ताहे जहण्णगं भवति, 'तेण परं' इत्यादि सूत्रं, एवं असंखेज्जग अजहण्णमणुक्कोसट्ठाणाण य जाव इत्यादि सुत्तं, सीसो पुच्छति-'उक्कोसगं' इत्यादि सुत्तं, गुरु आह-जहण्णगं परित्ताअसंखेज्जगं' ति, अस्य व्याख्या—तं जहण्णगं परितासंखेज्जयं विरल्लियं ठविज्जति, तस्स विरल्लियठावियस्स एकके सरिसवट्ठाणे जहण्णपरित्तासंखेज्जगमेत्तो रासी दायव्वो, ततो तेसिं जहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णभासोत्ति-गुणणा कज्जति, गुणिते जो रासी जातो सो रूवणोति रूवं पाडिज्जइ, तंभि पाडिते उक्कोसगं परितासंखेज्जगं होति, एत्थ दिट्ठंतो-जहण्णगं परितासंखेज्जगं बुद्धीकप्प-

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]
प्रत सूत्रांक [१४६- १४८] गाथा [[११६- ११८]] दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूल एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ। ॥११३॥ णाए पंच रूपाणि, ते विरल्लिया इमे ५५५५५, एकेकस्स हेड्डा जहण्णगपरित्तासंखेज्जगमेत्तरासी ठबिया ५५५५५, एतेसि पंचगाणे अण्णमण्णम्भासोप्ति गुणितो जाता एकतीसं सता पणवीसा, एत्थं अण्णमण्णम्भासोप्ति जं भणितं एत्थं अण्णे आयरिया भणन्ति--वग्गियंसंवग्गियन्ति भणितं, ५५५५५. अत्रोच्यते--स्वप्रमाणेन राक्षिना रासी गुणिज्जमाणो वग्गियन्ति भणन्ति, सो चेव संबद्धमाणो रासी पुब्बिल्लुगुणकारेण गुणिज्जमाणो संवाग्गियन्ति, अतो अण्णमण्णम्भत्यस्स वग्गियंसंवग्गियस्स य नार्थमेद इत्यर्थः, अन्यः प्रकारः, अहवा जहण्णगं जुत्तासंखेज्जगं जं तं रूपूं कज्जति, सतो उक्कोसगं परित्तासंखेज्जगं होति, उक्तं तिविहंपि परित्तासंखेज्जगं । इदाणि तिविहं जुत्तासंखेज्जगं भणन्ति, तस्स इमे समोत्तरो,--सीसो भणन्ति-भगवं ! जं तुब्भे जहण्णगं जुत्तासंखेज्जगपरूपवणं करेहं तमहं ण याणे, अतो पुच्छा इमा-जहण्णजुत्तासंखेज्जगं केत्तियं होसि?, आचार्य उत्तरमाह--‘जहण्णगं परित्तासंखेज्जगं’ इत्यादि सूत्रं पूर्ववत्कंठयं, नवरं पडिपुण्णेत्ति-गुणिते रूपं न पाडिज्जति, अन्यः प्रकारः, अथवा ‘उक्कोसए’ इत्यादि, सूत्रं कंठयं, जावइतो जहण्णजुत्तासंखेज्जगए सरिसवरासी एगावलियाएवि समयरासी वत्तिओ चेव, जत्थ सुत्ते आवळियागहणं तत्थ जहण्णजुत्तासंखेज्जगपडिपुण्णपमाणमेत्ता समया गहितत्वा, ‘तेण पर’ मित्यादि, जहण्णजुत्तासंखेज्जग परतो एगुत्तरवट्ठिता असंखेज्जा अजहण्णमणुक्कोसजुत्तासंखेज्जगहाणा गच्छन्ति, जाव उक्कोसगं जुत्तासंखेज्जगं ण पावतीत्यर्थः, सीसो पुच्छति-उक्कोसगं जुत्तासंखेज्जगं केत्तियं भवति ?, आचार्य आह--जहण्णगजुत्तासंखेज्जगपमाणराशिणा आवळियासमयरसी गुणितो रूपूणो उक्कोसगं जुत्तासंखेज्जगं भवति, अण्णे आयरिया भणन्ति-जहण्णजुत्तासंखेज्जगरासिस्स वग्गो कज्जति, किमुक्तं भवति?, आवळिया आवळियाए गुणिज्जति रूपूणिओ उक्कोसगं जुत्तासंखेज्जगं भवति, अन्यः प्रकारः--‘अहवा जहण्णगं’ इत्यादि सूत्रं, कंठयं । शिष्यः पृच्छति--‘उक्कोसगं’ इत्यादि सूत्रं, आचार्य उत्तरमाह--‘जहण्णगं’ मित्यादि सूत्रं, कंठयं, अन्यः प्रकारः--‘अहवा जहण्णगं’ इत्यादि सूत्रं, कंठयं, अण्णे पुण आयरिया उक्कोसगं गणना- सख्यायां असंख्येयाः ॥११३॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]
प्रत सूत्रांक [१४६- १४८] गाथा [११६- ११८] दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्ति ॥११४॥ असंखेज्जासंखेज्जगं इमेण पगारेण पण्णवेंति-जहण्णगअसंखेज्जासंखेज्जगरास्सिस्स वग्गो कज्जति, तस्स रासिस्स पुणो वग्गो कज्जति, तस्सेव वग्गस्स पुणो वग्गो कज्जति, एवं तिणिण थारा वग्गितसंवग्गिते इमे दस पक्खेवया पक्खिस्सपंति ‘लोगागासपदेसा १ धम्मा २ धम्मे ३ गजी-वदेसा य ४ । दब्बट्ठिया णिओया ५ पत्तेया चेव बोद्धव्वा ६ ॥ १ ॥ ठितिवंधज्जवसाणे ७ अणुभागा ८ जोगच्छेयपलिभागा ९ । दोण्ह य समाण समया १० असंखपक्खेवया दस व ॥ २ ॥ सव्वे लोगागासपदेसा, एवं धम्मत्थिकायप्पएसा अधमत्थिकायप्पएसा एगजीवप्पदेसा दब्बट्ठिया णिओयात्ति-सुद्धमबादरअणंतवणस्सत्तिसरीरा इत्यर्थः, पुढवादि जाव पंचेदिया सव्वे पत्तेयसरीराणि गहियाणि, ठितिवंधज्जवसाणेत्ति-णाणावरणादियस्स संपरायकम्मस्स ठितिविसेसबंधा जेहिं अज्झवसाणठाणेहिं भवंति ते ठितिवंधज्जवसाणे, ते य असंखा, कहं?, उच्यते, णाणावरणदेसणावरणमोहआउअंतरायस्स जहण्णिया अंतमुहुत्ता ठिती, सा एगसमउत्तरवुद्धीए ताव गता जाव मोहणिज्जस्स सत्तरिसागरोवम-कोडाकोडिओ सत्त य वाससहस्सत्ति, एते सव्वे ठितिविसेसा, तेहिं अज्झवसायट्ठाणविसेसेहिं तो णिप्फज्जन्ति अतो ते असंखेज्जा भणिता, अणुभागत्ति-णाणावरणादिकम्मणो जो जस्स विवागो सो अणुभागो, सो य सव्वजहण्णठाणाओ जाव सव्वुक्कोसो समणुभावो, एते अणुभाग-विसेसा जेहिं अज्झवसाणट्ठाणविसेसेहिं तो भवंति ते अज्झवसाणट्ठाणा असंखेज्जगाऽऽगासपदेसमेत्ता, अणुभागट्ठाणावि तत्तिया चेव, जोगच्छेयप-लिभागा, अस्य व्याख्या-जोगोत्ति जोगा मणवतिकायप्पओगा, तेहिं मणादियाणं अप्पण्णो जहण्णठाणाओ जोगविसेसपहाणु तरवुद्धीए जाव उक्कोसो मणवइकायपओयात्ति, एते एगुत्तरवुद्धिया जोगविसेसट्ठाणछेदपलिभागा मण्णंति, ते मणादियछेदपलिभागा पत्तेयं पिडिया वा असंखे-ज्जया इत्यर्थः, ‘दोण्ह य समाण समया व’ ति उस्सप्पिणी ओसप्पिणी य, एयाण समया असंखेज्जा चेव, एते दस असंखपक्खेवया मणना- संख्यायां असंखेयाः ॥११४॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]	
प्रत सूत्रांक [१४६- १४८] गाथा ॥११६- ११८॥ दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हरि.वृत्तौ ॥११५॥ पक्खिविडं पुणो रासी तिणिण वारा वग्गिओ, ताहे रूवोणो कंओ, एवं उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयप्पमाणं भवति, उक्तं असंखेज्जगं । इदाणि अणंतयं भण्णति-सीसो पुच्छति— ‘जहण्णगं’ इत्यादि सुत्तं, कंठ्यं, गुरू आह—‘जहण्णगं असंखेज्जासंखेज्जगं’ इत्यादि सुत्तं, कंठ्यं, अन्यः प्रकारः-‘उक्कोसए’ इत्यादि सुत्तं, कंठ्यं, ‘तेण पर’ मित्वादि सुत्तं, कंठ्यं, सीसो पुच्छति-‘उक्कोसयं परिताणंतयं’ इत्यादि सुत्तं, कंठ्यं, गुरू आह—‘जहण्णयं’ इत्यादि सुत्तं, कंठ्यं, अन्यः प्रकारः-‘अहवा जहण्णगं’ इत्यादि सुत्तं, कंठ्यं, सीसो पुच्छति-‘जहण्णगं परिता’ इत्यादि सुत्तं, कंठ्यं, आचार्य आह—‘जहण्णगं परिताणंतयं’ इत्यादि सुत्तं, कंठ्यं, ‘अहवा उक्कोसए’ इत्यादि सुत्तं, कंठ्यं, एत्थ अण्णायरियाभिप्पायतो वग्गितसंवग्गितं भाणियव्वं, पूर्ववत्, जहण्णो जुत्ताणंतयरासी जावइओ अभव्वरासीवि केवलणाणेण तत्तितो चेव दिट्ठो, ‘तेण परं’ इत्यादि सुत्तं, कंठ्यं, आचार्य आह—‘जहण्णएणं’ इत्यादि सुत्तं, कंठ्यं, अन्यः प्रकारः ‘अहवा जहण्णगं’ इत्यादि सुत्तं, कंठ्यं, एत्थ अण्णायरियाभिप्पायतो अभव्वरासीप्पमाणस्स रासीणो सति वग्गो कज्जति, ततो उक्कोसयं जुत्ताणंतयं भवति, सीसो पुच्छति-‘जहण्णयं अणंताणंतयं केत्तियं भवति’ सुत्तं, कंठ्यं, आचार्य आह—‘जहण्णएणं’ इत्यादि सुत्तं, कंठ्यं, अन्यः प्रकारः-‘अहवा उक्कोसए’ इत्यादि सूत्रं, कंठ्यं, ‘तेण पर’ मित्वादि सुत्तं, कंठ्यं, उक्कोसयं अणंताणंतयं नास्त्येवेत्यर्थः, अण्णे आयरिया भण्णति-जहण्णयं अणंताणंतयं तिणिण वारा वग्गियं, ताहे इमे एत्थ अणंतपक्खेवा पक्खित्ता, तंजहा-सिद्धा १ णिओयजीवा २ वणस्सवी ३ काल ४ पोतगला ५ चेव । सव्वमल्लोगागासं ६ छप्पेतेऽणंतपक्खेवा ॥ १ ॥ सव्वे सिद्धा सव्वे सुहुमबादरा णिओयजीवा परिता अणंता सव्वे वणस्सइकाइया सव्वे तीताणागतवट्टमाणकालसमथरासी सव्वपोगलदव्वाण परमाणुरासी सव्वागासपएसरासी, एते पक्खिविड्ढण तिणिण वारा वग्गियसंवग्गिओ काउं तहवि उक्कोसयं अणंताणंतयं ण पावति, ततो केवलणाणं केवल- गणनायां अनन्त संख्या ॥११५॥	

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]
प्रत सूत्रांक [१४६- १४८] गाथा ॥११६- ११८॥ दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥११६॥ इंसणं च पक्खिस्सत्तं, तद्वावि उक्कोसयं अणंताणंतयं ण पावति, सुत्ताभिप्पायाओ, जओ सुत्ते भणितं-त्तेण परं अजहण्णमणुक्कोसाइं ठाणाइंति, अण्णावरियाभिप्पायतो केवलणाणदंसणेसु पक्खिस्सत्तेसु पत्तं उक्कोसयं अणंताणंतयं, जओ सव्वमणन्तयमिह, णत्थि अण्णं किंचिदिति, जहिं अणंताणंतयं मग्गिज्जति तहिं अजहण्णमणुक्कोसयं अणंताणंतयं गहि्यव्वं, उक्ता गणनासंख्या । ‘से किं तं भावसंखा’ इत्यादि, प्राकृत-शैल्याऽत्र शङ्खाः परिगृह्यन्ते, आह च-य एते इति प्ररूपकप्रत्यक्षा लोकप्रसिद्धा वा जीवा आयुःप्राणादिमन्तः स्वस्वगतितानामगोत्राणि तिर्यग्गति-द्वीन्द्रियौदारिकशरीराङ्गोपाङ्गादीनि नीचेतरगोत्रलक्षणानि कर्माणि तद्भावापन्ना विपाकेन वेदयन्ति त एव भावसंख्या इत्युक्ता भावसंख्याः, ‘सेत्त’ मित्यादि निगमनत्रयं, समाप्तं प्रमाणद्वारं ॥ अधुना वक्तव्यताद्वारावसरः, तत्राह— ‘से किं तं वक्तव्यता’ इत्यादि (१४७-२४३) तत्राध्ययनादिषु सूत्रप्रकारेण विभागन देशनियतगंधनं वक्तव्यता, इयं च त्रिविधा स्वस-मयादिभेदात्, तत्र स्वसमयवक्तव्यता यत्र यस्यां णमिति वाक्यालंकारे स्वसमयः-स्वसिद्धान्तः आख्यायते, यथा पंचास्तिकायाः, तद्यथा-धर्मास्ति-कायः इत्यादि, तथा प्रज्ञाप्यते यथा गतिलक्षणो धर्मास्तिकाय इत्यादि, तथा प्ररूप्यते यथाऽसावसंख्येयप्रदेशात्मकादिभिः, तथा दर्शयते मत्स्यानां जलमित्यादि, तथा निदर्शयते यथा तथैवैषोऽपि जीवपुद्गलानामिति, उदाहरणमात्रमेतदेवमन्यथापि सूत्रालापयोजना कर्तव्येति शेषः, स्वसमयवक्तव्यता, परसमयवक्तव्यता तु यत्र परसमय आख्यायत इत्यादि, यथा ‘संति पंचमहच्चूया, इहमेगेसि आहियं । पुढवी आऊ य बा-ऊ य, तेऊ आगासपंचमा ॥१॥ एते पंच महच्चूया, तेढमो एगत्ति आहियं । अह तेसिं विणासेणं, विणासो होइ देहिणो ॥ २ ॥ इत्यादि लोकायतसमयवक्तव्यतरूपत्वात् परसमयवक्तव्यतेति, शेषसूत्रालापकयोजनापि स्वबुद्धवाकार्या, सेयं परसमयवक्तव्यता, स्वसमयपरसमय- वक्तव्यता- ऽधिकारः ॥११६॥
	*** अथ ‘वक्तव्यता’ अधिकारः दर्शयते

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)	 मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]
प्रत सूत्रांक [१४६- १४८] गाथा ११६- ११८ दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥११८॥ कान्ताऽभ्युपगमेन कर्मबन्धक्रियाऽभावप्रतिपादकत्वाद्, उक्तं च-“उत्पन्नस्यावस्थानामभिर्लक्षणयोगतः । हिंसाऽभावाच्च बन्धः स्वदुपदेशो निरर्थकः ॥१॥” इत्यादि, उत्तरार्गः परस्परविरोधात्, विरोधाकुलत्वं वैकांतक्षणिकत्वेऽपि हिंसाऽभ्युपगमाद्, उक्तं च तत्र-प्राणी प्राणिज्ञानं यातुकश्चित्तं च तद्गता चेष्टा । प्राणैश्च विप्रयोगः पंचभिरापद्यते हिंसे ॥१॥” त्यादि, अनुपदेशः अहितप्रवर्तकत्वाद्, उक्तं च-“सर्वे क्षणिकमित्येतत्, ज्ञात्वा को न प्रवर्तते । विषयादौ? विषाको मे, न भावीति दृढव्रतः ? ॥ १ ॥” इत्यादि, यतश्चैवमतो मिथ्यादर्शनं, ततश्च मिथ्यादर्शनमिविच्छित्वा नास्ति परसमयवक्तव्यतेति वर्तते, एवं समयांतरेष्वपि स्वबुद्ध्या उत्प्रेक्ष्य योजना कार्या, तस्मात् सर्वा स्वसमयवक्तव्यता, नास्ति परसमयवक्तव्यतेति, अन्ये तु व्याचक्षते-परसमयोऽनर्थोदिर्गुणयरूपत्वाद्, यथाभूतस्त्वसौ विद्यते प्रतिपक्षसापेक्षस्वथाभूतः स्याद्वादाल्लान् स्वसमय एवेति, तदुक्तं च-“नयास्तव स्यात्पदलाञ्छिता इमे, रसोपविद्धा इव लोहधातवः । भवन्त्यभिप्रेतगुणा यतस्ततो, भवन्तमर्थोः प्राप्ता हितेषिणः ॥ १ ॥” इत्यादि, आह-न खलु अनेकान्त एक समसमीपां शब्दाद्यानां तत्कथमेवं व्याख्यायते ? इति, उच्यते, विवादस्तद्विषयः, शुद्धनशास्त्रे भावप्रधानाः, तद्भावश्चेत्यमेवेति न दोषः, सेयं वक्तव्यतेति निर्गमनं, उक्तं वक्तव्यता ॥ सामप्रतमर्थोपि सात्वतः स च सामायिकादीनां प्राक् प्रदर्शित एवेति न प्रतन्यते, वक्तव्यतार्थाधिकारयोश्चायं भेदः-अर्थाधिकारो हाध्ययने आदिपदान्तराभ्यः सर्वपदेष्वनुवर्तते, पुट्लास्तिकाये मूर्त्तत्वबद्ध, देशादनियता तु वक्तव्यतेति । ॥‘से किं तं समीचारे?’ इत्यादि (१४९-२४६) समवतरणं समवतारः, अप्ययनासमताकरणमिति भावः, अयं च षड्विधः प्रज्ञप्त इत्यादि निरादिसिद्धमेव यावच्चक्षरीरभव्यक्षरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यसमवतारस्त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तथा—आत्मसमवतार इत्यादि, तत्र सर्वद्रव्याण्यप्यात्मसमवतारेणाभावे समवतरन्ति-वर्तन्ते, तदव्यतिरिक्तत्वाद्, यथा जीवद्रव्याणि जीवभावे इति, भावान्तरसमवतारे तु स्वभावत्यागा- अर्था- धिकारः समवतारश्च ॥११८॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४९] / गाथा [११९-१२३]
प्रत सूत्रांक [१४९] गाथा ॥११९- १२३॥ दीप अनुक्रम [३११- ३१७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हरि.वृत्तौ ॥११९॥ द्वस्तुत्वमसंगः, व्यवहारस्तु परसमवतारेण परभावे, यथा कुण्डे वदराणि, स्वभावव्यवस्थितानामेवान्यत्र भावात्, तदुभयसमवतारेण तदुभये, यथा गुहे स्तम्भः आत्मभावे चेत्यादि, मूलपादवेदलीङ्गमस्तम्भतुलादिसमुदायात्मकेत्वाद् गृहस्य, तत्र च स्तम्भस्य मूलपादादयः परे, आत्मा पुनरात्मैव, तदुभये चास्य समवताइस्तथावृत्तेरिति, एवं घटे ग्रीवा आत्मभावे च, सामान्यविशेषात्मकत्वात्तस्य, अथवा ज्ञाप्यरभ्यङ्गरी-रव्यतिरिक्तो द्रव्यसमवतारो द्विविधः प्रज्ञस्तथा-आत्मसमवतारस्तदुभयसमवतारश्च, शुद्धः परसमवतारो नास्त्येव, आत्मसमवतारश्चि-तस्य परसमवताराभावात्, न ह्यतन्मन्वर्तमानो गर्भो जनन्मुद्रादौ वर्तत इति, ‘चउसष्टिग्रा’ इत्यादि, छप्पणा दो पळसता माणी भणति, तस्य चउसष्टीभगो चउसष्टिया चउसे पळा भवति, एवं वत्तीसियाए अट्ट पळा, सोलसियाए सोलस, अट्टभाइयाए वत्तीसं, चउभाइयाए चउ-सष्टि, दोभाइयाए, अट्टावीसुचरं पळसतं, सेसं कंठ्यं । द्रव्यता त्वमीषां प्रतीतैव, क्षेत्रकाण्डसमवतारस्तु सूत्रसिद्ध एव, एवं सर्वत्र । उभयसमवतारे तु क्रोध आत्मसमवतारेण आत्मभावेः समवतरति, तदुभयसमवतारेण माने समवतरति आत्मभावे च, यतो मानेन कुण्ठ्यतीति, एवं सर्वत्रो-भयसमवतारकरणे आत्मसामान्यमर्भत्वाऽन्योऽन्यव्याप्त्यादिकं कारणं स्वदुद्ध-या वक्तव्यमित्युक्तो भावसमवतारस्तदभिधानाच्चोपक्रम इति, समाप्त उपक्रमः ‘से किं तं निक्षेवे’ त्यादि, (१५०-२५०) निक्षेप इति शब्दार्थः पूर्ववत् त्रिविधः प्रज्ञस्तथा-ओघनिष्फस्य इत्यादि, तत्र ओघो नाम सामान्यं श्रुताभिधानं तेन निष्फस्य इति, एवं नामसूत्रात्पक्षेऽपि वेदितव्यं, नवरं नाम वैशेषिकमध्ययनाभिधानं, सूत्रात्पक्षेऽपि नववि-भागपूर्वक इति । ‘से किं तं ओघनिष्फस्ये’ त्यादि, चतुर्विधः प्रज्ञस्तथा-अध्ययनमधीगमायः अपणेत । ‘किं से तं अज्ज्ञयणे’ त्यादिः सुगमं, यावद् अज्ज्ञप्यस्साणयणमित्यादि (३१२४ २५१) इह नैरुक्तैः विधिना प्राकृतस्वभावाच्च अज्ज्ञप्यस-नचितस्त आणयणं पमारस्समारअगार- ओघ- निष्पन्ने अध्ययना- शीलादीति ॥११९॥
	*** अत्र ‘निक्षेप’ अधिकारः वर्णयते

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१५०] / गाथा [१२४-१३१]
प्रत सूत्रांक [१५०] गाथा ॥१२४- १३१॥ दीप अनुक्रम [३१८- ३३२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हरि.वृत्तौ ॥१२१॥ यिकमित्यदि पूर्ववत् ॥ ‘जह मम’ गाथा (॥१२८-२५६) व्याख्यान्यथा मम न प्रियं दुःखं प्रतिकूलत्वात्, ज्ञात्वा एवमेव सर्वजीवानां दुःख- प्रतिकूलत्वं न हन्ति स्वयं न धातयत्यन्यैः, चक्षुष्याद् धातयन्तं च नानुमन्यतेऽन्यमिति । अनेन प्रकारेण समं अणति-सुखं गच्छति यस्ते- नासौ समः इति गार्थः । ‘अस्ति यः सि’ गाथा (॥१२९-२५६) नास्ति ‘से’ तस्य कश्चिद् द्वेष्यः प्रियो वा, सर्वेष्वेव जीवेषु तुल्यमनस्त्वात्, एतेन भवति समः, समं मनोऽस्येति समः, एषोऽन्योऽपि पर्याय इति गार्थः । ‘उरग’ गाथा (॥१३०-२५६) उरगसमः परकृतबिड- निवासात्, गिरिसमः परीषहोपसर्गनिष्पत्त्यात्, ज्वलनसमस्तपस्तेजोयुक्त्वात्, सागरसमो गुणरत्नयुक्त्वात्, नभस्तलसमो निरालंबन- त्वात्, मेरुगिरिसमः सुखदुःखयोस्तुल्यत्वात्, अमरसमोऽनियतवृत्तित्वात्, मृगसमः संसारं प्रति नित्योद्वेगात्, धरणिसमः सर्वस्पर्श- सहिष्णुत्वात् जलरुहसमो निष्पङ्क्तत्वात्, पङ्कजलस्थानीयकामभोगाप्रवृत्तेरित्यर्थः, रविसमस्तमोविधातृत्वात्, पवनसमः सर्वत्राप्रतिब- द्धत्वात्, एतत्समस्तु यः असौ भ्रमण इति गार्थः । ‘तो समणो’ गाथा (॥१३१-२५६) ततः भ्रमणो यदि सुमनाः, द्रव्यमनः प्रसीत्य, भावेन च यदि न भवति पाप्मनाः, एतत्फलमेव दर्शयति-स्वजने च जने च समः, समश्च मानापमानयोरिति गार्थः । सामायिकवाञ्छा भ्रमण इति सामायिकाधिकारे खल्वस्योपन्यासो न्याय्य एवेत्युक्तो नामनिष्पन्नः । ‘से किं तं सुत्तालावगनिष्फले’ त्यादि, यः सूत्रपदानां नामादिन्यासः स सूत्राक्षपकनिष्पन्न इति । इदानीं सूत्राक्षपकनिष्पन्नो निक्षेप इच्छावेद्वि एषयति अतिप्रवृत्तिसुमात्रमानमवसरप्राप्तत्वात्, यः च प्राप्तलक्ष्णोऽपि न निक्षिप्यते, कदाचित् ? लक्ष्यार्थं, लक्ष्यं च अस्ति इतः तृतीयमनुयोगद्वारमनुक्रम इति तत्र निक्षिप्य इह निक्षिप्ये भवति, इह वा निक्षिप्यस्तत्र निक्षिप्यो भवति, तत्र वा न निक्षिप्यते, तत्रैव निक्षिप्यते इति, आह-कः पुनरित्थं गुणः ? सूत्रानुगमे सूत्रभावः, इह तु तदभाव इति शिष्येयः, आह-यद्येवं किमर्थमिहोच्चार्यते ? उच्यते, निक्षेपमात्रसमान्यादिति, उक्तो निक्षेपः । निक्षेपः अनुक्रमश्च ॥१२१॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)
	 मूलं [१५१] / गाथा [१३२-१३४]
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [१५१] गाथा १३२- १३४ दीप अनुक्रम [३३२- ३३६]	श्रीअनु० हारि.वृत्ती १२३ नैगमः संग्रहश्च सम्प्रति व्याख्यालक्षणमेवाह-‘संधिता य’ (#१३४-२६१) इत्यादि, तत्रास्वलितपदोच्चारणं संहिता ‘परः सन्निकर्षः संहिते’ (पा० १-४-१०९- ति वचनात्, यथा-करोमि भदन्त ! सामायिकमित्यादि, पदानि तु-करोमि भदन्त ! सामायिकं, पदार्थस्तु करोमीत्यभ्युपगमे, भदन्त ! इत्या- मन्त्रणे, समभावः सामायिकमिति, पदविग्रहस्तु प्रायः समांसाविषयः, पदयोः पदानां विच्छेदोऽनेकार्थसंभवे सति दृष्टार्थनियमाय क्रियते, यथा राज्ञः पुरुषो राजपुरुषः श्वेतः पटोऽस्थेति श्वेतपट इत्यादिसमासभाक्षदविषयसूत्रानुपाती, चोदना-चालना तद्व्यवस्थापनं प्रसिद्धिः, यथा- करोमि भदन्त ! सामायिकमित्यत्र शुर्वामन्त्रणवचनो भदन्तशब्द इत्युक्ते सस्याह-गुरुविरहे करणे निरर्थकोऽयमिति, न, स्थापनाचार्य- भावेन, स्थापनाचार्यामन्त्रणेन च विनयोपदेशनार्थ इति सार्थकः, एवं षड्विधं विद्धि-विज्ञानीहि लक्षणं, व्याख्याया इति प्रक्रमाद्रम्यते, नाचि (नाभि) कादिपदादिस्वरूपं त्वावश्यके स्वस्थान एव प्रपञ्चेन वक्ष्यामि, गमनिकामात्रमेतदित्युक्तोऽनुगमः । ‘से किं तं नये’ त्यादि, (१५२-२६४) शब्दार्थः पूर्ववत्, सम मूलनयाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा-नैगम इत्यादि, तत्तथ ज्ञेयैर्हितेन एकं नैकं, प्रभृतानीत्यर्थः, एतैः कैः ?-मानैः-महासत्तासामान्यविशेषज्ञानैर्मिभीते मिनीतीति वा नैकम इति नैकमस्य निरुक्तिः, निगमेषु भवो नैगमः, निगमाः-पदार्थपरिच्छेदाः, तत्र सर्वत्र सन्त्येवमनुगताकारावबोधहेतुभूतं च सामान्यविशेषं द्रव्यत्वादि व्यावृत्तावबोधहेतुभूतं च नित्य- द्रव्यवृत्तिमन्तं विशेषं, आह-इत्थं नैगमः तर्हि अयं सम्यग्दृष्टिरेवास्तु, सामान्यविशेषाभ्युपगमपरत्वात्, साधुवदिति, नैतदेवं, सामान्यविशेष- वस्तूनां अत्यन्तमेदाभ्युपगमपरत्वात्तस्य, आह च भाष्यकारः-‘जं सासण्णविसेसे परोप्परं वत्थुओ य सो भिण्णे । मण्णइ अच्छंतमओ मिच्छहिटी कणादन्व ॥ १ ॥ दोहिवि णएहिंणीयं सत्थमुल्लएण तहवि मिच्छत्तं । जं सविसयप्पहाणत्तणेण अण्णेण्णिगरिवेक्खो ॥ २ ॥ अथवा निलयनप्रस्थकप्रामोदाहरणेभ्यः प्रतिपादितेभ्यः खल्वयमवसेय इत्यलं प्रसङ्गेन, गमनिकामात्रमेतत् । ‘सैसाण’ मित्यादि,
	*** अथ ‘नय’-अधिकारः वर्णयते

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)
प्रत सूत्रांक [१५४- १५५] गाथा १३५- १४१ दीप अनुक्रम [३३७- ३५०]	 मूलं [१५४-१५५] / गाथा [१३५-१४१] पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥१२४॥ शेषाणामपि नयानां संप्रदादीनां लक्षणमिदं शृणुत षड्ये-अभिषास्ये इत्यर्थः । ‘संगहित’ गाहा (#१२६-२६४) आभिमुख्येन गृहीतः-उपासः संगृहीतः पिंडितः, एकजातिमापन्ना अर्थाः विषया यस्य तत्संगृहीतपिंडितार्थं संप्रहस्य वचनं ‘समासतः’ संक्षेपतः ब्रूते तीर्थकरगणधरा इति, एतदुक्तं भवति-सामान्यप्रतिपादनपरः स्वस्वयं, सदित्युक्ते सामान्यमेव प्रतिपद्यते, न विशेषान्, तथा च मन्येत-विशेषाः सामान्यतोऽर्थान्तरभूताः स्युरनर्थान्तरभूता वा ? यद्यर्थान्तरभूता न सन्ति, सामान्यादर्थान्तरत्वात्, खपुष्पवत्, अथानर्थान्तरभूताः सामान्यमात्रमेव तत्त्वव्यतिरिक्तत्वात्स्वरूपवत् पर्याप्तं व्यासेन, उक्तः संप्रहः। ‘वच्चइ’ इत्यादि, प्रजति निराधिक्ये चयनं चयः अधिकश्चयो निश्चयः-सामान्यं विगतो निश्चयो विनिश्चयः-विगतसामान्यभावः बदर्थ-तन्निमित्तं, सामान्याभावायेति भावना, व्यवहारो नयः, क ?- सर्वद्रव्येषु-सर्वद्रव्यविषये, तथा च विशेषप्रतिपादनपरः स्वस्वयं सदित्युक्ते विशेषानेव यदादीन् प्रतिपद्यते, तेषां व्यवहारहेतुत्वात्, न तदतिरिक्तं सामान्यं, तस्य अव्यवहारपतितत्वात्, तथा च सामान्यं विशेषेभ्यो भिन्नमभिन्नं वा स्याद् ?, यदि भिन्नं विशेषव्यतिरेकेणोपलभ्येत, अथाभिन्नं विशेषमात्रं तत्, तदव्यतिरिक्तत्वात्, तत्स्वरूपवदिति, अथवा विशेषेण निश्चयो विनिश्चयः आगोपालाङ्गनाद्यबोधो, न कतिपयविवृतसंबद्ध इति, तदर्थं प्रजति सर्वद्रव्येषु, आह च भाष्यकारः-‘भमरादि पंचवण्णादि णिच्छए जग्मि वा जणवयस्स । अत्थे विणिच्छओ सो विणिच्छियत्थोत्ति जो गज्झो ॥ १ ॥ बहुतरओत्ति य तं चिय गमेइ संतेवि सेसए सुयइ । संबवहारपरतया ववहारो लोगमिच्छंतो ॥ २ ॥’ इत्यादि, उक्तो व्यवहार इति गाथार्थः । ‘पंचतुप्पणगाही’ गाहा (#१३७-२६४) साम्प्रतमुत्पन्नं प्रत्युत्पन्नमुच्यते, वर्त्तमानमित्यर्थः, प्रति प्रति बोत्पन्नं प्रत्युत्पन्नं भिन्नेषूक्त (ष्वात्म) स्वात्मिकमित्यर्थः तद् ग्रहीतुं शीलमस्येति प्रत्युत्पन्नगाही स ऋजुसूत्र ऋजुश्रुतो वा नयविधिर्विज्ञातव्यः, तत्र ऋजु-वर्त्तमानं अतीतानागतपरित्यागात् बल्लखिलं तत् सूत्रयति-गमयतीति ऋजुसूत्रः, यद्वा ऋजु वक्रविपर्ययात् अभिसुखं श्रुतं तु ज्ञानं, ततश्चाभिसुखं ज्ञानमस्येति व्यवहारजु- सूत्रशब्दाः ॥१२४॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)
	 मूलं [१५४-१५५] / गाथा [१३५-१४१]
प्रत सूत्रांक [१५४- १५५] गाथा १३५- १४१	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
दीप अनुक्रम [३३७- ३५०]	स्थितपक्षः श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥१२८॥ अयं च सम्यक्तत्वाद् चतुर्विधेऽपि सामायिके देशविरतिसर्वविरतिसामायिकद्वयमेवेच्छति, क्रियात्मकत्वादस्य, सम्यक्तत्वसामायिकश्रुतसामायिके तु तदर्थमुपादीयमानत्वादप्रधानत्वात् नेच्छति, गुणभूते वेच्छतीति गार्थः ॥ उक्तः क्रियानयः, इत्थं ज्ञानक्रियास्वरूपं श्रुत्वाऽविदिततदभिप्रायो विनेयः संशयापन्नः सन्नाह-किमत्र तत्त्वं ?, पक्षद्वयेऽपि युक्तिसंभवात्, आचार्यः पुनराह-‘सर्व्वेसिंपि’ गाहा (*१४०-२६७) अथवा ज्ञानक्रियानयमतं प्रत्येकमभिधायाधुना स्थितपक्षमुपदर्शयन्नाह-‘सर्व्वेसिंपि गाहा’ गाहा, सर्व्वेषामिति मूलनयानाम्, अपिशब्दात्तद्वैदानां च नयानां द्रव्यास्तिकादीनां बहुविधवक्तव्यतां-सामान्यमेव विशेषा एव उभयमेव वाऽनपेक्षमित्यादिरूपां, अथवा नामादीनां कः कं साधुमिच्छतीत्यादिरूपां निरान्य-श्रुत्वा तत्सर्व्वनयविशुद्धं-सर्व्वनयसम्मतं वचनं यच्चरणगुणस्थितः साधुः. यस्मात्सर्व्वनया एव भावनिक्षेपमिच्छतीति गार्थः ॥ समाप्तेयं शिष्यहितानामानुयोगद्वारटीका, कृतिः सिताम्बराऽऽचार्यजिनभट्टपादसेवकस्याऽऽचार्यहरिभद्रस्य ‘कृत्वा विवरणमेतत्प्राप्तं यत्किञ्चिदिह मया कुशलम् । अनुयोगपुरस्सरत्वं लभतां भव्यो जनस्तेन ॥ १ ॥ इति श्रीहरिभद्राचार्यरचिता अनुयोगद्वारसूत्रवृत्तिः ॥१२८॥
	मुनिश्री दीपरत्नसागरेण पुनः संपादितः (आगमसूत्र ४५) “अनुयोगद्वारसूत्र” (हारिभद्रिया-वृत्तिः) परिसमाप्तं

नमो नमो निम्मलदंसणस्स
पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरुभ्यो नमः

भाग-7

पूज्य आगमोधधारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधितः संपादितश्च
“अनुयोगद्वार-चूलिकासूत्र” [हरिभद्रसूरिजी-रचिता वृत्तिः]

(किञ्चित् वैशिष्ट्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलितः
“अनुयोगद्वारसूत्र” मूलं एवं वृत्तिः” नामेण परिसमाप्तः

‘संवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि-2’ श्रेणि, भाग-7



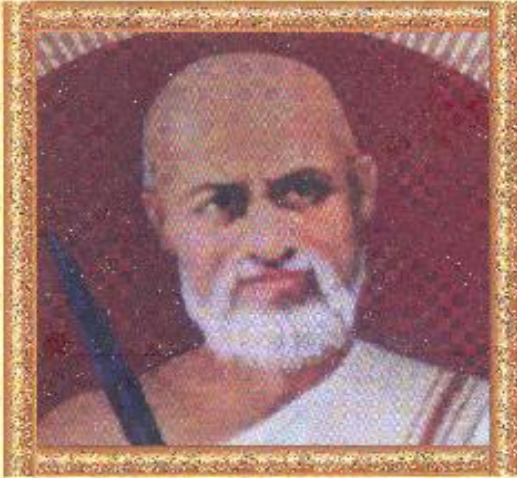
आजम्

वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

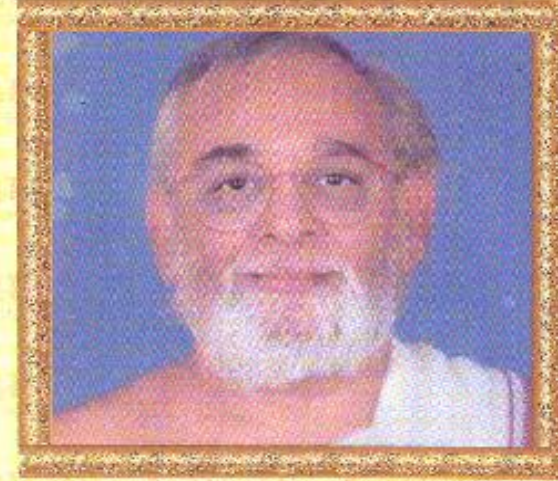
सवृत्तिक-आगम-सूत्राणि-2

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता



आगम दिवाकर मुनिश्री दीपकनसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका

मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

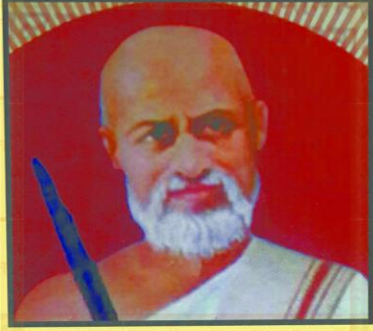
सच्चारित्र चूडामणि स्वर्गस्थ पूज्यपाद
गच्छाधिपति आचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागर
सूरीश्वरजी महाराज साहेब



श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ
वीतराग सोसायटी, प्रभूदास ठक्कर कोलेज रोड, पालडी, अमदावाद

करीब पचास साल पहले परम पूज्य स्वर्गस्थ गच्छाधिपति
आचार्य देव श्रीमद् देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब द्वारा
संस्थापित इस संघमें श्री शीतलनाथ भगवंत का जिनालय भी है,
जिन के प्रतिष्ठाचार्य भी पूज्य देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी म० ही है ।

इस संघमें पूज्य साधू -भगवंत एवं साध्वी -महाराज के लिए
उपाश्रय भी है, जहां हर-साल चातुर्मास करवा के श्रावक-श्राविकाओं
को धर्म-आराधन से लाभान्वित करवाया जाता है । इस संघमें
आयंबिलभवन, उबाला हुआ पानी, ज्ञान-भण्डार एवं पाठशाला की
भी बहोत अच्छी सुविधा प्रदान हो रही है । ऐसे सम्यग्-मार्गी संघ
की सद्भावना और प्रभावक आचार्य पूज्य श्री हर्षसागरसूरीजी म०
की प्रेरणा से इस शास्त्र के लिए अनुदान प्राप्त हुआ है ।



मूल संशोधक
पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महायजसाहेब



आगम - ४४ + ४५

“नन्दी” + “अनुयोगद्वार” वृत्तिः

अभिनव-संकलनकर्ता
आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

